
Registration No. V-36244/2008-09

ISSN :- 2350-0611

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor

Dr. Kamlesh Kumar Singh

Assistant Professor

Department of Sociology

Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College

Sevapuri, Varanasi

Volume - XII

No. - 1

(January – March 2025)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - A Referred Journal, Published by : Quarterly

Correspondence Address :

C 4/270, Chetganj

Varanasi, (U.P.)

Pin. - 221 010

Mobile No. :- 09336924396

Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by

Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh**, United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar**, School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao**, Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri**, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh**, Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan**, Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh**, Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora**, Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya**, Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray**, Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi**, Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh**, Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav**, Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad**, Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari**, Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain**, Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh**, Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh**, Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari**, Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas**, Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan**, Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey**, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi



EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights**, a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor



CONTENTS

"Research Highlights"

➤	वैश्वीकरण प्रभाव एवं परिणाम: एक समीक्षा डॉ. सौरभ श्रीवास्तव	01-04
➤	महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व : झारखण्ड के विशेष संदर्भ में वीरेन्द्र देव डॉ० प्रीति कुमारी	05-07
➤	अम्बेडकर के विचारों का वर्तमान भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभाव: एक अध्ययन संतोष कुमार दास डॉ० प्रीति कुमारी	08-10
➤	हरिशंकर परसाई के साहित्य में राजनैतिक पृष्ठभूमि अवधेश कुमार गौतम प्रो. (डॉ.) सरोज	11-14
➤	उच्च शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बढ़ाने में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की भूमिका : सारण प्रमण्डल में विशेष संदर्भ में संतोष कुमार यादव	15-17
➤	भाषा बाधाओं को दूर करने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता संचालित अनुवाद उपकरणों की भूमिका डॉ. राम जी मिश्रा डॉ. आदित्य प्रताप सिंह डॉ. पूजा मिश्रा	18-22
➤	अम्बेडकर की दृष्टि में अस्पृश्यता के दुर्ग के रूप में भारतीय ग्राम आरती राजपूत डॉ. अनिल दुबे	23-26
➤	भारतीय दर्शन और भक्तिकाव्य श्वेता कुमारी	27-30
➤	संस्कृत साहित्य में शून्य की अवधारणा डॉ. दीपक कुमार	31-33
➤	कथक नृत्य में प्रयोग होने वाले श्रृंगार व आभूषण के अंग रूप विशाल कुमार	34-41
➤	द. एशिया की भूराजनीतिक चुनौतियां: भारत-चीन सम्बन्ध के संदर्भ में डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र	42-47
➤	आचार्य क्षेमेन्द्र कृत कविकण्ठाभरण : एक विमर्श डॉ. सत्येन्द्र कुमार सिंह	48-50
➤	भारतीय एकता के प्रतीक डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी अंजली कुमारी डॉ. विजय नारायण सिंह	51-53
➤	भूमंडलीकरण और दलित स्त्री: सशक्ति करण की संभावनाएँ और सीमाएँ: एक विहंगावलोकन डॉ० धर्मवीर चौहान	54-58
➤	'देशबंधु' चित्तरंजन दास: एक वैचारिक राष्ट्रनिर्माता की राजनीतिक दृष्टि सुधीर कुमार डा. सत्यपाल यादव	59-64
➤	भिक्षावृत्ति : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण दिनेश कुमार प्रो. रमोद कुमार मौर्य	65-69
➤	ब्रेख्त की नाट्य पद्धति और अवधारणा शैलजा दुबे	70-75

➤	नारीवाद का समाज पर सकारात्मक प्रभाव डॉ. कुमारी भावना	76-79
➤	वैदिककालीन समाज एवं संस्कृति: एक अवलोकन डॉ. सत्यजीत सारंग	80-82
➤	नई पीढ़ी में सांस्कृतिक पहचान का संकट सरिता कुमारी	83-87
➤	छत्तीसगढ़ का अनुष्ठानिक पर्व "गौरा-गौरी" डॉ. दीपशिखा पटेल	88-92
➤	बाल मनोविज्ञान का शैक्षिक क्षेत्र में महत्त्व डॉ. अमन मुर्मू	93-97
➤	वक्रोक्ति सम्प्रदाय का उद्भव एवं विकास विपुल शिवसागर	98-101
➤	किन्नर समुदाय विधिक एवं उत्थान कमलेश कुमार प्रो. रमोद कुमार मोर्य	102-108
➤	पंडित दीनदयाल उपाध्याय की आर्थिक नीति डॉ. सुनील कुमार पांडेय	109-112
➤	शिक्षा एवं मानसिक-स्वास्थ्य कु. मृणालिनी गुप्ता	113-117
➤	तुलनात्मक अध्ययन की परंपरा का स्वरूप तथा उपयोगिता लवलेश कुमार	118-121
➤	विकल्पहीनता वर्तमान की अवधारणा डॉ. आमरीन हसन	122-124
➤	मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में नारी चेतना का विवेचन समर बहादुर	125-128
➤	समकालीन हिन्दी कहानी: परम्परा और विकास का महत्व अरविन्द कुमार	129-131
➤	अनिद्रा पर राग दरबारी कान्हड़ा का प्रभाव: एक अध्ययन हनुमान प्रसाद गुप्ता डॉ शिव नारायण प्रसाद	132-135
➤	शिक्षा के क्षेत्र में महामना मालवीय जी के योगदानों की समीक्षात्मक अध्ययन केशवानंद राजभर प्रो० (डॉ) मो० उस्मान	136-138
➤	किशोरावस्था में विकसित सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था डॉ. अर्चना सिंह	139-141
➤	लोकतांत्रिक प्रणाली का बदलता स्वरूप डॉ. दिलीप कुमार सिंह	142-144
➤	महिलाओं की आर्थिक सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह की भूमिका डॉ. सलीम खान	145-151
➤	वर्तमान समय में भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार एवं परिवर्तन डॉ. निजामुद्दीन	152-154
➤	भारत में वस्त्र छपाई का इतिहास एवं बनारसी अलंकरण डॉ. नीलम उपाध्याय	155-156

वैश्वीकरण प्रभाव एवं परिणाम: एक समीक्षा

डॉ. सौरभ श्रीवास्तव*

विश्व राज्य एवं विश्व नागरिकता की अवधारणा का अंकुरण मध्यकाल में ही हो चुका था जिसके फलस्वरूप राष्ट्र राज्य का उदय हुआ। मध्यकाल में वैश्वीकरण का आधार ईसाइयत था। लेकिन 16-17वीं सदी में यूरोपीय व्यापार के माध्यम से वैश्वीकरण फिर से प्रारम्भ हुआ। जो यूरोपीय राष्ट्रवाद के साथ मिलकर साम्राज्यवाद के रूप में परिवर्तित हो गया। 20वीं शताब्दी में साम्राज्यवाद का पतन हुआ तथा उसका स्थान अन्तर्राष्ट्रवाद ने ले लिया। 1970 के दशक में संचार क्रान्ति हुई, जिसने दुनिया को जोड़ने में मुख्य भूमिका निभाई साथ ही 1980 के दशक में उदारीकरण का प्रभाव बढ़ा तथा 1990 के दशक में समाजवादी व्यवस्थाओं के पतन के बाद उदारीकरण वैश्वीकरण के नारे के रूप में परिवर्तित हो गया। वैश्वीकरण का यह बहुआयामी स्वरूप सम्पूर्ण विश्व को प्रक्रियागत एवं संस्थागत दोनों रूपों में प्रभावित किया है, जिसके सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव एवं परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं।

वैश्वीकरण का अर्थ एवं परिभाषा — वैश्वीकरण के अर्थ को लेकर विद्वानों में मतभेद है तथा साथ ही आपसी मतैक्य नहीं है। हालांकि वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है— उदाहरण—वैश्वीक गाँव, वैश्वीक राज्य, वैश्वीक अन्तरनिर्भरता, एक विश्व प्रणाली का विकास, विश्व स्तर पर जमाव इत्यादि। वैश्वीकरण के उपरोक्त अर्थों का विश्लेषण किया जाय तो एक सामान्य सी बात उभरकर सामने आती है। जिसे 'एकीकरण' की प्रक्रिया कहा जा सकता है। इस एकीकरण की प्रक्रिया में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इत्यादि व्यवस्थाएँ सम्मिलित हैं।

वास्तव में वैश्वीकरण एक असामान्य प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोग सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचनाओं में आये विभिन्न बदलावों की वजह से अलग-अलग रूप में प्रभावित होते हैं। इसीलिए वैश्वीकरण के कारण सामाजिक प्रक्रियाओं की विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग तरीके से व्याख्या की है। एक ओर जहाँ एल्ब्रो का कहना है कि "वैश्वीकरण का सम्बन्ध उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा एक वर्ग के लोग एक वैश्विक समाज में परिवर्तित हो रहे हैं"। वहीं दूसरी ओर मैक्लहॉन ने ग्लोबल सिटी की अवधारणा प्रस्तुत की तथा उसके लिए संचार एवं तकनीकी को जिम्मेदार माना। इसके अतिरिक्त विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वैश्वीकरण को लोगों और देशों की बढ़ती अर्न्तसम्बन्धता और परस्पर निर्भरता के रूप में परिभाषित किया है। दूसरे शब्दों में यह वह प्रक्रिया जिसके द्वारा दुनिया में कई देशों की संस्कृतियाँ, अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक घटनाएँ एक दूसरे पर निर्भर हो गई है। जबकि गिलपिन ने वैश्वीकरण को राजनीतिक कारको की उपज माना है।

इसके विपरीत यथार्थ रूप में देखा जाय तो वैश्वीकरण का स्वरूप 'बहुलवादी' है राबर्टसम, मेलकम, गिडिन्स जैसे विद्वान इसी धारणा के समर्थक हैं।

हॉल्स एवं सारेन्सन के अनुसार — वैश्वीकरण से तात्पर्य विभिन्न भौगोलिक सीमाओं के बीच आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों को बढ़ावा देना है। गिडिन्स के अनुसार वैश्वीकरण एक बहुआयामी धारणा है। इसमें राष्ट्रो और क्षेत्रों के बीच व्यापार, वित्त, प्रौद्योगिकी संचार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान जैसे विभिन्न पहलुओं का एकीकरण और अन्तःक्रिया शामिल है। इसके अतिरिक्त अर्जुन अप्पादोराई ने भी वैश्वीकरण के पाँच स्तरों की पहचान की है। जिसमें मानवीय, वित्तीय, वैचारिक, तकनीकी व संचार शामिल है। इन्हीं बहुपक्षीय अर्न्तसम्बन्धों के कारण विश्व का एकीकरण हो रहा है। इस एकीकरण का मुख्यतः तीन स्तरों पर स्पष्ट किया जा सकता है।

- (1) राजनीतिक
- (2) आर्थिक
- (3) सामाजिक सांस्कृतिक

राजनीतिक वैश्वीकरण — वैश्वीकरण ने राजनीतिक क्षेत्रों को व्यापक रूप से प्रभावित किया। 1990 के दशक में वैश्विक स्तर पर समाजवादी व्यवस्थाओं के पतन के पश्चात वैश्विक पटल पर उदारवादी,

* सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, शिया पी.जी. कालेज, लखनऊ

राजनीतिक व्यवस्था एकमात्र विकल्प के रूप में उभरी और इस उदारवादी राजनीतिक व्यवस्था को अपनाना अब राष्ट्र राज्यों की मजबूरी बन गया। राजनीतिक क्षेत्रों में राष्ट्र राज्यों की प्रभुता का पतन, राष्ट्र राज्य की शक्ति में कटौती एवं प्रादेशिक सीमाओं का ह्रास तथा वैश्विक अभिशासन का उदय, भू-राजनीतिक क्षेत्र से भू-आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन जैसी संकल्पना वैश्वीकरण की ही देन है। अन्तर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों का उदय एवं उनकी भूमिका में व्यापक वृद्धि वैश्वीकरण की वजह से ही हुआ है।

डेनियल बेले ने लिखा भी है कि हमारे जीवन की विभिन्न समस्याओं के निराकरण करने में राष्ट्र-राज्य बहुत ही संकुचित हो गया है। अतः आज राष्ट्र-राज्यों की सम्प्रभुता बड़े राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक संगठनों के साथ जुड़ गई है। जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.), विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.), अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (I.M.F.), विश्व बैंक (W.B.) तथा विभिन्न गैर सरकारी संगठन (N.G.O.) आदि शामिल हैं। वैश्वीकरण के युग में आपसी अन्तर्सम्बन्धों का स्तर इतना बढ़ गया है कि सम्पूर्ण विश्व के किसी भी भू-भाग में घटित घटना का प्रभाव मिलों दूर स्थित किसी अन्य भू-भाग के घटनाओं पर भी पड़ता है। उदाहरण स्वरूप रूस-युक्रेन युद्ध एवं मानवाधिकार जैसे विषय एवं वर्ष 2010 में मध्य पश्चिम एशिया एवं उत्तरी अफ्रीका में तानाशाही बेरोजगारी, राजनीतिक भ्रष्टाचार, मानवाधिकार का उल्लंघन आदि मुद्दों को लेकर हुए श्रृंखलाबद्ध विरोध प्रदर्शन एवं धरना हुये जिसे अरब स्प्रिंग कहा जाता है। जो ट्यूनिशिया से शुरू हुआ और विभिन्न सोशल मीडिया के माध्यमों द्वारा इसकी प्रकृति व्यापक हो गई। इसी तरह कोविड-19 जैसी महामारी की सूचना क्षण भर में सभी देशों के पास उपलब्ध हो गई।

आर्थिक वैश्वीकरण — आर्थिक क्षेत्र में वैश्वीकरण का तात्पर्य मुख्यतः विश्व भर में आर्थिक गतिविधियों में तेजी आने और इसकी व्यापकता से है। आर्थिक वैश्वीकरण के वर्तमान स्वरूप का आधार दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के दौर में इंग्लैण्ड के ब्रेटन वुड्स शहर में हुये आर्थिक सम्मेलन तलाशा जा सकता है। जिसमें नई आर्थिक व्यवस्था की बात उभरकर सामने आयी जिसका धीरे-धीरे विस्तार होता गया। इस सम्मेलन में संरक्षणवादी नीतियों का त्याग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ाने की इच्छा तथा इस हेतु एक समान नियम बनाने एवं लागू करने, ज्यादा स्थायी मौद्रिक विनिमय प्रणाली बनाने प्रत्येक देश की मुद्रा का मूल्य अमेरिकी डॉलर स्वर्णमान के आधार पर तय करने पर सहमति बनी। साथ ही इस सम्मेलन में तीन नये अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन बनाये जाने के संस्थागत आधार भी तैयार हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्वबैंक, गैट (वर्तमान में W.T.O.) उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान वैश्वीकरण हेतु जो तथ्य सर्वाधिक जिम्मेदार है वह आर्थिक ही है। वहीं आर्थिक तत्व राजनीतिक व्यवस्था में भी आमूलचूल परिवर्तन कर उदारीकरण निजीकरण व वैश्वीकरण को अपनाने हेतु उत्प्रेरित किया है।

आर्थिक क्षेत्र में वैश्वीकरण के फलस्वरूप पूँजी और तकनीक के वृहद् स्तर पर प्रवाह से वस्तुओं और सेवाओं का व्यापार बहुत बढ़ गया है। बाजारों का विस्तार पूरी दुनिया में हो गया है, जिससे इस प्रक्रिया में इन बाजारों के राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं से आपसी नये सम्पर्क सूत्र कायम हुये हैं। विशाल बहुराष्ट्रीय निगमों (MNCs), शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थानों एवं बड़े क्षेत्रीय व्यापार संगठन तथा बड़े ई-कामर्स कम्पनियों से ही वर्तमान 21वीं सदी में वैश्विक, आर्थिक व्यवस्था का निर्माण हुआ है।

सामाजिक सांस्कृतिक वैश्वीकरण —

तुलनात्मक रूप से देखा जाय तो आर्थिक एवं राजनीतिक वैश्वीकरण के मुकाबले सांस्कृतिक वैश्वीकरण अधिक हुआ है। सामान्य शब्दों में सामाजिक सांस्कृतिक वैश्वीकरण का तात्पर्य विश्व भर में सांस्कृतिक व्यवहारों-प्रतिरूपों के तेज एवं व्यापक फैलाव से है। सांस्कृतिक मेल-जोल बढ़ने से दुनिया भर के लोगों की जीवन पद्धति एक जैसी हो गई है। सांस्कृतिक वैश्वीकरण के फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में सांस्कृतिक एकरूपता का उभार हुआ है जिसमें पहनावा-ओढ़ावा, रहन-सहन, खान-पान इत्यादि क्षेत्रों में एकरूपता आई है। इसने एक साझा संस्कृति का निर्माण किया है जो कि विश्वव्यापी है। संचार साधनों तथा इण्टरनेट, सोशल मीडिया तथा अन्य नई प्रौद्योगिकियों की मदद से वर्तमान युग के प्रभावी प्रतीक व्यक्तिवाद उपभोक्तावाद एवं अनेकों तरीकों से धार्मिक चर्चायें बहुत तेजी से फैल रही हैं। वैश्वीकरण ने संस्कृति की समानता को जन्म दिया है और साथ ही साथ इसने विभिन्न संस्कृतियों में महान अन्तर को भी स्पष्ट किया है। वर्तमान पाश्चात्य संस्कृति ने समस्त विश्व में अपनी जगह बना ली है। जिसे कुछ लोग 'विश्व का अमरीकीकरण' तो कुछ इसे 'सांस्कृतिक साम्राज्यवाद' का नाम देते हैं। किन्तु पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण अथवा सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के अंधकारपूर्ण पहलू ने इस्लामी जगत में जिहाद को जन्म दिया है। सामाजिक सांस्कृतिक वैश्वीकरण ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को गहराई से प्रभावित किया है। एक

ओर जहाँ वैश्विक स्तर पर एक साझा संस्कृति का विकास हो रहा है तो वहीं दूसरी तरफ जनजातियों के समक्ष पहचान एवं अपनी संस्कृति के संरक्षण का संकट उत्पन्न हो गया है। क्योंकि सांस्कृतिक वैश्वीकरण से वे अपने को असुरक्षित महसूस कर रही हैं और अपने पृथक सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था पर इसे हमले के रूप में देखती हैं।

वैश्वीकरण की विशेषताएँ—

वैश्वीकरण एक बहुपक्षीय एवं बहुआयामी प्रक्रिया है। वैश्वीकरण की यह प्रक्रिया सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी स्तरों पर चल रही है और ये सभी स्तर आपस में अंतः सम्बन्धित हैं।

भौगोलिक सीमाओं, निश्चित भूमि की धारणा का ह्रास, विश्व गाँव एवं विश्व राज्य की संकल्पना में अधिकांश सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेने वाले व्यक्तियों, संस्थाओं के समक्ष भौगोलिक स्थान महत्वहीन हो गये।

सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक अन्तःसम्बद्धता : वैश्वीकरण ने मानवीय गतिविधियों में विभिन्न क्षेत्रों को स्थानीय, क्षेत्रीय एवं वैश्विक स्तरों पर जोड़कर उसमें व्यापक परिवर्तन कर दिये हैं।

वैश्वीकरण की अवधारणा ने मानव जीवन के सभी पक्षों, क्षेत्रों में तेजी से गति उत्पन्न कर दी है।

वैश्वीकरण ने सभी क्षेत्रों में एकरूपता स्थापित किया है जिसे साझा संस्कृति का नाम दिया गया है।

वैश्वीकरण का प्रभाव — (सकारात्मक)

मानव केन्द्रित अवधारणा, प्रजातंत्र, मानवाधिकार, पर्यावरण आदि मुद्दों के प्रति जागरूकता बढ़ी है।

राष्ट्र राज्य की अपेक्षा नागरिक समाज (Civil Society) का महत्व बढ़ा है।

राष्ट्रीय सरकारों के प्रभाव में कमी आयी है।

गैर सरकारी संगठनों (N.G.O.) की भूमिका का विस्तार हुआ है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों व निगमों की शक्ति में वृद्धि हुई है।

सरकारों एवं विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के कार्यों में पारदर्शिता आयी है। जिससे भ्रष्टाचार पर अंकुश लगा है।

निःशस्त्रीकरण का विस्तार हो रहा है। जिससे विश्व शांति को बढ़ावा मिला है।

वैश्विक समाज के कारण सूचना, ज्ञान, तकनीक, विचार एवं श्रम का वैश्विक प्रसार हो रहा है। गरीबी कम हो रही है तथा उपाश्रित वर्गों को मुख्य धारा में लाने की प्रेरणा मिली है।

वैश्वीकरण का नकारात्मक प्रभाव —

वैश्वीकरण द्वारा विकास को प्राथमिकता दिया गया। फलस्वरूप प्राकृतिक सम्पदाओं के अन्धाधुन्ध दोहन से पर्यावरण क्षय हुआ है।

आतंकवाद, तस्करी तथा संगठित अपराध में वृद्धि हुई।

मशीनीकरण को बढ़ावा मिला है जिससे बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है तथा अमीर—गरीब के बीच की खाई चौड़ी हुयी है।

आतंकवाद के साथ ही मानव केन्द्रित अपराध (महिलाओं एवं बच्चों की तस्करी) सहित संगठित अपराध, मादक द्रव्यों की तस्करी इत्यादि में वृद्धि हुई है।

कल्याणकारी राज्य का ह्रास हुआ है। जिससे असुरक्षा की भावना बढ़ी है तथा न्यूनतम का संकट उत्पन्न हो गया है। फलस्वरूप अभाव जनित गरीबी ने विभिन्न क्षेत्रीय संघर्ष (माओवाद, नक्सलवाद पूर्वोत्तर संकट) का जन्म हुआ।

मानवाधिकार की संकल्पना एवं कार्यान्वयन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

वैश्वीकरण की अवधारणा ने विकास को प्राथमिकता दिया जिससे अत्यधिक दोहन के कारण विकास विनाश की ओर अग्रसर हो गया। जबकि इसके विपरीत सतत विकास को प्राथमिकता देना चाहिये।

संचार साधनों की द्रुत गति ने धार्मिक कट्टरता, नृजातीय संघर्ष, सम्प्रदायवाद इत्यादि जैसे घटनाओं को बढ़ावा दिया है।

राष्ट्र राज्यों की सम्प्रभुता प्रभावित हुई है कारण स्वरूप बड़ी वैश्विक शक्तियों विभिन्न कारणों, समस्याओं को अनावश्यक तूल देकर छोटे राष्ट्रों के आन्तरिक, बाह्य नीतियों में हस्तक्षेप कर रही है।

उपरोक्त प्रभाव के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है कि वैश्वीकरण के समक्ष कुछ चुनौतियाँ हैं लेकिन फिर भी वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव वैश्विक समाज के लिए ज्यादा प्रभावी दिख रहे हैं। आज सम्पूर्ण भूमण्डल एकीकरण की दिशा में आगे बढ़ रहा है। सामाजिक, सांस्कृतिक,

आर्थिक सभी क्षेत्रों के मध्य वैश्विक नजदीकियाँ बढ़ रही हैं। उदाहरण स्वरूप भारत में आयोजित महाकुम्भ 2025 सांस्कृतिक वैश्वीकरण का एक मूर्त उदाहरण है जिसमें भारत देश के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व के लोगों में इसके प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई। फलस्वरूप अधिकांश देशों से लोग महाकुम्भ में आये और भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्म को नजदीक से देखने और समझने का प्रयास किये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची —

विश्व इतिहास के प्रमुख मुद्दे : बदलते आयाम — अनिरुद्ध देशपाण्डे
 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति — आर० सी० वर्मानी
 वैश्वीकरण: समाशास्त्रीय परिवेश—नरेश भार्गव
 एक वैश्वीकरण विश्व — डॉ० शिक्षा रानी
 वैश्वीकरण से ग्रामीण भारत पर संकट — अविनाश चन्द्र
 वर्ल्ड फोकस
 प्रतियोगिता दर्पण — वार्षिकांक
 क्रानिकल — ईयर बुक
 परीक्षा मंथन — वार्षिकांक
 दृष्टि द विजन — वार्षिकांक



महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व : झारखण्ड के विशेष संदर्भ में

वीरेन्द्र देव*

डॉ० प्रीति कुमारी**

सारांश

महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व झारखण्ड में एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है, जिस पर विभिन्न अध्ययन और विश्लेषण किए गए हैं। झारखण्ड में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए कई प्रयास किए गए जा रहे हैं, जिनमें से एक प्रमुख प्रयास किए जा रहे हैं महिला आरक्षण विधेयक का पारित होना। झारखण्ड में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के लिए एक प्रमुख योजना चल रही है जिसे महिला सशक्तिकरण योजना के नाम से जानते हैं। इस आलेख का प्रमुख उद्देश्य है कि महिलाओं का राजनीतिक भागीदारी अथवा प्रतिनिधित्व से सम्बन्धित झारखण्ड के विशेष संदर्भ में अध्ययन करना है। इस विषय पर अध्ययन करने हेतु द्वितीयक तथ्यों का संग्रह कर पुनः विश्लेषण कर इस आलेख को प्रस्तुत किया गया है।

मूल शब्द : महिला, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, महिला सशक्तिकरण, झारखण्ड, भागीदारी

परिचय

महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जो महिलाओं की राजनीतिक भागीदार और उनके अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए काम करता है। यह मुद्दा महिलाओं को राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल करने और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए काम करता है। महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व कई तरीके से विशेषकर झारखण्ड में किया जाने का प्रयास लम्बे अरसे से किया जा रहा है जिनमें से कुछ तरीके के बारे में चर्चा की गई है जो निम्न बिन्दुओं में देखा जा सकता है:-

(1) महिला आरक्षण

महिला आरक्षण एक ऐसी प्रणाली है जिसमें महिलाओं के लिए राजनीतिक पदों का आरक्षण किया जाता है। यह प्रणाली महिलाओं को राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल करने और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए काम करती है।

(2) महिला सशक्तिकरण

महिला सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक किया जाता है और उन्हें राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल करने और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए काम करती है।

(3) महिला नेतृत्व

महिला नेतृत्व एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें महिलाओं को राजनीति प्रक्रिया में शामिल करने और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना है।

(4) महिला अधिकार

महिला अधिकार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें महिलाओं के अधिकारों की रक्षा की जाती है और उन्हें राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

अतः महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसके लिए झारखण्ड में लम्बे अरसे से काम कर रही है। हालांकि झारखण्ड क्षेत्र में महिलाओं की राजनीतिक क्षेत्र को बहुत हद तक सफलता भी मिली है तथा झारखण्ड की महिला को पंचायती राज संस्था, विधान सभा, लोक सभा के पदों पर आसीन होकर राजनीतिक प्रतिनिधित्व करने का अवसर मिला है।

* शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, आईसेक्ट विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड

** असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, आईसेक्ट विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड

झारखण्ड के महिलाओं का राजनीतिक प्रतिनिधित्व

झारखण्ड के महिलाओं द्वारा राजनीति के क्षेत्र में विभिन्न पदों पर आसीन होकर प्रतिनिधित्व करने वाली प्रमुख महिला रही है, जो निम्न हैं:-

1. नलिनी नायक

नलिनी नायक झारखण्ड की एक प्रमुख महिला नेता है और उन्होंने झारखण्ड विधान सभा में महिला प्रधानता की भूमिका निभाई है।

2. मीना खलको

झारखण्ड की एक प्रमुख महिला नेता है और उन्होंने झारखण्ड विधान सभा में महिला प्रतिनिधित्व के रूप में अपनी भूमिका निभाई है।

3. सावित्री महतो

झारखण्ड की एक प्रमुख महिला नेता है। उन्होंने झारखण्ड विधान सभा में महिला प्रधानता की भूमिका निभाई है।

4. निर्मला यूरिया

झारखण्ड की एक प्रमुख महिला नेता है और झारखण्ड विधान सभा में महिला प्रधानता की भूमिका निभाई हैं।

5. गीता कोड़ा

यह एक महिला नेता है तथा इन्होंने झारखण्ड विधानसभा में महिला प्रधानता के रूप में भूमिका निभाई हैं।

6. सीता सोरेन

यह एक प्रमुख महिला नेता झारखण्ड की है जिन्होंने झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के टिकट पर झारखण्ड विधान सभा में अपनी प्रधानता की भूमिका निभाई है।

झारखण्ड की महिला सांसद

झारखण्ड की महिला सांसदों में प्रधानता निभाई है जिसमें प्रमुख महिला नेता क्रमशः अन्नापुर्णा देवी, गीता कोड़ा है।

अन्नपुर्णा देवी कोडरमा सीट से सांसद बनी तथा गीता कोड़ा अन्य सीट पर चुनाव जीत कर सांसद के रूप में भूमिका निभाई।

इसके अलावे झारखण्ड की एक प्रमुख महिला नेता है जिसका नाम कल्पना सोरेन है जिन्होंने झारखण्ड मुक्ति मोर्चा की महिला प्रतिनिधित्व की भूमिका निभाई है। जिन्होंने राज्य की विकास की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं।

राष्ट्रपति के रूप में झारखण्ड की महिला प्रतिनिधित्व

श्रीमती द्रौपदी मूर्मू, राष्ट्रपति, जो पूर्व में झारखण्ड की पहली राज्यपाल थी। उन्होंने 18 मई 2015 से 6 जुलाई 2021 तक झारखण्ड की राज्यपाल के रूप में कार्य किया और वर्तमान में भारत के राष्ट्रपति पदों पर आसीन होकर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

महिलाओं का राजनीतिक अधिकार

महिलाओं का राजनीतिक अधिकार उनके सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। भारत में महिलाओं के कुछ प्रमुख राजनीतिक अधिकार हैं:-

समानता का अधिकार: भारत का संविधान महिलाओं को पुरुषों के बराबर समानता का अधिकार प्रदान करता है।

मतदान का अधिकार: महिलाओं को 18 वर्ष की आयु के बाद मतदान का अधिकार प्राप्त होता है।

चुनाव लड़ने का अधिकार: महिलाओं को भी चुनाव लड़ने का अधिकार है और वे देश के विभिन्न पदों पर चुनाव लड़ सकती हैं।

राजनीतिक दल में शामिल होने का अधिकार: महिलाओं की किसी भी राजनीतिक दल में शामिल होने का अधिकार है।

सरकारी नौकरी में भाग लेना: महिलाओं को सरकारी नौकरियों में भाग लेना और उनके लिए आरक्षित सीटों का लाभ उठाना।

अतः इन अधिकारों के अलावा महिलाओं को कई अन्य अधिकार भी प्राप्त हैं, जैसे कि;

- ग्रहणी हिंसा से सुरक्षा का अधिकार
- यौन उत्पीड़न से सुरक्षा का अधिकार

- मुफ्त विधिक सहायता का अधिकार

अतः उपरोक्त अधिकारों को जानने और उनके उपयोग करने से महिलाओं को अपने जीवन में सुधार लाने और समाज में समानता का स्थान प्राप्त करने में मदद मिलती है।

साहित्य समीक्षा

महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व के रूप में विभिन्न विद्वानों ने शोध से सम्बन्धित अध्ययन किया है जिसका विषय और लेखकों की चर्चा की गई जो निम्न हैं:-

- डॉ० नलिनी कुमार, महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व : एक अध्ययन
- प्रो० सीमा सिंह, महिला राजनीति : एक विश्लेषण
- डॉ० रीता सिंह, महिला राजनीति : एक सामाजिक दृष्टिकोण
- प्रो० सुनीता शर्मा, महिला राजनीति प्रतिनिधित्व : एक आर्थिक दृष्टिकोण
- डॉ० जोगीता सिंह, महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व : एक राजनीतिक दृष्टिकोण

उपरोक्त सभी लेखकों के द्वारा महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व के रूप अध्ययन कर महिलाओं को राजनीति क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने का काम किया तथा राजनीति क्षेत्र में भागीदारी देकर महिला को सशक्त करने की दिशा में प्रयास बताया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि झारखण्ड में महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है, हालांकि महिलाओं को राजनीतिक भागीदारी को बढ़ावा देने के कई प्रयास किये जा रहे हैं साथ इसके लिए झारखण्ड क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण योजना प्रमुख रूप चलाई जा रही है तथा इन क्षेत्रों से ऐसे कई महिला नेता हैं जिन्होंने महिला प्रतिनिधित्व के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राजनीति क्षेत्र में झारखण्ड की महिला अपनी भागीदारी बढ़ाकर इन क्षेत्रों का विकास की दिशा में काम करने का अवसर मिला और जिन्होंने बढ़-चढ़ कर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसका परिणाम है कि आज देश के प्रथम नागरिक राष्ट्रपति के रूप में द्रौपदी मूर्मू झारखण्ड की महिला हैं, तथा इन्होंने भारत के राष्ट्रपति के पद पर आसीन होकर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

संदर्भ :

- Afsar Haleh (1996) Women and Politics in the Third World, Routledge, London.
 Datta Balbir (2014) Kehazi Jharkhand Rajniti is Crown Publications, Ranchi.
 Dewan Rance (2004) Jharkhand Ki Mahilao, Bihar Hindi Granth Academy, Patna.
 Kumari R. Letha (2006) Women in Politics, Participation and Governance, Autos Press, Delhi.
 Pardi Snehilata (1990) Determination of Political Participation, Women and Public Activity, Ajanta Publication, Delhi.
 Minz Nirmal (2014) Kahani Adivasi Rajniti ki, Jharkhand Jharka, Ranchi.
 Kiro Vasavi (2014) Bharat ki Krantikari Adivasi Auratey, Ramanika Foundation, New Delhi.

अम्बेडकर के विचारों का वर्तमान भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभाव: एक अध्ययन

संतोष कुमार दास*

डॉ० प्रीति कुमारी**

सारांश

डॉ० भीम राव अम्बेडकर के विचारों ने न केवल सामाजिक न्याय और समानता की लड़ाई को मजबूत किया, बल्कि राजनीतिक व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए। उनके विचारों का मुख्य फोकस सामाजिक न्याय और समानता पर था, जो कि आज भी हमारे समाज में बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने जाति प्रथा के एक बहुत बड़ा कदम था। हालांकि उनके विचारों का प्रभाव वर्तमान भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर भी देखा जा सकता है। उन्होंने संविधान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इसके माध्यम से सामाजिक न्याय और समानता के सिद्धांतों को मजबूत किया। उन्होंने महिलाओं और दलितों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी और उनके उत्थान के लिए काम किया, जो कि आज भी हमारे समाज में महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत इस आलेख का उद्देश्य अम्बेडकर के विचारों का वर्तमान भारतीय सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था का अध्ययन करना है यह अध्ययन द्वितीयक तथ्यों का संग्रह कर इस विषय का अध्ययन कर प्रस्तुत किया गया है।

मूल शब्द: भीम राव अम्बेडकर, समानता, राजनीतिक व्यवस्था, संविधान के निर्माण।

परिचय

डॉ० भीम राव अम्बेडकर को संविधान निर्माता कहा जाता है उन्होंने सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन के लिए काफी संघर्ष किए जिसका प्रभाव वर्तमान समाज में देखा जा सकता है। डॉ० भीमराव अम्बेडकर एक महान नेता, समाज सुधारक और संविधान निर्माता थे। उनका जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्यप्रदेश के इंदौर शहर में स्थित 'महू' में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में सामाजिक न्याय और समानता की लड़ाई लड़ी और इसके लिए उन्होंने कई संघर्ष किए। उन्होंने जाति प्रथा के खिलाफ लड़ी और इसके उन्मूलन के काम किया। उनकी शिक्षा की करें तो उन्होंने अर्थशास्त्र की पढ़ाई लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से पढ़ाई की तथा एट-लॉ की डिग्री प्राप्त की, साथ ही उनके राजनीतिक जीवन की बात करें तो उन्होंने स्वतंत्र मजदूर पार्टी का गठन किया और 1946 में तो उन्होंने स्वतंत्र मजदूर पार्टी का गठन किया और 1946 में संविधान सभा के चुनाव में खड़े हुए, इसके बावजूद उन्होंने भारतीय समाज और राजनीतिक व्यवस्था पर जो विचार दिये जिनका प्रभाव भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

डॉ० भीम राव अम्बेडकर ने समाज के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने जाति प्रथा के खिलाफ लड़ाई लड़ी और इसके लिए उन्मूलन के लिए काम किया। उन्होंने सामाजिक न्याय और समानता की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा संविधान निर्माण में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में तथा महिलाओं और दलितों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों और रूढ़ियों के खिलाफ भी आवाज उठाई और लोगों को जागरूक किया।

समाज सुधार के लिए निम्न कार्य किए;

- उन्होंने समाज से छूआछुत का अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए अथक संघर्ष किए।
- उन्होंने दलितों के उत्थान के लिए संघर्ष किए।
- उन्होंने शिक्षा के प्रति समाज के लोगों का जागरूक किया।
- उन्होंने समानता के लिए लड़ाई लड़ी।
- उन्होंने महिलाओं के उत्थान के संघर्ष किए।
- उन्होंने सामाजिक न्याय की नींव रखी।
- उन्होंने जातिवाद के विरोध के लिए काफी संघर्ष किए।

* शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान, आईसेक्ट विश्वविद्यालय, हजारीबाग

** असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, आईसेक्ट विश्वविद्यालय, हजारीबाग

- उन्होंने महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए संघर्ष किए।
- उन्होंने महिला के लिए संपत्ति के अधिकारों पर जोर दिए।
- उन्होंने मानव अधिकारों और न्याय के लिए अथक संघर्ष किए।

प्रभाव:

उनके द्वारा समाज सुधारों के लिए जो कार्य किए गये जिसका परिणाम यह हुआ कि आज हमारे देश में सामाजिक न्याय और समानता की लड़ाई में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। उनके कार्यों के प्रेरित होकर आज भी कई लोग समाज में परिवर्तन लाने के लिए काम कर रहे हैं, अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि उनके द्वारा किए समाज सुधार के लिए जो कार्य किए गये जिसका भारतीय समाज पर अत्यधिक गहरा प्रभाव पड़ा है।

राजनीतिक व्यवस्था के लिए कार्य

डॉ० भीम राव अम्बेडकर ने राजनीतिक व्यवस्था में सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने संविधान के निर्माण में भूमिका निभाई और इसके माध्यम से सामाजिक न्याय और सिद्धांतों को मजबूत किया। उनके राजनीतिक सुधारों में से एक महत्वपूर्ण कार्य का संविधान सभा का गठन, जिसमें उन्होंने अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। उन्होंने संविधान निर्माण महत्वपूर्ण योगदान दिया और इसके माध्यम से देश को एक मजबूत और लोकतांत्रिक व्यवस्था प्रदान की। उन्होंने महिलाओं और दलितों के अधिकारों के लिए की तथा इन समाजों के उत्थान के लिए कार्य किए गये।

अतः डॉ० भीम राव अम्बेडकर के विचार और सिद्धांत विभिन्न राजनीतिक दलों की नीतियों और विचारधाराओं को आकार देते रहे। कई राजनीतिक दल जो काफी पिछड़े थे उन्हें स्वयं को दल को मजबूत करने का दिशा-निर्देश देते रहे। उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था सुधार के लिए लोकतंत्र को समानता के आधार पर गहरी प्रतिबद्धता पर जोर दिये। उन्होंने राजनीतिक व्यवस्था के तहत मूल अधिकारों के संरक्षण हेतु कार्यों को प्रतिपादित किया।

राजनीति व्यवस्था में सुधार के लिए डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने निम्न कार्य किए गये :-

- डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने भारतीय संविधान का निर्माण कार्य किए।
- संविधान सभा का गठन किया।
- देश को एक मजबूत और लोकतांत्रिक व्यवस्था प्रदान की।
- उन्होंने जाति-प्रथा को उन्मूलन हेतु कानून का निर्माण किया।
- लोकतांत्रिक मूल्यों का बढ़ावा दिया।
- उन्होंने लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति लोगों का जागरूक किया।
- दलित महिला को शिक्षा को अवसर देने के लिए कानूनों में प्रावधान करने का काम किया।
- उन्होंने निम्न जाति के संरक्षण हेतु कानूनों में अवसर प्रदान किया।
- उन्होंने अल्पसंख्यकों को सत्ता में हिस्सेदारी देने की बात की गारंटी दी।
- उन्होंने लोकतांत्रिक संरचना बनाने का कार्य किया।
- उन्होंने हमेशा अछूतों को राजनीतिक रूप में संगठित करने के प्रति जागरूक करने का कार्य किये।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान नाजीवाद को हराने के लिए भारतीय सेना को शामिल करने के प्रति भी जोर दिए गए।

अतः उपरोक्त कार्यों के अलावे अन्य कार्य भी कई ऐसे हैं जिन्होंने देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था जो एक विशाल वृक्ष के समान जैसा है उन्हें मजबूत करने की दिशा में अहम भूमिका निभाई है।

प्रभाव :

डॉ० भीम राव अम्बेडकर के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था के तहत जो कार्य किए गये, उन कार्यों का गहरा प्रभाव भारत जैसे देश में आज भी देखने को मिलता है। आज देश के संविधान को लोग सर्वोपरि मान रहे हैं। प्रत्येक वर्ष 14 अप्रैल के दिन उनके जन्म दिन के शुभ अवसर पर सामाजिक-न्याय के रूप में मना रहे हैं। हमारा संविधान जो लिखित है उसके आधार पर सभी पार्टियां चला रहे हैं। जबसे देश आजाद हुआ उसके बाद से ही संविधान निर्माता को हमेशा याद करते रहे हैं। आज दलित वर्ग या महिलाएँ शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। रोजगार के क्षेत्र में आरक्षण मिलने से हमारा समाज आर्थिक रूप से सशक्त हो रहे हैं। उन्होंने जाति-प्रथा, राजनीतिक रूप से वैचारिक मतभेद न होने की दृष्टि से भारत को एक लिखित संविधान दिया जिसका प्रभाव आज भी अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

निष्कर्ष

डॉ० भीम राव अम्बेडकर ने सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन के लिए देश के लोग आज भी इनका नाम पहले ओठों पर आता है। उन्होंने भारत का संविधान का निर्माण कर एक मजबूत लोकतांत्रिक देश की स्थापना हेतु इनका नाम अग्रणी माना जाता है। देश के सभी वर्गों के लोग आज उन्हें याद करते हैं। हमारे समाज में जितनी भी कुरीतियाँ थी सभी को समाप्त करने की दिशा में अत्यन्त संघर्ष किए गए तथा विशेष कर दलित, महिला एवं निचली या पिछड़ी जातियों के लिए कानूनों में अवसर प्रदान कर समानता, सामाजिक न्याय की नींव रखी जिससे आज पिछड़े लोग भी सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रहे हैं तथा सभी क्षेत्रों में भागीदारी बनकर राष्ट्र को मजबूत करने में समान रूप से योगदान कर रहे हैं। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि डॉ० भीम राव अम्बेडकर के विचारों को आज भी अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माना जाता है।

संदर्भ :

- Ambedkar, B.R. The rise and Fall of Hindu Women, Bheem Patrika Publications, Jalandhar, 1980.
 Ram Jagjivan, Vital role in Restoring Democracy in India, - Abhinandan Grant, Bihar, 1977.
 Ambedkar, B.R. who were the Shudras, And How they come to be fourth Varna in Indo-Aryan Society, Thaker and Co. Ltd. Bombay, 1946.
 Ambedkar, B.R., The Untouchable – who are they and why they become untouchable, Amrit Book co., New Delhi, 1940.
 Ambedkar, B.R. Evolution of Provincial Finance in British India, P.S. King and Sons Ltd. London 1925.
 Omvedt, Gail, 2011, Building the Ambedkar Revolution: Sambhaji Tukaram Gaikwad and the Konkan Dalits, Bhadya Prakashan, Mumbai.
 Pai, Sudha (2007), Political Process, Identity, Economic Reforms and Governance, Pearson Language, New Delhi.
 Ojha, Jay Prakash, 2008, DNA of Dalit Movement Partridge, India.



हरिशंकर परसाई के साहित्य में राजनैतिक पृष्ठभूमि

अवधेश कुमार गौतम*
प्रो. (डॉ.) सरोज**

सार

लेखक हरिशंकर परसाई को व्यापक रूप से हिंदी के बेहतरीन व्यंग्यकारों और हास्यकारों में से एक माना जाता है। चाहे कक्षा में हो या मंच पर, परसाई की अजीबोगरीब मानवीय व्यवहार और समाज पर की गई टिप्पणियों की प्रस्तुति को उत्साही दर्शक मिले हैं। व्यापक विश्वव्यापी दर्शकों के लिए लेखक की मौलिकता को पेश करने की उम्मीद के साथ, अभिनेता और निर्देशक प्रतीक कोठारी आज मुंबई में हरिशंकर परसाई के तुर्कियापे व्यंग्य नामक एक प्रस्तुति में हरिशंकर परसाई की तीन कहानियों का प्रदर्शन करेंगे। परसाई जी ने जिस प्रकार सरल भाषा में अपने शब्दों से मानवीय बुराइयों, प्राचीन सोच और धार्मिक पाखंड पर प्रहार किया, उसका उदाहरण साहित्य में नहीं मिलता। परसाई ने धर्म, जाति, राजनीति, विवाह, मानवीय गुण-दोष सब कागजों पर उतारकर उस पर अपनी कलम की नोक ऐसी चुभोई कि रस लेने के साथ-साथ पाठक बेचौन हो उठता है।

अतः हरिशंकर परसाई ने अपने समय की राजनीति को बदलते आयामों में मूल्यांकित किया तथा राजनीति से उत्पन्न मोहभंग की यथार्थ – चेतना को चित्रित एवं विश्लेषित भी किया। साहित्यकार बिना यथार्थवादी चेतना के किसी भी कालखंड का मूल्यांकन नहीं कर सकता। जबकि हरिशंकर परसाई की लेखनी ने इस क्षेत्र में महारत हासिल की थी।

प्रस्तावना

परसाई जी हिंदी साहित्य जगत के महान व्यंग्यकारों एवं प्रसिद्ध लेखकों में से एक थे। व्यंग्य को हिंदी साहित्य में एक विधा के रूप में पहचान दिलाने वाले परसाई ने व्यंग्य को मनोरंजन की पुरानी एवं परंपरागत परिधि से बाहर निकालकर समाज कल्याण से जोड़कर प्रस्तुत किया। इनके माध्यम से उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार और शोषण पर व्यंग्य किए जो आज भी प्रासंगिक हैं। हालांकि, उन्होंने कहानी, उपन्यास और संस्मरण भी लिखे, लेकिन उन्हें उनके व्यंग्य के जरिए किए जाने वाले तीखे प्रहार के लिए अधिक जाना जाता है। परसाई जी ने सामाजिक रूढ़ियों, राजनीतिक विडम्बनाओं तथा सामयिक समस्याओं पर व्यंग्य किया है और यथेष्ट कीर्ति पाई है। परसाईजी एक सफल व्यंग्यकार हैं। वे व्यंग्य के अनुरूप ही भाषा लिखने में कुशल हैं। इनकी रचनाओं में भाषा के बोलचाल के शब्दों, तत्सम शब्दों तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों का चयन भी उच्च कोटि का है।

हरिशंकर परसाई के इस संपूर्ण और हास्यास्पद लेख का उद्देश्य इंदिरा के बाद के प्रधान मंत्री द्वारा की गई दलीलों पर प्रहार करना था, लेकिन इसमें आधुनिक समय के मन की बात और कड़ी निंदा के समान समानता है। अपने कई कार्यों में, परसाई पुरानी राजनीतिक व्यवस्था के व्यावहारिक रूप से हर पहलू की आलोचना करते हैं, यहां तक कि विशिष्ट राजनीतिक दलों और मंत्रियों के नाम भी लेते हैं। यह केवल इतना ही नहीं है कि सामग्री शानदार है; लेखक के अवरोध की कमी भी एक आंख खोलने वाला पठन अनुभव बनाती है। उनके लेखों ने शासक और शासित दोनों वर्गों के पाखंड का पर्दाफाश किया है। वह विभिन्न दलों के लक्ष्यों का उपहास उड़ाते हैं, हमारे संस्थानों की अक्षमताओं पर विलाप करते हैं, और नैतिकता और नैतिकता की आड़ में अवसरवादिता की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, साथ ही राजनीतिक विचारधाराओं के सैद्धांतिक ढांचे में कई खामियों पर चर्चा करते हैं। लेखक खुद को एक पंचलाइन के रूप में इस्तेमाल करते हुए एक बहुत ही आत्म-हीन स्वर का उपयोग करता है।

* शोध छात्र, हिंदी विभाग का. सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या।

** शोध निर्देशिका, (विभागाध्यक्ष-हिंदी विभाग) का. सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या।

राजनीति का स्वरूप एवं अवधारणा

हरिशंकर परसाई एक प्रमुख हिंदी लेखक और विचारक थे, जिन्होंने अपने लेखनी में राजनीति के स्वरूप और अवधारणा को व्यक्त किया। वे भारतीय समाज और राजनीति के कई पहलुओं को व्यंग्यपूर्ण तरीके से उजागर करते थे।

हरिशंकर परसाई के द्वारा राजनीति के स्वरूप और अवधारणा को उनके विचार और रचनात्मक लेखन के माध्यम से बयान किया जाता है। वे राजनीति के कई पहलुओं को अपने चुटकुलों और कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत करते थे, जिससे लोगों को समझने में आसानी होती थी।

हरिशंकर परसाई भारतीय गद्य, कविता, और नाटककार थे, जिन्होंने अपने लेखनी के माध्यम से समाज में विभिन्न मुद्दों पर चिंतन किया और उन्होंने राजनीति के स्वरूप और अवधारणाओं पर भी अपने विचार व्यक्त किए। उनके द्वारा रचित कई लेख, कविताएं, और कई कविता संग्रह राजनीति की विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हैं।

परसाई के द्वारा राजनीति के स्वरूप और अवधारणाओं पर उनके विचार विशेष रूप से उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक रूप से उपस्थित किए गए। उन्होंने राजनीति की कार्यप्रणाली, सत्ता, और राजनीतिक दलों के स्वरूप पर विचार किए और इसके जरिए समाज में घटित होने वाले सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों को छानने का प्रयास किया।

परसाई का लेखनी कला में व्यक्तिगत और व्यावसायिक दोनों पहलुओं का मिश्रण होता था, और उन्होंने अपने रचनाओं के माध्यम से राजनीति के विभिन्न पहलुओं को हास्य और सत्यापन के साथ प्रस्तुत किया।

राजनीति दो शब्दों का एक समूह है राज+नीति (राज मतलब शासन और नीति मतलब उचित समय और उचित स्थान पर उचित कार्य करने की कला) अर्थात् नीति विशेष के द्वारा शासन करना या विशेष उद्देश्य को प्राप्त करना राजनीति कहलाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो जनता के सामाजिक और आर्थिक स्तर (सार्वजनिक जीवन स्तर) को ऊँचा करना राजनीति है। नागरिक स्तर पर या व्यक्तिगत स्तर पर कोई विशेष प्रकार का सिद्धान्त एवं व्यवहार राजनीति (पॉलिटिक्स) कहलाती है। अधिक संकीर्ण रूप से कहें तो शासन में पद प्राप्त करना तथा सरकारी पद का उपयोग करना राजनीति है।

राजनीति में बहुत से रास्ते अपनाये जाते हैं जैसे— राजनीतिक विचारों को आगे बढ़ाना, विधि बनाना, विरोधियों के विरुद्ध युद्ध आदि शक्तियों का प्रयोग करना। राजनीति बहुत से स्तरों पर हो सकती है— गाँव की परम्परागत राजनीति से लेकर, स्थानीय सरकार, सम्प्रभुत्वपूर्ण राज्य या अन्तराष्ट्रीय स्तर पर।

राजनीति का इतिहास अति प्राचीन है जिसका विवरण विश्व के सबसे प्राचीन सनातन धर्म ग्रन्थों में देखने को मिलता है। राजनीति कि शुरुआत रामायण काल से भी अति प्राचीन है। महाभारत महाकाव्य में इसका सर्वाधिक विवरण देखने को मिलता है। चाहे वह चक्रव्यूह रचना हो या चौसर खेल में पाण्डवों को हराने कि राजनीति। अरस्तु को राजनीति का जनक कहा जाता है। आम तौर पर देखा गया है कि लोग राजनीति के विषय में नकारात्मक विचार रखते हैं, यह दुर्भाग्यपूर्ण है, हमें समझने की आवश्यकता है कि राजनीति किसी भी समाज का अविभाज्य अंग है। महात्मा गांधी ने एक बार टिप्पणी की थी कि राजनीति ने हमें साँप की कुंडली की तरह जकड़ रखा है और इससे जूझने के सिवाय कोई अन्य रास्ता नहीं है। राजनीतिक संगठन और सामूहिक निर्णय के किसी ढाँचे के बिना कोई भी समाज जीवित नहीं रह सकता।

राजनीति विज्ञान परिभाषा राज्य के संचालन की नीति राजनीति कहलाती है। सामान्यतः नीति ऐसा महत्वपूर्ण अन्वय है जो व्यक्ति, समाज और राज्य के वर्तमान स्वरूप, दिशा एवं लक्ष्य को न सिर्फ स्पष्ट करता है अपितु भविष्य के स्वरूप एवं सम्भावनाओं की ओर भी इंगित करता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं व्यवस्था में केन्द्र बिन्दु मानव है। अतः राज्य, व्यक्ति और नीति के मध्य अन्योन्याश्रित संबंध है।

राज्य के द्वारा ही, राज्य के सुव्यवस्थित संचालन एवं व्यक्ति के समग्र विकास के लिए नीतियाँ निर्धारित की जाती हैं। आगे चलकर उसी नीति के अनुरूप राज्य व्यवस्था का संचालन होता है। राजनीति विज्ञान एक विषय के रूप में बहुत ही संवेदनशील, गत्यात्मक एवं महत्वपूर्ण विषय है इसमें संवेदनशीलता राज्य का भाव पक्ष है और गत्यात्मकता उसकी सहज प्रवृत्ति है।

व्यक्ति मूलतः सामाजिक एवं राजनीतिक प्राणी है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज के साथ ही राज्य एवं राज व्यवस्था पर भी निर्भर करता है। राज्य और समाज की विविध इकाइयाँ व्यक्ति को

सहयोग प्रदान करती हैं व्यक्ति उनके सहयोग के बिना अधूरा है। व्यक्ति की पूर्णता के लिए राज्य और नीति अति आवश्यक है।

अतः एक सुव्यवस्थित समाज को राज्य, सामाजिक व्यवहार को नियमित करने वाली नियमावली की नीति तथा इन नीतियों के राज्य में अनुपालन को सुनिश्चित करने वाली तथा उल्लंघन करने वालों को दण्डित करने वाले घटक को सत्ता अथवा सरकार कहते हैं। राज्य और सरकार के साथ मनुष्य के अध्ययन का विषय राजनीति विज्ञान कहलाता है।

राजनीतिक रूपक एवं सौन्दर्य दृष्टि

हरिशंकर परसाई एक भारतीय लेखक, कवि, और नाटककार थे, जिन्होंने अपने रचनाओं के माध्यम से राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों को हास्यरूप में प्रस्तुत किया। वे भारतीय अद्भुत कथा-साहित्य के महत्वपूर्ण नामों में से एक थे और उनके लेखन का मुख्य धारा क्षेत्र जीवन और सामाजिक समस्याओं पर बनी थी।

हरिशंकर परसाई की रचनाएँ राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर व्यंग्यपूर्ण ढंग से हस्तक्षेप करती थीं, जिनमें वे देश के वर्तमान चुनौतियों को चुनौती देने का प्रयास करते थे। उनकी रचनाएँ सामाजिक अन्याय, राजनीतिक भ्रष्टाचार, और सामाजिक तथा सांस्कृतिक विवादों पर हास्य के माध्यम से विचार करने का प्रयास करती थीं। उनके लेखन में राजनीतिक दलों, सरकारी व्यक्तियों, और समाज के विभिन्न वर्गों के साथ खिलवाड़ और सख्त व्यंग्य था।

वे एक अद्भुत कवि और लेखक थे जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से समाज में सुधार की दिशा में अपना योगदान दिया। हरिशंकर परसाई के रचनात्मक योगदान ने भारतीय साहित्य को एक नए दिशा में ले जाने में मदद की और उन्होंने राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों को समझाने और उनके विरोध में हँसी का उपयोग किया।

हरिशंकर परसाई के साहित्य में राजनैतिक रूपक और सौन्दर्य दृष्टि के संगम के बारे में चर्चा करते समय, हमें उनके काव्य और लेखन के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में विचार करना चाहिए।

हरिशंकर परसाई के रचनाएँ व्यापक रूप में व्यक्तिगत और सामाजिक मुद्दों पर आधारित थीं, और उन्होंने राजनीति के रूपक तत्वों का विवेचन किया। वे अपने लेखों और कविताओं के माध्यम से समाज में हो रहे घटनाओं को आलोचनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करते थे। उनके लेखन में व्यंग्य और हास्य भी मौजूद था, जिससे उनके रचनाओं का एक अद्वितीय और विचित्र मिश्रण था।

हरिशंकर परसाई के रचनात्मक कौशल ने उन्हें एक प्रमुख हिन्दी लेखक के रूप में मान्यता प्राप्त करवाई, और उनके द्वारा लिखे गए रचनाएँ आज भी पठनीय हैं और समाज में चर्चा के योग्य हैं। उनके द्वारा रचित कई लेख और कविताएँ राजनीतिक दृष्टि के साथ समाज के विभिन्न पहलुओं पर गंभीर विचार करती हैं और सौन्दर्य दृष्टि से उनके लेख और कविताएँ साहित्य की एक महत्वपूर्ण धारा के हिस्से के रूप में मानी जाती हैं। राजनीतिक रूपक और सौन्दर्य दृष्टि दो अलग-अलग शैली और दृष्टिकोण होते हैं, जो साहित्य और कला के क्षेत्र में प्रयुक्त होते हैं।

राजनैतिक रूपक

हरिशंकर परसाई ने अपने लेखन में भारतीय राजनीति के अनुभवों का अद्वितीय रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने राजनैतिक दलों, नेताओं, और सरकारी प्रथाओं के साथ खिलवाड़ किया और उनकी दोषों को उजागर किया। वे हास्य और व्यंग्य के माध्यम से लोगों को राजनीतिक दुरुपयोग और भ्रष्टाचार के खिलाफ सत्याग्रह करने की प्रोत्साहित करते थे। राजनीतिक रूपक कविताएँ, कहानियाँ, नाटक, और अन्य साहित्यिक रचनाएँ ऐसी होती हैं जो राजनीतिक विषयों, समस्याओं, और घटनाओं पर ध्यान केंद्रित करती हैं। यह रूपक साहित्य के माध्यम से समाज को सराहना, आलोचना, या संकेत करने में मदद करता है। यह विचार दिलाने और विचारशीलता को प्रोत्साहित करने का माध्यम हो सकता है। इसका उद्देश्य अक्सर राजनीतिक विवादों, सामाजिक अन्याय, सरकार की नीतियों, और समाज के आपसी संबंधों पर दिलाई गई रूपकता और विचार व्यक्त करना होता है।

हरिशंकर परसाई के साहित्य में राजनैतिक रूपक एवं सौन्दर्य दृष्टि

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य साहित्य में यथार्थबोध का विश्लेषण किया गया है। "यथार्थ कृत्यात्मकता में निहित होता है। इसलिए उसे केवल क्रियात्मक रूप से जाना जा सकता है। हर वह तथ्य जो क्रियमाण या प्रवृत्तमान है, यथार्थ है। यथार्थ का प्रकटीकरण गति या प्रवृत्ति के द्वारा होता है, इसलिए गति या प्रवृत्ति यथार्थ के रूपाकार हैं। जो घटित हो रहा है, वह यथार्थ है और जिसके घटित होने की संभाव्यता है, वह

संभावना है। यथार्थ अस्तित्वभूत होता है, उसका अवबोधन इन्द्रियों के माध्यम से संभव है लेकिन संभावना परोक्ष और अनगढ़ होती है। यथार्थ एक साकार संभावना होती है जबकि संभावना एक गर्भित यथार्थ होता है, जिसके अवतरण का न तो समय निश्चित होता है और न स्वयं अवतरण। यथार्थ वह है जो अपने विद्यमान रूप में है और आदर्श वह है जो देश, काल और परिस्थिति के अनुसार वांछनीय और उचित है। इसलिए आदर्श हमेशा श्रेयस्कर होते हैं। कहना न होगा कि हमारा बल आदर्श के यथार्थीकरण पर होना चाहिए। इसी क्रम में यथार्थ का बोध होने से तात्पर्य यह है कि जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी से उसके अच्छे-बुरे दोनों पक्षों को आत्मसात करते हुए उनका चित्रण करना।

सन्दर्भ

बेकर, ए.बी., जेनोस, एमए, और वेसनन, डी.जे. (2015)। दैनिक शो को आकार देना: राजनीतिक कॉमेडी प्रोग्रामिंग के दर्शकों की धारणा। संचार के अटलांटिक जर्नल, 18(3), 144-157
 रजनी कोठारी, भारत में राजनीति, पृ. 121, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
 सं. अभय कुमार दुबे, लोकतंत्र के सात अध्याय, पृ. 39, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
 हरिशंकर परसाई रचनावली, भाग - 4, पृ. 145, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।



उच्च शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बढ़ाने में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की भूमिका : सारण प्रमण्डल में विशेष संदर्भ में

संतोष कुमार यादव*

सारांश

उच्च शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बढ़ाने में शिक्षक प्रशिक्षण की भूमिका अत्यन्त ही जरूरी है। उच्च शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थियों को विशेषज्ञता प्रदान की जाती है ताकि वे अपने चुने हुए क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त कर सकें। उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों से गहराई से ज्ञान प्रदान किया जाता है, जिससे वे अपने क्षेत्र में नवाचार और अनुसंधान कर सकें, इसके लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण कार्यक्रम अत्यन्त ही आवश्यक हो जाता है। शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में मदद करते हैं। यह लेख द्वितीयक तथ्यों के आधार पर अध्ययन कर शोधार्थी प्रस्तुत किया है।

मूल शब्द: शिक्षक, प्रशिक्षण कार्यक्रम, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, उच्च शिक्षा।

परिचय

सारण प्रमंडल के अन्तर्गत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए शिक्षक प्रशिक्षण बहुत जरूरी है जिसके लिए शिक्षकों को नियमित रूप से प्रदान किया जा रहा है ताकि वे अपने पढ़ाने के तरीके में सुधार लाया जा सकें। प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों के लिए अत्यन्त जरूरी है तथा इसके माध्यम से व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विकास में मदद कर सकता है तथा अपने पेशेवर विकास में मदद कर सकता है। साथ ही साथ व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता में सुधार कर सकता है और नवीनतम ज्ञान और तरीकों से अवगत हो सकता है तथा आत्मविश्वास को बढ़ा सकता है। प्रशिक्षण से अपने काम में अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकता है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने कौशल को विकसित कर सकता है, जिससे वह अपने काम में अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकता है, अतः उच्च शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बढ़ाने में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

शोध के उद्देश्य

उच्च शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की भूमिका को अध्ययन करना है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा — गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मुख्य उद्देश्य छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है ताकि वे अपने जीवन में सफल हो सकें। छात्रों को नवाचार और अनुसंधान को बढ़ावा देना है ताकि वे अपने क्षेत्र में नवाचार और अनुसंधान कर सकें तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा विशेषज्ञता प्रदान करता है ताकि वे अपने क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त कर सकें।

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के घटक

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के कुछ मुख्य घटक हैं जो निम्न हैं:-

शिक्षक प्रशिक्षण—शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाता है ताकि वे अपने छात्रों को बेहतर ढंग से शिक्षा प्रदान कर सकें।

शिक्षकों का मूल्यांकन—शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के शिक्षकों का मूल्यांकन किया जाता है ताकि उनकी क्षमताओं को और कमजोरियों को पता लगाया जा सके।

शिक्षकों का समर्थन—शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षकों का मूल्यांकन किया जाता है ताकि उनकी क्षमताओं को और कमजोरियों को पता लगाया जा सके।

शिक्षकों का समर्थन—शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षकों को समर्थन प्रदान किया जाता है ताकि वे अपने काम में सफल हो सकें।

शिक्षकों का प्रोत्साहन—शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाता है ताकि वे अपने काम में उत्साह और समर्पण के साथ काम कर सकें।

* शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

प्रशिक्षण के महत्व:

प्रशिक्षण के निम्नलिखित महत्व हैं :-

1. **कौशल विकास**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति अपने कौशल को विकसित कर सकता है, जिससे वह अपने काम में अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकता है।
2. **नवीनतम ज्ञान**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति नवीनतम ज्ञान और तकनीकों से अवगत हो सकता है जिसमें वह अपने काम में अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकता है।
3. **आत्म-विश्वास**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति अपने माध्य-विश्वास को बढ़ा सकता है, जिससे वह अपने काम में अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकता है जिससे वह अपने काम में अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकता है।
4. **कार्यक्षमता में सुधार**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता में सुधार कर सकता है, जिससे वह अपने काम में अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकता है।
5. **नेटवर्किंग**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति अपने पेशेवरों से मिल सकता है तथा अपने नेटवर्क को बढ़ा सकता है, जिससे वह अपने काम में अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकता है।

प्रशिक्षण से लाभ

प्रशिक्षण कार्यक्रम से विभिन्न प्रकार से लाभ मिल सकते हैं, वर्षते प्रशिक्षण कार्यक्रम में शिक्षक नियमित रूप से बताये गये तथ्यों को ग्रहण करें और कक्षा में उसे बताने का प्रयास करें ताकि शिक्षा के माध्यम से व्यक्तिगत विकास में मदद कर सकता है। अतः प्रशिक्षण कार्यक्रम में निम्न लाभ है :-

1. **व्यक्तिगत विकास**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विकास में मदद कर सकता है।
2. **पेशेवर विकास**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति अपने पेशेवर विकास में मदद कर सकता है।
3. **कार्यक्षमता में सुधार**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता में सुधार कर सकता है।
4. **नवीनतम ज्ञान**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति नवीनतम और तकनीकों से अवगत हो सकता है।
5. **आत्म-विश्वास**—प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति अपने आत्मविश्वास को बढ़ा सकता है।

उच्च शिक्षा से लाभ

विद्यार्थियों को प्रशिक्षित शिक्षकों से शिक्षा लेने से विद्यार्थियों को अत्यधिक लाभान्वित हो सकते हैं। अतः उच्च शिक्षा के माध्यमों से विद्यार्थियों को निम्नलिखित लाभ प्राप्त हो सकते हैं :-

1. **व्यक्तिगत विकास**—उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों को व्यक्तिगत विकास के लिए अवसर प्रदान किए जाते हैं।
2. **कैरियर के अवसर**—उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों को कैरियर के अवसर प्रदान किए जाते हैं।
3. **सामाजिक विकास**—उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों को सामाजिक विकास के लिए अवसर प्रदान किए जाते हैं।
4. **आर्थिक विकास**—उच्च शिक्षा में विद्यार्थियों को आर्थिक विकास के लिए अवसर प्रदान किए जाते हैं।

साहित्य समीक्षा

शिक्षक प्रशिक्षण पर साहित्य समीक्षा करने से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उद्देश्य क्या है, उनके लाभ क्या है और उनके कार्यान्वयन में क्या चुनौतियाँ आती हैं। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य शिक्षकों को प्रशिक्षित करना है ताकि वे अपने छात्रों को बेहतर ढंग से शिक्षा प्रदान कर सकें।

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के कई लाभ हैं जिनमें शिक्षकों का विकास, छात्रों का विकास और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार।

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ आती हैं जिनमें संसाधनों की कमी, प्रशिक्षकों की कमी, और प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार करने की आवश्यकता।

निष्कर्ष

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का उद्देश्य शिक्षकों की प्रशिक्षित करना है ताकि वे अपने छात्रों को बेहतर ढंग से शिक्षा प्रदान कर सकें। इसके अलावा, शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के कई लाभ हैं, लेकिन उनके कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ भी आती हैं। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये कार्यक्रम शिक्षकों को प्रशिक्षित करने, अद्यतन करने और प्रेरित करने हैं। इसके अलावा, ये कार्यक्रम गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, शिक्षकों का विकास और छात्रों का विकास करने में मदद करते हैं।

संदर्भ:

- NCRT; Report on the Working Group on Inservice Education of Teachers” (1986).
- C.A. Castellini “Analysis Inghiry into Inservice Education Programmes conducted by secondary Teachers Training College of Gujrat State” IV survey of Research in Education, P. 927, (1988).
- Singh: A critical study of the Programmes of the preservice and Inservice Education of teachers of Higher Educatio in India” III Survey of Research in Education, PP 846-847, (1980).
- R. Bolam; “Inservice Education "Training of Teachers, A condition for Education Research and Innovation (1982).
- Ojo, M.O. (2006) Quality teacher education. The Pivot on National Development: Journal of Education, 1(2) PP. 158-170.
- Singh P.M. (2011) Study of Impact of Inservice Teacher Training under SIA on classroom transaction of Uttar Pradesh State, BHU, Varanasi.
- Sherma Y.M. (2013) Teachers Perception on quality of Inservice Training Programme for Secondary Teachers, conflex Journal of Education, 1(3).



भाषा बाधाओं को दूर करने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता संचालित अनुवाद उपकरणों की भूमिका

डॉ. राम जी मिश्रा*

डॉ. आदित्य प्रताप सिंह**

डॉ. पूजा मिश्रा***

आलेख सार

वर्तमान युग में शिक्षण एवं सीखना अधिकतर सूचना प्रौद्योगिकी की आधुनिक तकनीकों पर निर्भर कर रहा है तकनीकों के द्वारा व्यक्ति के जीवन के सभी क्षेत्रों को आसान बना दिया है अकादमिक जगत में विद्यार्थी, शिक्षकों एवं व्यवस्था संचालकों के लिए बहुत से कार्यों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता के साथ सीखना एवं समझना होता है जिससे कम समय में अत्यंत न्यूनतम संसाधनों द्वारा भाषा की विषमताओं में जो जटिलताओं को सीख सकता है यह विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिए एक प्रमुख सहायक के रूप में कार्य करता है कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा विश्व में बोली जाने वाली अनेकों भाषाओं का आपस में एक दूसरे के साथ अनुवाद त्वरित गति से किया जा सकता है जिससे एक भाषा में लिखी पुस्तक, व्याख्यान, चलचित्र, व्याख्यान एवं प्रदर्शन को किसी भी भाषा में अनुवादित कर शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रम को सरल एवं सुगम बनाया जा सकता है। लेकिन आज की कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में हर भाषा को किसी भी भाषा में अनुवादित किया जा सकता है जो शुद्ध एवं परिष्कृत होती है। अकादमी जीवन में चिकित्सा विज्ञान, अभियांत्रिकी विज्ञान कंप्यूटर एवं अन्य संकाय तथा विषयों के विद्यार्थी, शोधार्थियों एवं शिक्षकों के लिए पाठ्यक्रम की विषय वस्तु सामग्री की भाषा बहुत ही जटिल एवं कठिन होती है जिसे समझने एवं सीखने में बहुत कठिनाई होती है कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रयोग द्वारा इन विषयों में भी भाषा अनुवाद की सुविधा आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा सभी के स्वचालित मोबाइल यंत्रों में उपलब्ध भाषा अनुवादक ऐप के माध्यम से दूर की जा सकती है। शहरी क्षेत्र की अपेक्षा ग्रामीण एवं वंचित क्षेत्रों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग सूचना विज्ञान एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपलब्धता की कमी के कारण बहुत कम प्रयोग किया जाता है जिससे आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग बहुत ही काम है। यह यथार्थ है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा बोलकर लिखकर सुनकर विश्व की लगभग सभी भाषाओं के विषय वस्तु की सामग्री को अनुवादित करने के लिए सॉफ्टवेयर बनाया गया है लेकिन इनको विकसित करने वाला मनुष्य ही है उसने अपनी विवेक से ऐसे उपकरणों को बनाया है जिससे शिक्षण सहायक सामग्री के साथ-साथ भाषा अनुवादक को शिक्षण, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान में सहायता मिलती है।

बीज शब्द: सूचना प्रौद्योगिकी कृत्रिम बुद्धिमत्ता

* सहायक प्राध्यापक, शारीरिक शिक्षा विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, जिला

-अनूपपुर मध्य प्रदेश, मो. 9826774849, 9589706629 ramjimishra24071981@gmail.com

ramji.mishra@igntu.ac.in

** एसोसिएट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा, राजकीय महिला महाविद्यालय हरैया, जनपद बस्ती, उत्तर प्रदेश

9450837962 apsingh0031@gmail.com

*** समाजशास्त्र, 9669716725, poojamishra3003@gmail.com

प्रस्तावना: वर्तमान युग में विज्ञान मानव जीवन के सभी भागों को बहुत ही सुलभ बना दिया है विज्ञान की एक शाखा कंप्यूटर विज्ञान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में अनुवाद उपकरणों के द्वारा विश्व की समस्त भाषाओं को किसी दूसरी भाषा में त्वरित गति, स्पष्ट एवं सटीकता द्वारा अनुवादित किया जा सकता है और भविष्य में और अधिक उन्नयन सॉफ्टवेयर तकनीकी के माध्यम से उत्कृष्ट अनुवाद, परिणाम में परिशुद्धता आयेगी जिससे शिक्षण एवं सीखने की क्रिया में बहुमूल्य विकास होगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से विद्यार्थी, शिक्षकों एवं व्यवस्था संचालकों के लिए लिखने, लिखकर बोलने, बोलने, चलचित्र संवाद एवं संपादित कर प्रभावी ढंग से समावेशित किया जा रहा है समसामयिक शिक्षा में शिक्षण प्रणाली जहां राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के लक्ष्य एवं सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में आसानी हो रही है साथ ही साथ सुगमता से विद्यार्थियों में पढ़ने एवं लिखने में रुचि उत्पन्न की जा रही है। शिक्षण कार्य में उत्पन्न सभी जटिलताओं को आसानी से समझकर उसका प्रति उत्तर देने में विश्व के अधिकांश शिक्षण संस्थाएं अत्यधिक आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरणों का प्रयोग कर अनुवाद प्रक्रिया को सरल बना रहे हैं। आने वाले समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का त्वरित प्रभाव शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, मनोविज्ञान, अभियांत्रिकी, कृषि, उद्योग, व्यापार, परिवहन, यातायात, सामाजिक-आर्थिक, आर्थिक, सूचना विज्ञान एवं खेलकूद के साथ पर्यटन में बहुत अधिक देखा जा रहा है। महान कंप्यूटर वैज्ञानिक जार्ज कौरोस अपनी पुस्तक द इनवेस्टर्स माइंडसेट में कहा है कि “प्रौद्योगिकी कभी भी महान शिक्षकों का स्थान नहीं ले सकती, लेकिन महान शिक्षकों के हाथों में प्रौद्योगिकी परिवर्तनकारी हो सकती है अर्थात् अच्छे शिक्षकों का सम्मान एवं अस्तित्व सदैव बना रहेगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का सर्वप्रथम 1955 में जान मैकार्थी ने कहा कि यह कंप्यूटर विज्ञान की एक आधुनिक शाखा है जिससे मशीनों और सॉफ्टवेयर को बुद्धि के रूप में विकसित करता है विद्यालय शिक्षा व्यवस्था, उच्च शिक्षा में महाविद्यालय शिक्षा एवम विश्वविद्यालय शिक्षा और अनेक शोध संस्थानों में सभी स्तरों एवं कक्षाओं में एआई शिक्षक गतिविधियों में बहुत ही सकारात्मक प्रभाव डालती है जिससे समय के अनुरूप परंपरागत शिक्षण से सभी विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं व्यवस्था संचालकों की समस्याओं एवं सूचनाओं का संप्रेषण एक उत्कृष्ट माध्यम प्रदान कर सकता है।

उद्देश्य: प्रस्तुत अनुसंधान पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

- विद्यार्थियों द्वारा सीखने में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का स्तर निर्धारित करना।
- शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के द्वारा अनुवाद के व्यावहारिक अनुप्रयोगों का अन्वेषण करना।
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा आधुनिक एवं भविष्य में प्रयोग होने वाले अनुवाद उपकरणों के महत्वपूर्ण एवं सार्थक चर्चा करना ।
- अंतर्राष्ट्रीय भाषा अनुवाद उपकरणों का अन्वेषण करना।
- विद्यार्थियों की विषय समूह चयन, सतत मूल्यांकन एवं परिणाम बनाने तैयार करना।
- भाषा अनुवाद उपकरणों द्वारा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रगति को संबंधित करने के लिए विद्यार्थी, शिक्षक, शोधकर्ताओं और व्यवस्था संचालकों के मध्य समुचित, सस्ता, त्वरित एवं आसान माध्यम प्रदान करना।

संबंधित साहित्य का अध्ययन : अनुसंधान पत्र से संबंधित पूर्व में प्रकाशित अनुसंधान शोध पत्रों, पुस्तकों, समाचार पत्र, संचार माध्यम, जनसंचार स्रोतों के साथ-साथ ई- माध्यमों से पूर्व में हुए अनुसंधान का अध्ययन किया गया है।

विधि एवं विश्लेषण: भारत विविधताओं का देश है यहां पर हर धर्म को मानने एवं विभिन्न भाषाओं को बोलने, लिखने एवं समझने वाले लोग निवास करते हैं भारतीय संविधान द्वारा 22 भाषाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया है साथ ही 121 भाषाएं बोली एवं समझी जाती हैं विश्व में लगभग 7000 भाषाएं हैं जिनमें से लगभग 150 प्रमुख भाषाएं हैं जिनका प्रयोग शिक्षा, उद्योग, पर्यटन, व्यापार, व्यवसाय, स्वास्थ्य एवं सामान्य रूप से सभी क्षेत्रों में किया जाता है जिससे किसी विषय वस्तु को समझने में आसानी होती है भविष्य में होने वाली घटनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है और योजना एवम रणनीति बनाने में भारत के विभिन्न राज्यों एवम केन्द्र (संघ) शासित प्रदेशों में संचालित राज्य सरकारों के विद्यालय, केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों से व्यवस्था में ही अपनी मातृभाषा में जो सीखते हैं बोलते, लिखते, समझते हैं बाद में अन्य किसी भाषा को अपनाने और सीखने में बहुत अधिक कठिनाई का अनुभव करते हैं उन्हें नई भाषाओं में कुछ भी नहीं अथवा ना के बराबर समझ में आता है अचानक कोई नई भाषा में वह असहज हो जाता है ऐसी परिस्थितियों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के द्वारा आधुनिक भाषा अनुवाद उपकरणों के द्वारा अनुवादित कोई विषय वस्तु विद्यार्थियों को बोलने लिखने समझने एवं प्रति उत्तर देने के लिए बहुत सुगम बनता है कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण अनुवादक यंत्र माइक्रोसॉफ्ट ट्रांसलेटर, गूगल ट्रांसलेटर, ट्रांसलेटर वाइस ट्रांसलेटर, आइटरांसलेट, इजी लैंग्वेज, डीपीएल, मेमसोर्स, मेमोक्यू ट्रांसलेटर आदि हैं उदाहरण के लिए उत्तर भारत में अधिकांश क्षेत्रों में हिंदी और कुछ अवसरों पर अंग्रेजी अच्छी तरह से लिखा, समझा, बोला एवं पढ़ा जा सकता है लेकिन जब यहां के विद्यार्थियों को दक्षिण भारत के क्षेत्रों में अथवा विद्यालयों में भेजा जाए तो वह वहां की स्थानीय भाषा से अनभिज्ञ रहता है परिणाम स्वरूप वह दिग्भ्रमित रहता है ऐसे समय में आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से विकसित भाषा अनुवाद बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है भाषा अनुवाद किसी विषय वस्तु, चलचित्र संवाद, ग्रन्थ पाठ्यक्रम सामग्री एवम सामान्य बोलचाल की भाषा का सरल अनुवाद करता है।

छात्रों के मस्तिष्क में वर्तमान समय में क्या चल रहा है ?, वो एक समय में क्या सोच रहे हैं उन्हें कौन सा विषय रुचिकर लगता है, पूर्व कक्षाओं में उनका किस-किस विषय में क्या प्रदर्शन था, वर्तमान में कितना है भविष्य में कितना बढ़ेगा अथवा घटेगा विश्लेषण किया जा सकता है शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को ज्ञात किया जा सकता है। सभी विद्यार्थियों की सोचने, समझने, तर्क, वितर्क, पढ़ने, लिखने की क्षमता अलग-अलग होती है लगभग एक कक्षा में 30 से 50 विद्यार्थियों को एक शिक्षक पढ़ता है एक शिक्षक कक्षा में सभी विद्यार्थियों को समान रूप से पढ़ाता है लेकिन विद्यार्थियों की अपनी- अपनी क्षमता अनुसार कम, मध्य एवं ज्यादा ग्रहण करता है जिससे सभी विद्यार्थियों में समान रूप से ज्ञान अर्जन नहीं हो पता है इसलिए विद्यार्थियों द्वारा कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा व्यक्तिगत तौर पर एक शिक्षक से घर पर पढ़ना पसंद करता है अथवा एआई का प्रयोग कर कंप्यूटर, लैपटॉप एवं मोबाइल संसाधनों द्वारा पढ़ाई एवम सीखता है अनुसंधान से यह प्रमाणित हुआ है कि 40 विद्यार्थियों के साथ सीखने में एक विद्यार्थी को व्यक्तिगत पढ़ने पर 98% ज्यादा सिखाया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की क्रियान्वयन से विद्यार्थी को बहु प्रवेश और बहु निकास का विकल्प प्रदान करता है जैसे 1 वर्ष में प्रमाण

पत्र, दूसरे वर्ष डिप्लोमा, तीसरे वर्ष डिग्री, चौथे वर्ष आनर्स डिग्री, पांचवें वर्ष डिग्री और अनुसंधान मिलती है जो छात्र एकेडमिक बैंक आफ क्रेडिट में जमा होता जाता है छात्र की डिग्री को अंतरराष्ट्रीय स्तर का बनता है विद्यार्थियों में मूल विषय, अंतर संबंधित विषय, कौशल संवर्धन, कला विकास सामुदायिक कार्यों में अंतर विषय ज्ञान योग्यता बढ़ाने, कौशल संवर्धन से संबंधित पाठ्यक्रम पढ़ाया जा रहे हैं जिससे शिक्षकों की कई गुना आवश्यकता और बढ़ रही है इसलिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग के द्वारा विद्यार्थी एवं शिक्षकों के अनुपात को सामान किया जा रहा है सीखने, समझने, पढ़ने के लिए ऑनलाइन कोर्सेज को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, शिक्षा मंत्रालय एवं संबंधित एजेंसियों के माध्यम से निःशुल्क संचालित कर विद्यार्थियों को अकादमिक एवम कौशल संवर्धन रूप से सक्षम बनाया जा रहा है विषय वस्तु को समझने के लिए एआई उपकरणों को विकसित किया जा रहा है जिससे परिशुद्धता के साथ-साथ किसी भाषा में लिखना, बोलना, सुनना एवं समझना सटीकता के साथ-साथ कम समय में अनुवाद करना है।

निष्कर्ष: कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा भाषा अनुवादको के व्यवसाय पर खतरा उत्पन्न होगा यह प्रश्न सभी के मन में होता है इससे कुछ रोजगार समाप्त होंगे तो भाषा अनुवादक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में नए रोजगारों का सृजन होगा आने वाले समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के महत्व को पहचान कर भारत सरकार एवं शिक्षा मंत्रालय के साथ-साथ लगभग सभी क्षेत्रों में पाठ्यक्रम एवं शिक्षक द्वारा कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं केंद्रीय विद्यालय में कक्षा 9 से 12 तक के पाठ्यक्रम में कृत्रिम बुद्धिमत्ता को समावेशित किया है कृत्रिम बुद्धिमत्ता के द्वारा आधुनिक भाषा अनुवाद उपकरणों को भारत में ही विकसित करने के लिए हमारे शोध संस्थान दिन प्रतिदिन प्रयासरत हैं एआई का प्रशिक्षण शिक्षकों के साथ-साथ विद्यार्थियों को भी दिया जा रहा है सतत विकास लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा पर्यवेक्षक कार्य किया जा रहा है।

सुझाव:

- कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से शहरी क्षेत्र के साथ-साथ यह प्रयास करना चाहिए कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी सामान उपलब्धता सुनिश्चित किया जाए।
- बहुत से क्षेत्र एवं वर्गों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की पहुंच ही नहीं है या नहीं के बराबर है वो भाषा अनुवाद के बारे में जागरूक ही नहीं है उनके मिशन आधारित प्रशिक्षण प्रदान कर प्रशिक्षित करना जिससे समाज में समावेशी कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग हो सके।
- कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लाभ के साथ-साथ हानियों के बारे में विद्यार्थियों और शिक्षकों को जागरूक होना चाहिए नहीं तो बैंकिंग धोखाधड़ी पहचान आदि के लिए खतरा हो सकता है।
- विद्यार्थियों के प्रदर्शन के आधार पर भविष्य में कैरियर निर्माण के बारे में सहायता लेना।
- विलुप्त एवं प्राचीन भाषाओं की संरक्षण में उपाय को आपनना।
- भाषा अनुवादक विशेषज्ञ भाषा अनुवादक उपकरण विकसित करने के लिए अतिरिक्त बजट का प्रावधान होना चाहिए।

संदर्भ:

https://www.youtube.com/live/MfmSFmh_6es?si=m1Eig5qTrdAkFQcr
https://youtu.be/wiscimXGqyg?si=RfcXnwITKca_4aUg
<https://youtu.be/rdCcU4vpewA?si=h95JpVXi-x3S-4egh>
<https://youtu.be/iyb38dzetRk?si=bnhQR8wgbzUrSg3P>

https://youtu.be/ViFyW7_z2Ns?si=2N7j7iy11rV8FFRe
<https://www.youtube.com/live/sLxgw16FQh0?si=ba3fkJPr3ZnN3yc7>
https://www.researchgate.net/profile/Arya-6/publication/355328386_siksaka_siksa_mem_krtrima_bud'dhi_ya_artiphisiyala_intelijensa_bhumika_evam_vikasa_164-JICR-AUGUST-5014/links/6169fe9f951b3574c649ea27/siksaka-siksa-mem-krtrima-buddhi-ya-artiphisiyala-intelijensa-bhumika-evam-vikasa-164-JICR-AUGUST-5014.pdf
<https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1363313.pdf>
https://www.britishcouncil.org/sites/default/files/ai_in_english_language_teaching_systematic_review.pdf
https://www.researchgate.net/publication/373699010_Artificial_Intelligence_In_Language_Teaching_And_Learning
<https://angl.winter-verlag.de/data/article/11071/pdf/92201014.pdf>
https://www.torontomu.ca/sciencerendezvous/SR2021/A_Brief_Introduction_To_AI.pdf
https://www.dcehvp.org/E-Content/BCA/BCA-III/artificial_intelligence_tutorial.pdf
<https://cdn-dynmedia-1.microsoft.com/is/content/microsoftcorp/microsoft/final/en-us/microsoft-brand/documents/2024-wttc-introduction-to-ai.pdf>
https://www.researchgate.net/publication/351758474_Introduction_to_Artificial_Intelligence
<https://www.niti.gov.in/sites/default/files/2023-03/National-Strategy-for-Artificial-Intelligence.pdf>
https://youtu.be/wiscimXGqyg?si=RfcXnw1TKca_4aUg
<https://youtu.be/rdCcU4vpewA?si=h95Jp>
https://youtu.be/ViFyW7_z2Ns?si=2N7j7iy11rV8FFRe
https://www.researchgate.net/profile/Arya-6/publication/355328386_siksaka_siksa_mem_krtrima_bud'dhi_ya_artiphisiyala_intelijensa_bhumika_evam_vikasa_164-JICR-AUGUST-5014/links/6169fe9f951b3574c649ea27/siksaka-siksa-mem-krtrima-buddhi-ya-artiphisiyala-intelijensa-bhumika-evam-vikasa-164-JICR-AUGUST-5014.pdf
<https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1363313.pdf>
https://www.britishcouncil.org/sites/default/files/ai_in_english_language_teaching_systematic_review.pdf
https://www.researchgate.net/publication/373699010_Artificial_Intelligence_In_Language_Teaching_And_Learning
<https://angl.winter-verlag.de/data/article/11071/pdf/92201014.pdf>
https://www.torontomu.ca/sciencerendezvous/SR2021/A_Brief_Introduction_To_AI.pdf
https://www.dcehvp.org/E-Content/BCA/BCA-III/artificial_intelligence_tutorial.pdf
<https://cdn-dynmedia-1.microsoft.com/is/content/microsoftcorp/microsoft/final/en-us/microsoft-brand/documents/2024-wttc-introduction-to-ai.pdf>
https://www.researchgate.net/publication/351758474_Introduction_to_Artificial_Intelligence
<https://www.niti.gov.in/sites/default/files/2023-03/National-Strategy-for-Artificial-Intelligence.pdf>



अंबेडकर की दृष्टि में अस्पृश्यता के दुर्ग के रूप में भारतीय ग्राम

आरती राजपूत*

डॉ. अनिल दुबे**

सारांश :-

एक औसत हिन्दू, जिसने शायद ही अपने धार्मिक ग्रन्थों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया हो, अपने ग्राम संगठन की प्रशंसा करते नहीं थकता। वह आत्ममुग्धता में इसे दुनिया में सामाजिक संगठन का आदर्श स्वरूप मानता है। वह इन गांवों की कल्पना अपने आप में बहुत कुछ स्वतंत्र गणराज्य के रूप में करता है, जिसमें मुखिया, गांव पंचायत तथा जाति पंचायत सदस्यों से ग्राम स्वशासन का कार्य सम्पन्न करती रही हैं। परन्तु भारतीय संविधान के मुख्य वास्तुकार भीमराव अंबेडकर ने भारतीय ग्राम संगठन के संबंध में इन प्रशंसात्मक विचारों को आत्म प्रवचना और निरी भ्रांति के रूप में निरूपित किया है। उनका मानना है कि यदि भारतीय गांवों के सामाजिक संगठन एवं जनजीवन का तटस्थ एवं वस्तुगत विश्लेषण किया जाये तो हम सिर्फ इससे अलग ही नहीं बल्कि विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचते हैं।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य भारतीय ग्राम पर अंबेडकर के दृष्टिकोण का पता लगाना; सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक ताकतों के उस जटिल जाल का विश्लेषण करना है जिसने उनकी राय में, इसे जातिगत भेदभाव का गढ़ एवं अछूतों की प्रगति और गरिमा के लिये एक प्रमुख बाधा बना दिया।

शब्द कुंजी— अस्पृश्यता, जाति व्यवस्था, स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण।

भारतीय समाज सुधारकों और बौद्धिक दिग्गजों के समूह में डॉ० बी०आर० अंबेडकर एक महान व्यक्तित्व के रूप में खड़े हैं, जिनका जीवन और कार्य जाति की दमनकारी संरचनाओं को ध्वस्त करने और हाशिए पर रहने वालों, विशेषकर अछूतों की मुक्ति के लिये समर्पित था। भारतीय समाज का उनका सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण विश्लेषण मात्र आलोचना से कहीं आगे दिखता है। उन्होंने उन मूलभूत नीवों की पड़ताल की जो असमानता को कायम रखती थीं। अंबेडकर के सबसे गहरे और स्थायी अवलोकनों में से एक भारतीय ग्राम की उनकी समझ थी। उनकी दृष्टि में भारतीय ग्राम कोई रमणीय स्थल नहीं थे वरन् ये तो अस्पृश्यता के दुर्जेय दुर्ग थे। अंबेडकर भारतीय समाज की जाति व्यवस्था की संरचनात्मक जड़ ग्राम में मानते थे। अंबेडकर का मानना था कि ग्राम समरूप इकाई नहीं था बल्कि जाति व्यवस्था के कठोर सिद्धान्तों द्वारा परिभाषित एक पदानुक्रमित व्यवस्था थी। इस व्यवस्था ने अपनी श्रेणीबद्ध असमानता और अनुष्ठानिक शुद्धता और प्रदूषण के आरोपण के साथ, गांव के स्थानिक और सामाजिक संगठन में अपना सबसे ठोस और व्यापक प्रकटीकरण पाया।

पारंपरिक भारतीय ग्राम का भौतिक प्रारूप अक्सर जाति पदानुक्रम को दर्शाता है। उच्च जातियां आमतौर पर गांव के केंद्रीय और अधिक वांछनीय हिस्सों पर अधिकार रखती थी। इसके विपरीत अछूतों को एक निश्चित परिधि में ढकेल दिया गया था। ये अछूत अक्सर गांव की मुख्य सीमा के बाहर अलग-अलग बस्तियों में रहा करते थे। यह स्थानिक अलगाव आकस्मिक नहीं था वरन् यह सामाजिक दूरी को लागू करने और उच्च जातियों एवं अछूतों के बीच सम्पर्क से उत्पन्न होने वाले किसी भी कथित 'प्रदूषण' को रोकने का एक जानबूझकर निर्मित एक तंत्र था। अंबेडकर के अनुसार 'सवर्ण जो अछूतों के स्पर्श से अपवित्र हो जाते हैं वे पवित्र स्नान अथवा गौमूत्र से पुनः शुद्ध हो सकते हैं, किन्तु दुनिया में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसके सेवन से अछूत पवित्र हो सकता है।'।

इसके अतिरिक्त गांव के भीतर श्रम का विभाजन सख्ती से जाति द्वारा निर्धारित किया गया था। पारंपरिक व्यवसाय वंशानुगत थे और प्रत्येक जाति को विशिष्ट कार्य सौंपे गये थे। अछूतों को सबसे नीच और अनुष्ठानिक रूप से निकृष्ट 'प्रदूषित' व्यवसायों, जैसे कि सफाई, चमड़े का काम आदि, के लिये अलग रखा गया था। उच्च जातियों पर इस आर्थिक निर्भरता ने उनकी अधीनस्थ स्थिति को और अधिक रूढ़ किया और

* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, भोपाल, म०प्र०

** शोध निर्देशक, इतिहास विभाग, हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, भोपाल, म०प्र० rajputarti86@gmail.com

उनकी सामाजिक गतिशीलता एवं आर्थिक स्वतंत्रता को बाधित किया। अंबेडकर ने माना कि सामाजिक पदानुक्रम और आर्थिक निर्भरता का यह अन्तर्संबंध एक दुष्चक्र बनाता है जिसने अछूतों को एक स्थायी अधीनता की स्थिति में फंसा दिया।¹²

अंबेडकर ने गांव के भीतर अस्पृश्यता की प्रथा को वैधानिक बनाकर कायम रखने में धर्म और प्रथा की महत्वपूर्ण भूमिका को चतुराई पूर्वक पहचाना। हिन्दू शास्त्रों एवं परम्पराओं, जिनकी अक्सर प्रमुख जातियों द्वारा व्याख्या एवं प्रवर्तन किया जाता है, ने जाति व्यवस्था और अछूतों की अन्तर्निहित अशुद्धता के लिये एक धार्मिक औचित्य प्रदान किया। कर्म और धर्म जैसी अवधारणाओं का उपयोग मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को तर्कसंगत बनाने के लिये किया गया था। धार्मिक ग्रन्थों के द्वारा यह प्रस्थापित करने का प्रयास किया गया कि एक व्यक्ति को वर्तमान जाति उसके पूर्व जन्मों के कर्मों का परिणाम है। गांव के सामाजिक रीति रिवाजों और सामाजिक मानदण्डों ने इन धार्मिक प्रतिबन्धों को और अधिक मजबूत किया। विभिन्न जातियों, विशेषकर सहयोग (भोजन-पानी साझा करना) और विवाह, के संबंध में सामाजिक सम्पर्क को नियंत्रित करने वाले सख्त नियम थे। किसी भी अछूत द्वारा इन मानदंडों का कोई भी उल्लंघन गम्भीर सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक प्रतिबंध और यहां तक कि शारीरिक हिंसा का कारण बन सकता है।¹³ गांव की पंचायत जिसमें अक्सर उच्च जाति के पुरुषों का प्रभुत्व था, इन भेदभावपूर्ण रीति रिवाजों को लागू करने और सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखने के उपकरण के रूप में कार्य करती थीं।

अंबेडकर के लिये, भारतीय गांव केवल सामाजिक और आर्थिक भेद भाव का स्थल नहीं था वरन् यह अछूतों के लिये न्याय एवं समानता से रहित एक स्थान भी था। परम्परागत ग्राम की शक्ति संरचनाएं उच्च जातियों की तरफ पूरी तरह झुकी हुई थीं। उच्च जातियों का गांव की भूमि एवं आर्थिक संसाधनों पर पूर्ण नियंत्रण था। ये उच्च जातियां राजनीतिक दृष्टि से भी प्रभावशाली थीं। इन पंचायतों में न्याय अधिकतर जातिगत नियमों के आधार पर दिये जाते थे। इनमें अछूतों को अक्सर पक्षतापूर्ण निर्णयों का सामना करना पड़ता था। ग्राम स्तर पर एक स्वतंत्र और निष्पक्ष प्रणाली के अभाव का स्पष्ट मतलब था कि अछूतों को प्रमुख उच्च जातियों की दया पर छोड़ दिया जाता था। दण्ड विधान भी भेदभावपूर्ण था। अंबेडकर के अनुसार दण्ड की मात्रा वर्ण की सामाजिक स्थिति के व्युत्क्रमानुपाती होती थी अर्थात् समान अपराध के लिये उच्च वर्ण को कम और निम्नवर्ग के लिये अधिक दण्ड का प्रावधान किया था।¹⁴ उदाहरणार्थ यदि क्षत्रिय ब्राह्मण को गाली दे तो सौ कार्षापण, वैश्य ऐसा ही करे तो दो सौ कार्षापण परन्तु शूद्र किसी ब्राह्मण को गाली दे तो प्राण दण्ड दिये जाने का विधान था।¹⁵ अंबेडकर ने गांव में अछूत बच्चों के लिये शिक्षा के अवसरों की कमी पर भी प्रकाश डाला। शिक्षा के अधिकार से वंचित होने का परिणाम इन वर्गों के सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन में बढ़ोत्तरी के रूप में सामने आया। शिक्षा के बिना ये वर्ग अपनी अधीनस्थ स्थिति को चुनौती देने और गरीबी एवं भेदभाव के दुष्चक्र को चुनौती देने में नाकाम रहे।

अंबेडकर ने परम्परागत भारतीय गांव को भारतीय समाज की प्रगति और आधुनिकीकरण के लिये एक महत्वपूर्ण बाधा के रूप में देखा। वस्तुतः कठोर जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता की गांवों में गहरी पैठ व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमता को दबाती थी, आर्थिक विकास में बाधक बनती थी, और वास्तव में एक समतावादी और लोकतांत्रिक समाज के निर्माण को रोकती थी। अंबेडकर के अनुसार असमानता अन्य समाजों में भी थी परन्तु अस्पृश्यता जैसी विषम और हानिकारक असमानता का स्वरूप इतिहास में कहीं अन्यत्र नहीं है।¹⁶ गांव के भीतर गतिशीलता के अभाव का सीधा तात्पर्य था व्यक्ति अपनी प्रतिभा या आकांक्षाओं की परवाह किए बिना, अपने वंशानुगत व्यवसायों तक ही सीमित रहे। वस्तुतः व्यक्ति को जीवन भर के लिये एक पेशे से बांध दिया जाता है।¹⁷ इससे न केवल अछूतों के लिये अवसर सीमित हुये बल्कि राष्ट्र के लिये समग्र रूप से मानव पूंजी का एक अपूर्णनीय नुकसान भी हुआ। गांव में प्रचलित भेदभावपूर्ण प्रथाओं ने सामाजिक विभाजन और संघर्ष को भी बढ़ावा दिया, सामाजिक सामंजस्य को कमजोर किया और सामूहिक प्रगति में बाधा डाली। इस प्रकार से गांव की संरचना में अछूतों के लिये न तो समान अधिकार और न ही न्याय है। यदि वे अधिकार और न्याय मांगते हैं तो उन्हें उत्पीड़ित किया जाता है।¹⁸ गांव की संकीर्ण और परंपराबद्ध प्रकृति ने इसे समानता, लोकतंत्र और व्यक्तिगत अधिकारों के आधुनिक विचारों का प्रतिरोधी बना दिया था। गहराई में बैठी पूर्वाग्रहों और सामाजिक प्रतिबंधों के डर ने सामान्यतः अछूतों को अपने अधिकारों का दावा करने या स्थापित व्यवस्था को चुनौती देने से रोका। अंबेडकर ने तर्क दिया कि अछूतों के लिये वास्तविक प्रगति केवल गांव की सीमाओं से मुक्त होकर और शहरीकरण एवं आधुनिक शिक्षा द्वारा प्रदान किये गये अवसरों को अपनाकर ही प्राप्त की जा सकती है।

भारतीय गांव के अपने आलोचनात्मक मूल्यांकन को देखते हुये अंबेडकर ने ऐसे कट्टरपंथी विकल्पों की वकालत की जो अछूतों की मुक्ति को सक्षम बना सकें। उन्होंने माना कि मौजूदा ग्राम संरचना के भीतर मात्र सुधार गहरी जड़ें जमा चुकी असमानताओं को दूर करने के लिये अपर्याप्त थे। उनके समाधान में एक बहुआयामी दृष्टिकोण शामिल था।

अंबेडकर ने शहरीकरण और औद्योगीकरण को जाति व्यवस्था की जंजीरों को तोड़ने के लिये महत्वपूर्ण माना। शहरी परिवेश में पारंपरिक सामाजिक पदानुक्रम कम कठोर थे और व्यक्तियों को जाति के बजाय योग्यता के आधार पर गुमनामी और सामाजिक गतिशीलता के अधिक अवसर मिले। औद्योगीकरण ने अछूतों को अपने पारंपरिक दूषित व्यवसायों से दूर जाने और आजीविका के वैकल्पिक स्रोतों को खोजने का सुअवसर प्रदान किया।⁹

अंबेडकर ने सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में शिक्षा पर अत्यधिक जोर दिया। उनका विश्वास था कि शिक्षा अछूतों को आलोचनात्मक रूप से सोचने का कौशल विकसित करने, भेदभावपूर्ण विचारधाराओं को चुनौती देने और समान नागरिक के रूप में अपने अधिकारों का दावा करने में सक्षम बनाएगी। अंबेडकर के अनुसार शिक्षा व्यक्ति को शोषण, अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये तैयार करती है।¹⁰

अंबेडकर ने सामाजिक न्याय प्राप्त करने में राजनीतिक शक्ति के महत्व को पहचाना। उन्होंने अछूतों के लिये अलग निर्वाचक मण्डलों के लिये संघर्ष किया और बाद में विधायिका और सरकारी नौकरियों में उनके पर्याप्त प्रतिनिधित्व और राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिये आरक्षण के प्रावधान का समर्थन किया। अंबेडकर की दृष्टि में स्वतंत्र भारत में राजनीतिक शक्ति ही एक मात्र ऐसा साधन है जिसे अछूत प्राप्त कर सकते हैं।¹¹ उनके विचार में जब तक दलितों के हाथ में राजनीतिक सत्ता नहीं आ जाती तब तक उनकी सामाजिक दशा में वांछित सुधार नहीं आ सकता।¹² डॉ० अंबेडकर का शक्ति से आशय पद या कुर्सी प्राप्त करना और उससे अपना हित साधने से कहीं अधिक है। वस्तुतः शक्ति वह है जिसके द्वारा नीति निर्धारण किया जाए, जिसके द्वारा राष्ट्रीय और सामाजिक हित के निर्णय लिए जाएं।.... सत्ता साध्य नहीं है सत्ता लक्ष्य प्राप्ति का साधन है।¹³

एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए अंबेडकर ने सन् 1956 ई० में लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म में धर्मांतरण कर लिया। उन्होंने बौद्ध धर्म को एक ऐसे धर्म के रूप में देखा जिसने जाति व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया था। बौद्ध धार्मिक उपदेशों एवं पुस्तकों में मुक्ति एवं समानता के सिद्धान्त व्याख्यायित हैं। डॉ० अंबेडकर के अनुसार बुद्ध का मार्ग विज्ञान एवं धर्म का सार्थक समन्वय है। इसके अनुसरण से ही मानव की मुक्ति एवं कल्याण संभव है। धम्म बौद्धिक एवं आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग है। धम्म स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व अर्थात् कल्याणकारी जीवन का प्रतीक है।¹⁴ अंबेडकर के धर्मांतरण का व्यापक समर्थन एवं आलोचना दोनों हुई तथापि, यह हिन्दू धर्म की अन्तर्निहित असमानताओं के विरुद्ध और गरिमा एवं आत्मसम्मान की खोज में एक शक्तिशाली वक्तव्य था।

निष्कर्ष :-

अंबेडकर की भारतीय गांव की “अस्पृश्यता के दुर्ग” के रूप में दृष्टि उन गहरी जड़ें जमा चुकी सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक ताकतों की एक शक्तिशाली आलोचना थी जिन्होंने शताब्दियों से जाति आधारित भेदभाव का पोषण किया था। उनके सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण ने गांव को एक सामंजस्यपूर्ण समुदाय के रूप में नहीं, वरन् अछूतों के लिये गहरी असमानता और उत्पीड़न के स्थल के रूप में प्रकट किया। शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, शिक्षा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और यहां तक कि धार्मिक रूपान्तरण के लिये उनके आग्रह ने उस दृढ़ विश्वास को दर्शाया कि इस दुर्ग को ध्वस्त करने और वास्तविक मुक्ति प्राप्त करने के लिये आंशिक नहीं बल्कि मौलिक संरचनात्मक परिवर्तन आवश्यक थे। 21वीं शताब्दी के अनुसंधानकर्ताओं के लिये अंबेडकर का कार्य ग्रामीण भारत में जाति की जटिलताओं को समझने का एक महत्वपूर्ण नजरिया बना हुआ है। अंबेडकर की आलोचना की अनुगुंज आज भी सुनाई देती है और हमें याद दिलाती है कि असमानता के दुर्गों, भौतिक और वैचारिक दोनों को ध्वस्त करना, एक अधूरा किन्तु आवश्यक कार्य बना हुआ है।

संदर्भ सूची :-

1. सिंह, रामगोपाल, डॉ० आम्बेडकर का जीवन एवं विचार-दर्शन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2017, पृ०सं० 83
2. अम्बेडकर, बी०आर०, डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज, (खण्ड 5), गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र पब्लिकेशन, बाम्बे, 1989, पृ०सं० 25
3. सिंह, रामगोपाल, डॉ० आम्बेडकर का जीवन एवं विचार-दर्शन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2017, पृ०सं० 77
4. तदैव, पृ०सं० 69
5. मनु संहिता, 18 : 267-78
6. अम्बेडकर, भीमराव, भगवान बुद्ध एवं उनका धर्म (बुद्धा एण्ड हिज धर्मा का अनुवाद), सिद्धार्थ प्रकाशन, बंबई, 1979, पृ०सं० 29
7. अम्बेडकर, भीम राव, जातिभेद का उच्छेद, एनीहिलेशन ऑफ कास्ट का हिन्दी अनुवाद, अम्बेडकर साहित्य रक्षक परिषद, झींझक, 1974, पृ०सं० 27-29
8. अम्बेडकर, भीमराव, डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज (खण्ड 5), गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र पब्लिकेशन, बाम्बे, 1989, पृ०सं० 22-26
9. सिंह, रामगोपाल, डॉ० आम्बेडकर का जीवन एवं विचार-दर्शन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2017, पृ०सं० 153-154
10. धर्म कीर्ति, महान मानवतावादी दार्शनिक : डॉ० अम्बेडकर, सम्यक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2019, पृ०सं० 84
11. अम्बेडकर, भीमराव, डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज (खण्ड 1), गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र पब्लिकेशन, बाम्बे, 1979, पृ०सं० 24
12. सिंह, रामगोपाल, डॉ० आम्बेडकर का जीवन एवं विचार-दर्शन, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2017, पृ०सं० 156
13. तदैव, पृ०सं० 156-157
14. तदैव, पृ०सं० 159



भारतीय दर्शन और भक्तिकाव्य

श्वेता कुमारी*

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र संक्षेप में प्रस्तुत किया जायेगा जिसमें भारतीय दर्शन का भारतीय काव्य पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका दिग्दर्शन होगा। यह शोध पत्र इस बात की छानबीन करता है कि भारतीय दर्शन की समृद्ध परम्परा में से किस दर्शन का प्रभाव भक्ति काव्य पर सर्वाधिक पड़ा। लगभग तीन शताब्दियों में लिखे गए भक्ति काव्य का आधार क्या रहा होगा, साथ ही भारतीय समाज और संस्कृति को समझने के 2 प्रमुख स्तम्भ भक्ति और दर्शन ने मिलकर सामान्य मनुष्य के लिए कौन-सा वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत किया। क्यों आज भी भारतीय दर्शन और भक्ति काव्य के अन्योन्याश्रित संबंध को पढ़ने और समझने की आवश्यकता है आदि प्रश्नों के उत्तर को इस शोध के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :- दर्शन, भक्तिकाव्य, सुदीर्घ परंपरा, अन्योन्याश्रित, सिद्धांत, परिवेश, मानवीय मूल्य, समरसता

शोध सार दर्शन शब्द की निष्पत्ति 'दृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है देखना और दिखाना। व्यापक अर्थ में 'दृ'यते यथार्थ तत्त्वमेव अर्थात् जो यथार्थ का अनुभव कराए वह दर्शन है। मानवीय अन्वेषण के रूप में दर्शन का विकास जिज्ञासा से होता है। मनुष्य की जिज्ञासा ही उसे संसार की दृश्य-अदृश्य, ज्ञात-अज्ञात एवं मूर्त-अमूर्त विषय-वस्तु के प्रति प्रश्न करने को प्रेरित करती है और वह ज्ञान के विविध माध्यमों से इसका उत्तर तलाशने की कोशिश करता है, डॉ० विनय मोहन शर्मा लिखते हैं :- "मनुष्य बुद्धिसम्पन्न प्राणी होने के कारण अपनी सचेतावस्था से ही जिज्ञासु रहा है। वह 'अहम्' (आत्मा), 'दृश्य' (सृष्टि या जगत्) और सः (ब्रह्म, परमात्मा) को जानने के लिए पर्युत्सुक रहा है। जगत् में वह क्यों है? जगत् ही क्यों? मेरा और जगत् का परस्पर क्या संबंध है आदि प्रश्न उसे झकझोरते रहे हैं। उसकी ज्ञान की पिपासा कभी तृप्त नहीं हुई।" इस प्रकार हम देख सकते हैं कि इसी ज्ञान पिपासा को तृप्त करने के लिए मनुष्य जो अध्ययन, मनन एवं चिंतन करता है वहीं दर्शन कहलाता है, अर्थात् दर्शन विचारधारा, दृष्टिकोण या चिंतन ही है और चिंतन की परम्परा का विकास स्वाभाविक रूप से निरंतर गतिशील है।

विश्व में दर्शन का आरम्भ हमें भारत में ही दिखाई देता है। भारतभूमि में प्राचीनकाल से ही चिंतन, मनन करने वाले मनीषियों, विचारकों, विद्वानों एवं जिज्ञासु दार्शनिकों की सुदीर्घ परम्परा रही है, जिन्होंने ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत्, माया, मोक्ष, विद्या-अविद्या आदि की व्याख्या कर भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि तैयार की है। वेद-उपनिषद् से प्रारम्भ दर्शन आगे चलकर बौद्ध, जैन, चार्वाक, 'जडदर्शन', प्रस्थानत्रयी, शंकराचार्य का अद्वैतवाद, रामानुजाचार्य का विष्णुाद्वैतवाद, मध्वाचार्य का द्वैतवाद, निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद और आधुनिककाल में देखे तो राजा राम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, अम्बेडकर, गाँधी आदि दर्शन निरंतर विकसित होता रहा है और भविष्य में होता रहेगा। पूरे पश्चिम का पहला दार्शनिक 'थेल्स' छठवीं शताब्दी में हुआ जब भारत में बौद्ध और जैन दर्शन का खूब प्रचार-प्रसार हो रहा था और उससे भी लगभग कुछ 1000 साल पहले से हमारे यहाँ वेद, उपनिषद् है। मैथिलीकरणगुप्त 'भारत-भारती' के अतीतखण्ड में लिखते हैं "संसार को पहले हम ही ने ज्ञान शिक्षा दान की, अचार की, व्यवहार की, व्यापार की, विज्ञान की" यह पंक्ति दर्शाती है कि भारतीय ज्ञान, परम्परा और दर्शन कितनी समृद्ध एवं प्रखर रही है।

भारत में भक्ति और दर्शन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। यह भारतीय समाज, संस्कृति और ज्ञान की परम्परा को समझने के 2 प्रमुख स्तम्भ हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल को ग्रियर्सन द्वारा स्वर्णयुग से अलंकृत किया गया जिसमें बहुत से दर्शनों, विचारों, मतवादों और सिद्धांतों का अद्भुत समन्वय एवं प्रभाव दिखाई देता है। भक्तिकालीन कवि जितनी प्रेरणा तदयुगीन परिवेश से ग्रहण कर रहे थे, उतनी ही प्रेरणा भारतीय दर्शन की चली आ रही सुदीर्घ परम्परा से। यह भक्ति कवि भारतीय दर्शन से प्रेरणा ग्रहण कर अपने

* शोधार्थी, शंभू दयाल पी०जी कॉलेज, गाजियाबाद

रचनात्मक कर्म को ऊँचाई दे रहे थे। भारतीय दर्शन ने कितनी गहराई से भक्तिकाव्य को प्रभावित किया इसको समझने के लिए हम भारतीय दर्शन को 4 युगों में विभाजित कर सकते हैं:-

(i) पहला युग है वैदिक युग है जिसमें वेद और उपनिषद् है। वेदों के आरम्भ में हमें दार्शनिक प्रवृत्ति कम दिखाई देती हैं किन्तु भक्ति-साधना के बीज इस युग में ही बोये गये जिसका क्रमिक विकास आगे चलकर पल्लवित और पुष्पित होता रहा। ऋग्वेद में लिखा है - “एकम सत् विप्रा बहुधा वदन्ति” अर्थात् एक ही सत्य है। अलग-अलग तरीके से व्यक्त किया गया है।

एकमात्र सत्य को आगे चलकर स्वीकार्य करने वाले कई दर्शन हैं और इसका प्रभाव हमें भक्तिकाल के कवियों पर भी दिखाई पड़ता है। सगुण रामकाव्यधारा के कवि तुलसीदास ईश्वर प्राप्ति के प्रचलित विभिन्न साधन को देखकर लिखते हैं -

“कोऊ कह झूठ, सत्य कह कोऊ,
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम,
सो आपन पहुँचानौ”³

भारतीय दर्शन के आरम्भ का सबसे गहरा बिंदु हमें उपनिषद् में दिखाई पड़ता है। भक्ति शब्द का प्रयोग भी सर्वप्रथम हमें श्वेताश्वर उपनिषद् में दिखाई पड़ता है। उपनिषद् समस्त भारतीय दर्शनों के मूल स्रोत है। आत्मा, मोक्ष, कर्मसिद्धांत, पुनर्जन्म, ब्रह्म आदि की व्याख्या की शुरुआत उपनिषद् से ही हुई। उपनिषद् में भी माना गया है एकमात्र सत्य और सत्ता परब्रह्म ही है। यह भारतीय दर्शन का पहला युग था और यहीं से भक्तिकाव्य में दृष्टव्य प्रवृत्तियों के बीज हमें दिखाई पड़ने लगे थे। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में - “उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म, जीव, जगत और माया संबंधी विचारधारा के साथ ही ब्रह्म के स्वरूप-वर्णन से संबंध उपमानों और अप्रस्तुत योजनाओं को संतकवियों द्वारा प्रायः उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया है।”⁴

भारतीय दर्शन का दूसरा फेज (युग) छठीं शताब्दी ई.पू. माना जाता है जब बौद्ध और जैन दर्शन का प्रचार-प्रसार हुआ। इस दर्शन में वैदिक कर्मकांड का विरोध किया गया। अनेक आडम्बरों, कर्मकाण्डों से पीड़ित जनता के लिए इस दर्शन ने मोक्ष का सरल और सहज मार्ग प्रस्तुत किया यह प्रवृत्ति हमें भक्तिकाव्य में भी दिखाई पड़ती है। सम्पूर्ण भक्तिकाव्य कर्मकाण्ड का विरोध कर ज्ञान और भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानता है। कबीर लिखते हैं -

“माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि के, मन का मनका फेर।।”⁵

मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कबीर लिखते हैं - “पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहाड़। तासै तो चक्की भली, पिंसी खाए संसार”⁶

बौद्ध और जैन दर्शन के प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय दर्शन का तीसरा युग शुरू हुआ, जो आस्तिक अर्थात् वेदों में विश्वास करने वाला दर्शन था। जिसे ‘इन्दु’ दर्शन के नाम से जाना गया इसमें कपिल मुनि का सांख्य दर्शन, पतंजलि का योग, गौतम मुनि का न्याय, कणाद का वैशेषिक, जैमिनी का मीमांसा और वादरायण का ब्रह्मसूत्र शामिल है। इन दर्शनों ने वेद और उपनिषद् को फिर से स्थापित करने का प्रयास किया। इस युग को सूत्र युग के नाम से भी जाना जाता है। इसके बाद भारतीय दर्शन का चौथा युग प्रारम्भ होता है। इस युग का समय लगभग इस्लाम के आगमन से दो सौ-तीन सौ साल पहले से और इस्लाम के आगमन के तीन-चार सौ साल के बाद का युग है। इस युग में आद्य आचार्य शंकराचार्य ने भारतीय दर्शन के आधार तीन पुस्तक (उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र) की व्याख्या कर ‘प्रस्थानत्रयी’ नामक भाष्य लिखा। शंकराचार्य ने एकेश्वरवाद पर आधारित एक नयी आदर्शवादी प्रणाली को जन्म दिया जो अद्वैतवाद के नाम से प्रसिद्ध हुई उनके अनुसार ‘ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या’ अर्थात् ब्रह्म और जीव एक है अपनी अज्ञानता और माया के कारण जीव अपने को ब्रह्म से इतर समझता है। अविद्या के कारण ही जीव को वास्तविक रूप का ज्ञान नहीं होता। माया ही विकार है। भक्ति को शंकराचार्य ने ज्ञान प्राप्ति का साधन माना और ज्ञान के बिना मोक्ष असंभव है। इस दर्शन ने गहरे रूप से भक्तिकाव्य को प्रभावित किया। निर्गुण काव्यधारा के भक्त कवि कबीर, रैदास, नानक, दादू, मलूक आदि अद्वैतवाद के समर्थक रहे हैं वह आत्मा और परमात्मा की एकता को स्वीकारते हैं यथा

“जल में कुंभ है, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी,
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तथ्य कह्यो ज्ञानी”⁷

अविद्या के कारण जीवों में भेद होने पर भी जीवात्मा ब्रह्म ही है, हम इस वास्तविक ज्ञान से दूर हैं।

“पानी ही ते हिम भया, हिम हवै गया विलाय,

जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहया ना जाए”⁸

जिस प्रकार शंकराचार्य ने माया को दृष्ट्यात्मक जगत का विकार माना उसी प्रकार कबीर भी माया को महादुर्गती मानते हैं, माया ही अविद्या है और ज्ञान विरोधिनी है जो हमें परमात्मा से दूर करती है कबीर आगे लिखते हैं – “कबीर माया मोहनी जैसे मीठी खांड” अद्वैतवाद का ही प्रभाव है कि संतकाव्यधारा के कवियों ने ब्रह्म को निराकार, निर्भय, अनाम, अजर-अमर और सर्वव्यापक माना। सुन्दरदास लिखते हैं –

“ब्रह्म निर्गह, निरामय, निर्गुणन, नित्य निरंजन

और न भासै।

ब्रह्म अखण्डित उध ऊपर बाहिर भीतर ब्रह्म”⁹

अद्वैत दर्शन ने व्यापक स्तर पर भक्तिकाव्य और भक्तिकाल में भी संतकाव्य धारा को गहराई से प्रभावित किया। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में “संतकाव्यधारा का मुख्य आधार है—शंकर का अद्वैतदर्शन। संतों की विवर्त भावना, प्रतिबिम्ब-भावना, प्रणव-भावना, साधनापक्ष और भक्ति पद्धति पर आचार्य शंकर की विचारधारा का व्यापक प्रभाव है। आचार्य शंकर और निर्गुण संत कवि, दोनों इस विषय में एकमत हैं कि जीव विद्वद् ब्रह्म तत्त्व है और जो भिन्नता की उपलब्धि होती है, वह माया अथवा अविद्याजनित उपाधि है। संतों ने आत्मा की सर्वरूपता, सर्वात्मभावना एवं सर्वव्यक्तिमत्ता प्रतिपादित की है। ये भावनाएं भी शंकर के सिद्धांत के अनुकूल हैं।”¹⁰

निर्गुण काव्यधारा के संत कवियों पर नाथपंथ के सिद्धांत का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। रामकुमार वर्मा के अनुसार – “नाथपंथ से ही भक्तिकाल के संतमत का विकास हुआ।”¹¹ नाथपंथियों की हठयोग साधना जिसके अन्तर्गत गुरु-महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मनःसाधना, कुंडलिनी जागरण, शून्यसमाधि आदि सिद्धांत शामिल हैं, हमें कबीर, सिंगा, बाबालाल आदि की वाणियों में स्पष्टतः दिखाई देते हैं। हठयोग का उपदेश गोरखनाथ ने दिया था जिसके अनुसार मनुष्य शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य अर्थात् जहाँ चाँद और सूर्य (इड़ा और पिंगला) का मिलन केंद्र बिंदु (सुष्मन्ना) है वहाँ समाधि लगाता है वहीं ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। नाथपंथियों ने ब्रह्म के साक्षात्कार का माध्यम शरीर को ही माना। उनके अनुसार इस शरीर में ही सब कुछ है जिसके साधना (कुंडलिनी जागरण से शून्य समाधि तक) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। संतकाव्य के कवि सिंगा ने भी लिखा है –

“घर वस्तु बाहर क्यों ढूँढे, बन बन फिरा उदासी”¹² कबीर ने लिखा – “कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूँढे बन माहि”¹³ सूफियों में मंसूर ने कहा – ‘अनहलक’ अर्थात् ‘मैं ही ब्रह्म हूँ’ जिसका तात्पर्य यह हो सकता है कि इस शरीर में ही ब्रह्म है, जिसकी हम साधना द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

पूरे मध्यकाल में अनेक कवि, महात्मा एवं दार्शनिक हुए जो अपने-अपने दर्शन के जरिए भारतीय चिंतन को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं, लेकिन शंकराचार्य ने जिस मजबूती के साथ अद्वैतवाद को स्थापित किया उसका विरोध करना कठिन काम था और इस कार्य को चार बड़े आचार्यों ने अपने दर्शन के माध्यम से किया, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य और बल्लभाचार्य। सर्वप्रथम यह कार्य रामानुजाचार्य ने विष्णुाद्वैतवाद सिद्धांत के माध्यम से किया। शंकराचार्य के दर्शन के कारण भक्ति गौण तथा बुद्धिवाद प्रधान हो गया था। अतः भक्ति को पुनः अभ्यास में लाने का कार्य रामानुजाचार्य करते हैं। विष्णुाद्वैतवाद सिद्धांत के अनुसार आत्मा और परमात्मा एक नहीं हैं। आत्मा ईश्वर का अंश है और दोनों की वास्तविक सत्ता है और दोनों ही सत्य हैं। जहाँ शंकराचार्य ने ज्ञान को मुक्ति का साधन माना वहीं रामानुजाचार्य भक्ति को मुक्ति का साधन मानते हैं और ज्ञान को सहायक तत्व। इसी रामानुजाचार्य की परम्परा में आगे चलकर भक्त कवि तुलसीदास हुए जिनपर विष्णुाद्वैतवाद का प्रभाव था। रामानुजाचार्य के विषय रामानंद हुए और रामानंद के विषय कबीर। रामानंद ने दक्षिण में उपजी भक्ति का उत्तर में प्रचार-प्रसार किया। कबीर लिखते हैं – “भक्ति द्रविड़ उपजी, लाए रामानन्द प्रकट करी कबीर ने, सप्तद्वीप नवखण्ड”¹⁴

शंकराचार्य के अद्वैतवाद का घोर विरोध माध्वाचार्य ने द्वैतवाद के माध्यम से किया। इनके मत के अनुसार ईश्वर और जगत् भिन्न-भिन्न हैं। और जगत् सत्य है, ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद, जड़ का जीव से भेद वास्तविक है। ईश्वर 8 गुणों से युक्त है। सभी जीव ईश्वर (विष्णु) के अधीन कार्य करते हैं।

निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत सिद्धांत के अनुसार जीव ब्रह्म का अंश है, ब्रह्म अंश है। जीव अणु, अल्पज्ञ है और भक्ति ही मुक्ति का साधन है। इस दर्शन में कृष्ण को उपास्य माना। इस दर्शन के अंतर्गत श्रीभद्र, हरियासदेव, परशुरामदेव आदि सगुण कृष्णभक्ति धारा के कवि आते हैं।

वल्लभाचार्य का सिद्धांत शुद्धाद्वैतवाद कहलाता है इनके अनुसार ब्रह्म और ईश्वर एक है। श्रीकृष्ण ही पूर्ण ब्रह्म है और वह सत्, चित् और आनन्द गुणों से युक्त है। इस दर्शन में भक्ति का आधार पृष्टिमार्ग को माना गया। भगवद् कृपा को “पृष्टि” कहा जाता है और भगवद् कृपा से ही मुक्ति संभव है। इस सिद्धांत से प्रभावित सबसे बड़े कवि सूरदास हुए। सूरदास ने भगवान के अनुग्रह पर सर्वाधिक बल दिया। बिना अनुग्रह के इस लोक से मुक्ति संभव नहीं —

“जा पर दीनानाथ ढरै।

सोइ कुलीन बड़ौ सुन्दर सोइ जा पर कृपा करै।

सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढरै।।”¹⁵

इस दर्शन के अंतर्गत सूरदास के अलावा कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुज दास आदि भक्त कवियों का नाम उल्लेखनीय है जिन्हें अष्टछाप के नाम से भी जाना जाता है। निर्गुण काव्यधारा जहाँ अद्वैतवाद दर्शन से प्रभावित थी, तो वहीं सगुण काव्यधारा के कवियों ने वैष्णव आचार्यों के सिद्धांत से प्रेरणा ग्रहण कर भक्ति को प्रतिष्ठित करने के लिए सगुण रूप राम और कृष्ण को आधार बनाया। वैष्णव दर्शन के समानान्तर शैव दर्शन का प्रभाव भी हमें मध्यकाल के भक्ति काव्य पर दिखाई देता है। कन्नड़ के वासव, तेलगू के वेमना, कमीरी कवि ललदेव, दक्षिण भारत की अक्क महादेवी यह सब भारतीय चिंतन धारा के शैव दर्शन से प्रभावित कवि हैं। इन सब कवियों ने आम जनता को भक्ति का एक विकल्प प्रदान किया आप मंदिर नहीं जा सकते तो मंदिर के बाहर रहकर भी उपासना कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर वासव द्वारा अनुभव मंडप की परिकल्पना और असम के शंकरदेव द्वारा कीर्तन घर की परिकल्पना। इन कवियों ने इस परिकल्पना के माध्यम से आम जन को स्थान दिया जहाँ बैठकर वह ईश्वर की भक्ति कर सकते हैं। क्योंकि ईश्वर कण-कण में है वह सबके पास है। कबीर कहते हैं —

“मोको कहाँ ढूँढे बंदे, मैं तो तेरे पास

न मैं मंदिर, न मैं मस्जिद,

ना कावा कैला”।।”¹⁶

अर्थात् ईश्वर को महसूस करने के लिए किसी विीष स्थान मंदिर, मस्जिद की आवश्यकता नहीं है।

निष्कर्ष

विविध एवं बहुरंगी दार्शनिक मतवादों से स्वयं को समृद्ध करता भक्तिकाव्य आज भी कालजयी है, जो मनुष्यता के पक्ष में खड़ा है, जहाँ ऊँच-नीच, जाँति-पाँति का भेद नहीं, पाखंड नहीं, आडम्बर नहीं, मनुष्य का मनुष्य से प्रेम है। जायसी के शब्दों में “मानुष प्रेम भयो बैकुंठी”¹⁷ मानवीय मूल्यों, सामाजिक समरसता एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की परिकल्पना को साकार करने वाले भक्तिकाव्य की आवश्यकता हमें आज भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

डॉ० विनय मोहन शर्मा, शोध प्रविधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ०सं० 3

मैथिलीकरण गुप्त, भारत-भारती, साहित्य सदन प्रकाशन, चिरगाँव झांसी, संस्करण 1984, पृ०सं० 16

तुलसीदास, विनय पत्रिका, गीताप्रेस प्रकाशन, संस्करण 1998, पृ०सं० 142

डॉ० नगेन्द्र, डॉ० छरदयाल(सं), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स प्रकाशन, संस्करण 84, 2023, पृ०सं० 114

<http://bb-hindipoems.blogspot.com>

<https://hi-quora.com>

[egyankosh, https://egyankosh.ac.in](http://egyankosh.ac.in)

वही

वही

डॉ० नगेन्द्र, डॉ० छरदयाल(सं), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स प्रकाशन, संस्करण 84, 2023, पृ०सं० 114

वही, पृ०सं० 62

वही, पृ०सं० 125

कबीर के पीछे, Hindwi, <https://www.hindwi.org>

रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, तीसरा संस्करण, 2010, पृ०सं० 270

डॉ० नगेन्द्र, डॉ० छरदयाल(सं), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स प्रकाशन, संस्करण 84, 2023, पृ०सं० 190

Hindwi, <https://www.hindwi.org>

डॉ० संगीता रानी, मानुष प्रेम का कवि जायसी, <https://iicrt.org>

संस्कृत साहित्य में शून्य की अवधारणा

डॉ. दीपक कुमार*

संस्कृत वाङ्मय के परिशीलन से विदित होता है कि सर्वप्रथम शून्य की अवधारणा विश्व के सबसे प्रचीनतम ग्रन्थ वेदों में दृष्टिगोचर होती है। वेदों में शून्य शब्द का वर्णन एवं भाव कई स्थलों पर मिलता है।¹ वेद के साथ ही कालान्तर में संस्कृत साहित्य में शून्य का ज्ञान हमें दर्शन, उपनिषद्, तथा ब्राम्हस्फुट सिद्धान्त, लीलावती, छन्द शास्त्र जैसे गणित शास्त्र की अनेक पुस्तकों में भी मिलता है। यजुर्वेद (वाज.सं.) में शून्य को ब्रह्म के रूप में बताया गया है। इसे 'ख' अक्षर से प्रदर्शित किया गया है।¹ 'ख' अक्षर के अनेकानेक प्रयोग वेदों में कई स्थलों पर हैं। जहाँ अर्थ के रूप में आकाश, छिद्र, अन्तरिक्ष, इन्द्रिय, स्वर्ग लोक, रिक्त स्थान, अम्बर, गगन, नभ, अनन्त, वियत्, शून्य आदि मिलते हैं। ऋग्वेद में एक स्थल पर अग्नि देवता से भक्त को स्वर्ग देने की प्रार्थना में 'ख' का प्रयोग हुआ है।² अथर्ववेद में सप्त इन्द्रिया बताया गयी हैं, यहाँ इन्द्रियों के लिए 'ख' का प्रयोग हुआ है।³ रथ के छिद्र स्थान के लिए 'ख' का प्रयोग ऋग्वेद में देखने को मिलता है।⁴ आकाश का अर्थ देने योग्य प्रयोग भी ऋग्वेद में हुआ। यहाँ पर आकाश को जल से सिक्त करने की बात कही गयी है। यहाँ पर भी 'ख' का प्रयोग हुआ है।⁵

भास्करीय बीज गणित में खहर शब्द आया है। वहाँ कहा गया है कि खहर में कोई संख्या जुड़े (प्रविष्ट) हो जाय या कोई संख्या निकल जाय तब भी वह खहर (अनन्त) ही रहता है। 'खहर' से यहाँ अनन्त को बताया गया है।⁶ लीलावती नामक गणित की पुस्तक में आया है कि किसी राशि में शून्य से गुणा करने पर शून्य प्राप्त होता है। शून्य से भाग देने पर अनन्त प्राप्त होता है। इस शून्य के लिए 'ख' का प्रयोग किया गया है।⁷ भास्कराचार्य द्वितीय ने भी बताया है कि शून्य से किसी संख्या में भाग देने पर अनन्त आता है और इसे खहर से प्रदर्शित किया है। यहाँ खहर का अभिप्राय ब्रह्म, ईश्वर, अनन्त ही है।⁸ लीलावती पुस्तक में भी शून्य से विभाजित करने पर प्राप्त राशि को खहर कहा गया है।⁹ किसी भी प्रकार की धनात्मक संख्या या ऋणात्मक संख्या को शून्य से विभक्त करने पर अनन्त की प्राप्ति होगी ऐसा ब्राम्हस्फुट सिद्धान्त में बताया गया है। यहाँ पर भी शून्य के लिए 'ख' अक्षर ही प्रयुक्त हुआ है।¹⁰ शून्य के लिए 'ख' का प्रयोग करके त्रिशतिका में कहा गया है कि शून्य से किसी चर या अचर राशि को गुणा करे या किसी चर अचर राशि से शून्य में गुणा करें दोनों ही स्थितियों में हमें उत्तर स्वरूप शून्य ही प्राप्त होगा।¹¹ ऋग्वेद में रिक्त स्थान से भरा होना या अवकाश से पूर्ण होने वाले, तथा गोल छिद्र के लिए भी 'ख' अक्षर प्राप्त होता है।¹² महावीर जैसे विभिन्न विद्वानों ने 'ख' अक्षर का प्रयोग आकाश के कई पर्यायवाची शब्दों जैसे— आकाश, गगन, शून्य, नभ और वियत् के रूप में किया है।¹³

शून्य के लिए संस्कृत साहित्य में अलग-अलग कई पुस्तकों में अनेकानेक शब्द प्राप्त होते हैं। प्रमुख रूप से साहित्य एवं वैदिक ग्रन्थों में शून्य, गगन, अन्तरिक्ष, अम्बर, अनन्त, तुच्छय, वशीक, वशि, नभ, रिक्त और पूर्ण इत्यादि शब्द प्राप्त होते हैं।

ईशावास्योपनिषद् के शांतिपाठ व बृहदारण्यक उपनिषद् में शून्य और अनन्त के लिए पूर्ण शब्द का प्रयोग करते हुए यह उल्लेख मिलता है, पूर्ण से पूर्ण को निकाल देने पर पूर्ण ही बचता है। अनन्त से अनन्त निकाल देने पर अनन्त ही बचता है। शून्य से शून्य निकाल देने पर शून्य ही बचता है। शून्य आकाश के स्वरूप की एक पूर्ण संख्या है। यह अनन्त का भी यथोचित वर्णन करता है। यहाँ पूर्ण शब्द से इन सभी शून्य अनन्त, आकाश और पूर्ण के अर्थ का पता चलता है।¹⁴ ऋग्वेद में एक स्थल पर अनन्त शब्द स्वयं के शाब्दिक रूप में प्राप्त होता है और शून्य का भी बोध कराता है।¹⁵ शून्य के महत्व को बताते हुए अथर्ववेद में अपरिमित शब्द आया है।¹⁶ यजुर्वेद में शून्य का बोध अनन्त तक कराने के लिए असंख्यात शब्द प्रयुक्त हुआ है।¹⁷

शून्य के किसी संख्या में प्रयुक्त होने पर उसके स्थान या किसी संख्या में अन्तर्निहित (स्थानीय मान) के रूप में शून्य के स्थान का ज्ञान कराने का वर्णन असंख्येय शब्द का प्रयोग करते हुए अथर्ववेद में मिलता

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

है।¹⁸ शून्य के रूप को स्पष्ट करने के लिए श्रीमद्भागवत में कहा गया है— “यत्तद् ब्रह्म परं सूक्ष्मम् अशून्य शून्य कल्पितम्।”

यहां शून्य का अर्थ अभाव और अनन्त दोनों स्वरूपों में आता है। परम सूक्ष्म ब्रह्म शून्य नहीं है परन्तु यह प्रकल्पित शून्य के सदृश्य होता है। यह ब्रह्म शून्य का अभाव रूप नहीं होते हुए भी शून्य का अनन्त रूप है।

महर्षि पाणिनि द्वारा रचित अष्टाध्यायी के सूत्र में अदर्शन की लोप संज्ञा द्वारा शून्य अवस्था की प्राप्ति प्रदर्शित होती है।¹⁹ व्याकरण में जहां पर भी लोप शब्द का प्रयोग होता है। वहां पर वर्ण उपस्थित रहते हुए भी अदृश्य हो जाता है। वर्ण के अदृश्य हो जाने पर उसका अभाव नहीं माना जाता वह अदृश्य रूप में उपस्थित रहता है। शून्य वह संख्या है जिसे हम किसी प्रकार से व्यक्त नहीं कर सकते परन्तु वह विद्यमान है। सम धनात्मक और सम ऋणात्मक के मिलने पर शून्य हो जाता है। इस शून्य में अभाव नहीं है। इस शून्य में धनात्मक व ऋणात्मक दोनों जुड़े हैं। इन दोनों धनात्मक और ऋणात्मक समान संख्याओं का योग शून्य है।²⁰ जैसे— $(+7)+(-7)=0$ ।

यहां धनात्मक संख्या और ऋणात्मक संख्या दोनों के विद्यमान रहने पर भी शून्य रूप में हो जाना संख्याओं की अदृश्यता को स्पष्ट करता है। उसके अभाव को प्रकट नहीं करता है। अदृश्य वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा के लिए अथर्ववेद में शून्यैषी शब्द का प्रयोग मिलता है।²¹ शून्यता के बढ़ने पर संख्या में इसकी शक्ति दश गुणा गुप्त रूप से बढ़ जाती है ऐसा वेद में वर्णन किया गया है। शून्य में कुछ विद्यमान है, तभी 10, 100, 1000, 10000 और 100000 इत्यादि संख्याओं का शब्दार्थ अलग-अलग लिया जाता है। यदि शून्य में अभाव होता तो इन सभी का अर्थ एक रूप में होता। इससे शून्य के अन्दर अभाव का गुण न होने का पता चलता है। यजुर्वेद में शून्य को इस प्रकार 18 स्थान तक प्रयोग कर एक से परार्ध तक का उल्लेख किया गया है।²²

आचार्य पिङ्गल ने अपने छन्द शास्त्र में भी शून्य के रूप का वर्णन किया है।²³ इसके साथ ही आचार्य पिङ्गल ने शून्य की संख्या बढ़ने के प्रभाव को बताया है।²⁴ योग सूत्र के व्यास भाष्य में महर्षि ने एक ही रेखा पर एक, दश और सौ शून्य का वर्णन कर बताया है।²⁵ यजुर्वेद (वाज.सं.) में शून्य का प्रयोग 10 गुना होने पर बड़ी संख्या के लिए परार्ध तक अतिदीर्घ शून्य के 18 स्थान तक और 10 के भाग द्वारा अवसार्ध के लिए, ऋणात्मक संख्या में अतिह्रस्व का प्रयोग शून्य के 17 स्थान ऋणात्मक के लिए प्रयोग हुआ है। कुल 10^{-17} से 10^{18} तक के बारे में बताया गया है।²⁶ अवसार्धतः शब्द का प्रयोग शतपथ ब्राह्मण में भी मिलता है।²⁷ इसके साथ ही अवसार्धः शब्द शतपथ ब्राह्मण काण्व शाखा में भी प्राप्त होता है।²⁸ शून्य के बढ़ने पर दश गुणा होने के बारे में लीलावती पुस्तक में भी उद्धृत किया गया है।²⁹

वेदों में शून्य शब्द का अभिप्राय खालीपन, रिक्तता, अभाव, रिक्त इत्यादि है। इसके लिए शून्य शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर किया गया है। छान्दोग्य ब्राह्मण में अशून्य की अवस्था के बारे में बताया गया है।³⁰ ऋग्वेद में यह वर्णन आता है कि हम कभी अभाव ग्रस्त न हों। यहाँ अभाव का अर्थ देने के लिए शून्य शब्द प्रयोग हुआ है।³¹ अथर्ववेद में भी दरिद्रता के अभाव के लिए शून्य शब्द का प्रयोग किया गया है।³² इसी शून्यता प्राप्त खाली स्थान को आकाश कहा गया है।³³ छान्दोग्य उपनिषद् में अ से सत्, सत् से अणु, अणु वृद्धि के पश्चात् स्फुटित होकर दूर तक फैले आकाश का निर्माण हो, इसमें सृष्टि का निर्माण होने की बात कही गयी है।³⁴ न्याय और वैशेषिक में भी शून्य को अभाव स्वरूप माना गया है। शून्य को आकाश और आकाश में खालीपन माना गया है। इसी रिक्तता के कारण पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारे आदि जो व्यक्त पदार्थ हैं, वे स्थान घेरने और गति करने में सक्षम होते हैं। यह रिक्त स्थान के कारण ही संभव है। इसलिए आकाश को अभाव स्वरूप माना गया है।³⁵ अभाव अर्थ के रूप में शून्यवाद नाम से एक संप्रदाय बौद्ध दर्शन में प्रचलित है। शून्य के बारे में सत् भी नहीं, असत् भी नहीं, दोनों का होना भी नहीं और दोनों सत् और असत् के न होने का विरोध भी नहीं ऐसा बताया है। शून्य को सभी दृष्टियों से सर्वश्रेष्ठ बताया है।³⁶ शून्यता जगत के सभी कोटियों से विनिर्मुक्त है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में शून्य की अवधारणा स्पष्ट होती है।

संदर्भ

1. ऋग्वेद सं. 4/11/17, खे अरौं इव खेदया, ऋग्वेद सं. 8/77/3
ऊँ खं ब्रह्म, वाज.सं. 40/17
शून्यैषी, अथर्व.सं. 14/2/19

2. विषाति गृणते खम्, ऋ० सं० 04/11/02
3. कः स्तखानि वितर्त शीर्षी, अ० सं० 10/02/06
4. खे रक्षस्य । ऋ० सं० 08/19/07
5. अग्धि खम्, ऋ० सं० 10/156/03
6. अस्मिन् विकारः खहरे न राशावापि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु ।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युतं भूत गणेषु यद्वत् ।।
—भास्करीय, बीजगणित— श्लोक 4
7. शून्ये गुणके जाते खं हारश्चेत् पुनस्तदा राशिः ।
अविकृत एव ज्ञेयश्चतैव खेनोनितश्च युतः ।।
—लीलावती शून्य परिकर्म श्लोक 2
8. खहारो भवेत् खेन भक्तश्च राशिः । —भास्करीय बीजगणित श्लोक 3
9. खभाजितो राशिः खहर स्यात् । —लीलावती शून्य परिकर्म श्लोक, 1
10. खोद्धृतमृणं धनं वा तच्छेदम् । —ब्रा०स्फु० सि० 18/35
11. त्रिशतिका सूत्र 8
12. खे अरौ इव खेदया ऋग्वेद । 8/77/3
13. गणित सार संग्रह
14. पूर्णमदः पूर्णमेवावशिष्यते । बृहदारण्यक उप० 05/01/01
15. अनन्तः । ऋ० सं० 01/113/03
16. अपरिमितो यज्ञः अ० 09/05/21
17. असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राः । वाज० सं० 16/54
18. शतं सहस्रत्रय अनुतम न्यर्बुदम् असंख्येयम् । अ० सं० 10/08/24
19. अदर्शनं लोपः अष्टाध्यायी 01/01/60
20. ब्राह्म स्फुट सि० 18/30
21. अथर्व० सं० 14/02/19
22. एका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च
न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्नःऽष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिल्लोके । वाज.सं. 17/2
23. रूपं शून्यम् — पिंगल छन्द सूत्र 08/29
24. दिः इख्ये — पिंगल छन्द सूत्र 08/30
25. योग सूत्र 03/13
26. अतिदीर्घं चातिद्वस्वम् । वाज० सं० 30/22
27. अवरार्धतः, शत० ब्रा० 09/01/02/16
28. अवरार्धः, काण्व शत० ब्रा० 04/01/03/01
29. दशगुणोत्तर ... लीलावती श्लोक 3
30. छान्दोग्य उप० 01/01/11
31. ऋग्वेद सं० 01/105/03
32. अथर्व० सं० 14/02/19
33. गुनः सम्प्रासारणं वा च दीर्घतम् ... । पा०सू० 05/01/02 पर गण वार्तिक
34. छान्दोग्य उपनिषद् 03/19
35. वैशेषिक सूत्र 02/01/20
36. मध्यमक शास्त्र 13/08

कथक नृत्य में प्रयोग होने वाले श्रृंगार व आभूषण के अंग रूप

विशाल कुमार*

प्रकृति - प्रदत्त सौंदर्य के प्रति मानव का आकर्षण तथा ऋतुओं आदि के बदलते रंगों ने मानव जीवन और उसके अंतर्मन पर कब और कैसे अधिकार कर लिया कहना कठिन है। मानव ने प्रकृति के साथ-साथ अपना शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक विकास तो किया ही बल्कि प्रकृति सामग्री का प्रयोग जीवनयापन के अलावा श्रृंगारिक क्रियाओं हेतु भी अपनी अभिरुचि दिखाई। जैसे - जैसे मानव पर देश, काल, अवस्था का प्रभाव पड़ा वैसे- वैसे उसकी अन्य क्रियाओं की भांति रूप - श्रृंगार व आभूषण संबंधित ज्ञान भी विकसित होता चला गया। नारी के सौंदर्यमयी श्रृंगार व आभूषण प्रसंग प्राचीन मंदिरों की मूर्तियों, शिल्पों तथा चित्रों इत्यादि में स्वतः ही दृष्टिगोचर होता है।

आचार्य भरतमुनि विचरित नाट्यशास्त्र ग्रंथ में काव्य, नाट्य, संगीत, नृत्य तथा चित्र आदि का समन्वय स्थापित किया है। इसी तारतम्य में आचार्य भरत ने अभिनय एवं उसके चतुर्विध आंगिक, वाचिक, सात्विक तथा आहार्य आदि प्रकारों का भी वितरण दिया है। जिसमें आचार्य ने आहार्य अभिनय में पात्र की अवस्था एवं प्रकृति के अनुसार स्त्री तथा पुरुष अलंकरणों का उल्लेख किया है। आचार्य भरत ने आहार्य अभिनय में श्रृंगार तथा अलंकरण विधान की विस्तृत श्रृंखला को प्रदर्शित करते हुए उसके महत्व एवं धारण विधान को भी अत्यंत सुक्ष्मता से सम्बोधित किया है। जिसका अनुकरण भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों व नाट्य प्रयोग में वस्तुतः ही दृष्टिगोचर होता है।

भरत मुनि ने शरीर धारण हेतु अलंकार विधान को चार खंडों में विभक्त किया है जो इस प्रकार हैं-

"चतुर्विधन्तु विज्ञेयं नाट्ये ह्याभरणं बुधुः।

आवेध्यं बन्धनीयञ्च क्षेप्यमारोप्यमेव च॥"¹

अर्थात् शरीर को बाँधकर पहनने वाले आभूषण आवेध्य, शरीर पर बांधने वाले आभूषण बन्धनीय, शरीर पर धारण करने वाले आभूषण प्रक्षेप्य तथा शरीर पर चढ़ाए जाने वाले आभूषण को आरोप्य श्रेणी में आचार्य भरत द्वारा दर्शाया गया है।

वात्स्यायन रचित 'कामसूत्र' (पृ. 83-84) में श्रृंगार व आभूषण प्रसंग 64 कलाओं के आभ्यंतर ही निर्देश है। इसके अतिरिक्त वात्स्यायन ने 64 कलाओं के उल्लेख में नृत्य को स्वतंत्र कला माना है।

अमर सिंह कृत 'अमरकोश' संस्कृत का मानक शब्दकोश के द्वितीय कांड मनुष्य वर्ग में श्रृंगार व आभूषण अलंकरण संबंधित विभिन्न पक्षों को शब्दावली में वर्णित किया है। सोमेश्वर कृत 'मानसोल्लास' ग्रंथ (पृ. 240-241) में राजा के व्यक्तिगत दैनिक क्रियाओं में 20 प्रकार के उपभागों में श्रृंगार व आभूषण प्रकरण का उल्लेख मिलता है।

श्री नारायण स्वामी ने 'संस्कृत- सूक्तिसागरः' के द्वितीय खंड 'रससूक्तयः' के नायक-नायिका श्रृंगार का विस्तृत वर्णन के साथ-साथ नायिका के नख-शिख विधान को गहनता से प्रस्तुत करते हुए 64 कलाओं के अंतर्गत नारी-सौंदर्यता की कल्पना को इस प्रकार दर्शाया है-

"यश पदाङ्गुष्मुखौ मुखञ्च विभक्तितय...

* शोधार्थी, नृत्य संकाय, कथक नृत्य विभाग, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ (छ.ग.)

जब इस नवेली में एक तो उसके यश का चंद्रमा, पैर के अंगूठों के नखों के दो चंद्रमा और मुखरूपी एक चंद्रमा मिलकर चार - चार चंद्रमा हैं तब इस सुंदर भौंहों वाली नायिका में सोलह कला वाले चंद्रमा से चौगुनी अर्थात् चौसठ कलाएँ क्यों न निवास करें"

मांडवी सिंह की पुस्तक कथक परंपरा (पृष्ठ 222) के अनुसार संगीत दर्पण के नृत्य अध्याय में सोलह सिंगार तथा बारह आभूषणों का उल्लेख वर्णित है जो इस प्रकार है-

"1. केश धोना 2. तेल लगाना 3. बाल साफ करना 4. जूड़ा बांधना 5. नहाना 6. कपड़े पहनना 7. सिंदूर लगाना 8. चंदन लगाना 9. टिकली लगाना 10. फूल माला पहनना 11. दांत साफ करना 12. पान खाना 13. महावर लगाना 14. अंजन लगाना"²

संगीत दर्पण रचयिता ने सोलह श्रृंगार के नाम मात्र उल्लेख तो अवश्य किया है किंतु व्याख्या केवल चौदह श्रृंगार प्रकारों की ही किए हैं। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत चौदह श्रृंगार का अध्ययन करने से विदित होता है कि नायिका के व्यवहारिक क्रिया-कलाप आधार पर रचनाकार का यथाक्रम दोषयुक्त है।

मांडवी सिंह की पुस्तक कथक परंपरा (पृष्ठ 222) के अनुसार संगीत दर्पण में उल्लेखित बारह आभूषण इस प्रकार है-

"1. मस्तक में टीका लगाना 2. नाक में विसर 3. कानों में झुमके 4. गले में हार 5. भुजा में भुज बंद 6. हाथों में कंकण 7. अंगली में अंगूठी 8. पंजे की पीठ पर करांगुली धर 9. कमर में करधन 10. पैरों में किंकिणी या पायजेब 11. पैर की अंगुली में अंगूठी 12. पैर की पीठ पर पदांगुली धर"³

राजा चक्रधर सिंह द्वारा रचित नर्तन सर्वस्वम ग्रंथ में सोलह श्रृंगार तथा बारह आभूषण को सुव्यवस्थित यथा क्रम प्रदान कर कथक नृत्य के संबंध में प्रस्तुति योग्य दर्शाया है नर्तन सर्वस्वम ग्रंथ में वर्णित सोलह श्रृंगार संबंधित उल्लेख मांडवी सिंह कथक परंपरा (पृष्ठ 223) में इस प्रकार दिया है -1. स्नान 2. वस्त्र धारण 3. स्नेहानुलेपन 4. केश प्रसाधन 5. तिलक धारण 6. अंजन धारण 7. तिल निर्माण 8. अलक्तक धारण 9. अलंकार प्रसाधन 10. तांबूल चर्वण 11. सुगंधी लेपन 12. विलास गति 13. स्फीत दृष्टि 14. स्मित 15. प्रेम 16. शील"⁴

उपरोक्त वर्णित सोलह श्रृंगार विधान को राजा चक्रधर सिंह ने नायिका के बाह्य तथा आंतरिक सौंदर्य चेतना के प्रति गहन चिंतन प्रस्तुत किया है। जिसका प्रभाव वर्तमान नृत्यकला विशेषकर कथक नृत्य में नायिका प्रसंग के दृष्टिगत होता है समय परिवर्तन के कारणवश भले ही श्रृंगार सामग्री में नवीनता आई हो किंतु श्रृंगारिक धारण विधान क्रम आज भी राजा चक्रधर सिंह द्वारा निर्धारित क्रमानुसार ही प्रस्तुत योग्य व तर्कसंगत लगता है।

मांडवी सिंह की पुस्तक कथक परंपरा (पृष्ठ 223) में रायगढ़ नरेश राजा चक्रधर सिंह द्वारा 'नर्तन सर्वस्वम' ग्रंथ में वर्णित बारह आभूषण धारण सूची इस प्रकार है-

"1. झूमर 2. कर्णफूल 3. वेसर 4. गेवेयक 5. हार 6. चूड़ी 7. कंकण 8. बाजूबंद 9. अंगूठी 10. करधन 11. पायजेब 12. नूपुर"⁵

उपरोक्त राजा चक्रधर सिंह द्वारा वर्णित बारह आभूषण विधान अन्य शास्त्र कारों की तुलना में अधिक व्यवहारिक तथा पद्धति व दृष्टिगोचर लगते हैं। इसके अतिरिक्त राजा साहब द्वारा आभूषण क्रमावली श्रृंगारोपान्त अधिक अनुकूल व प्रासंगिक लगती है। राजा साहिब ने निश्चय ही श्रृंगार व आभूषण संबंधित भ्रांतियों का संशोधन तो किया ही साथ ही साथ उन्होंने कथक नृत्य के विविध पक्षों की भांति श्रृंगार एवं आभूषण का एक क्रम तथा परंपरा को स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई है। मध्य तथा

रीतिकाल के साहित्यकारों एवं कवियों आदि ने नारी सौंदर्य रूप के सोलह श्रृंगार संबंधित उल्लेख मिलता है जिसमें नायिका सोलह श्रृंगार प्रसंग की धारणा के परिपेक्ष्य में विद्वानों का अभिमत सामान्यतः एक समान सा ही दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणतः मलिक मोहम्मद जायसी की पद्मावत में सोलह श्रृंगार तथा आभूषण इस प्रकार हैं-

"प्रथमहि मंजन होइ सरीर। पुनि पहिरै तन चंदन चीर।
साजि माँग पुनि सेंदुर सारा। पुनि लिलाट रुचि तिलक सँवारा।
पुनि अंजन दुँहु नैन करेई। पुनि कानन्ह कुंडल पहिरेई।
पुनि नासिक भल फूल अमोला। पुनि राता मुख खाइ तँमोला।
गियँ अभरन पहिरै जहँ ताई। औ पहिरै कर कँगन कलाई।
कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। औ पायल पायन्ह भल चूरा।
बारह अभरन एइ बखाने। ते पहिरै बरहौ असथाने।
पुनि सोलह सिंगार जस चारिहुँ जोग कुलीन।
दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभर चहुँ खीन।।"⁶

शास्त्रीय नृत्य शैलियों में ग्रंथों का अनुकरण तथा अभिनय पक्ष में साहित्य की एक विशिष्ट परंपरा रही है। नृत्यकला में विशेषता कथक नृत्य के नायिका प्रसंग में श्रृंगार तथा आभूषण संबंधित नख - शिख सौंदर्यता की विशुद्धता दृष्टिगोचर होती है।

मध्य तथा रीतिकालीन कवियों के इतिहास में नख-शिख वर्णन का प्रभाव कथक नृत्य के साहित्यिक पक्ष में भी स्वतः ही चक्षुगोचर होता है। बिंदादीन महाराज और राजा चक्रधर सिंह के कथक नृत्य में साहित्य को उद्धृत करने में महत्वपूर्ण सहभागिता निभाई है।

बिंदादीन महाराज की रचनाओं में श्रृंगार व आभूषण संबंधित उल्लेख निम्नांकित हैं-

"सब बन ठन आई श्याम प्यारी रे।।
चंद्र बदनि मृग नैनी ओढ़े सारी।।
सब बन ठन-
मालती गुँथाए, केश प्यारी घुघवारे
माँग मोतिन सँवारे, चोटी पीठ पर कारी
सब बन ठन-
बेन्दी भाल श्रवण कुन्डल गरे माला
मुख दामिनी सी दमकत चाल मतवारी।
सब बन ठन -
देखत बिहारी पग परे गरे बाँह डारी
बिन्दा पर कृपा रहे तेरी बनवारी
सब बन ठन-"⁷

उपरोक्त रचना में बिंदादीन महाराज ने नायिका के विभिन्न आकर्षक अंग भंगिमा तथा श्रृंगार व आभूषण विधानों का साहित्यिक रूपरंग प्रस्तुत किया है। बिंदादीन महाराज की रचनाओं ने कथक नृत्य के अभिनय पक्ष को समृद्ध दिशा प्रदान की। इसी क्रम में पंडित लच्छू महाराज ने 'दक्ष यज्ञ' नामक काव्य रचना में नारी सौंदर्य ताकि सोलह श्रृंगार का वर्णन इस प्रकार से किया है-

"इतने में महारानी आई सोलह सिंगार सजाये
 बिंदी भाल नासिका बेसर मोतिन हार हिये लटकाये
 करण फूल कानन की शोभा मांग भरी सिंदूर सुहाय
 नैनन में काजल के डोरे देख आरसी आप लजाये
 शीश फूल शोभित अति सुंदर मोतिन केश कलाप सुहाये
 मेहंदी हाथ रचे कर चूड़ी और भुजा भुजबंद सुहाये
 कमर कौंधनी पग में तोड़े बिछुवों के वह सुंदर जोड़े
 आकर पास पति के ठाड़ी, नयी जरी की साड़ी ओढ़े"⁸

राजा चक्रधर सिंह की सांगीतिक रचनाओं में श्रृंगार व आभूषण संबंधित साहित्यिक चित्रण इस प्रकार है-

"बिंदी भाल नवेली रे हा चली सुघर सुनारिन

अन्तरा

मोती माँग झुमके आवे बिसरि गैत अकेली रे
 हीरहार लुहावत कर धन बिजय भुजा रंगरेली रे
 कंकन चूरी मुंदरी गई छवि हाव भाव अठखेली रे
 पग पैजनियां बिछिया सोहत चक्रपिया अलबेली रे"⁹

राजा साहब ने नायिका के नख-शिख श्रृंगारिक विधान आदि रचनाओं के साथ-साथ नायक- नायिका के विविध रूपों को सरल शब्दावली में रचा है। निसन्देह राजा चक्रधर सिंह तथा बिंदादीन महाराज की नृत्यमयी साहित्यिक रचनाओं ने कथक नृत्य के अभिनय पक्ष को विस्तृत व समृद्ध बना कर नये आयाम स्थापित किये।

उपयुक्त वर्णित शास्त्रीय ग्रंथों से यह प्रमाणित होता है कि श्रृंगार एवं आभूषण धारण के प्रमाण आदिकाल से मानव जीवन का अभिन्न अंग रहे हैं। जैसे - जैसे मानवीय सभ्यता विकसित हुई उसके श्रृंगार एवं आभूषण की सामग्री व बनावट आदि पर भी कालांतर का प्रभाव पड़ता रहा। सदियों से कला एवं संस्कृति में नारी सौंदर्यता की परंपरा स्वतः ही प्राचीन कृतियों में चक्षुगोचर होती है। इन्हीं श्रृंगारिक अलंकरणों का उल्लेख वेद, पुराण, ग्रंथ तथा साहित्य आदि में शास्त्रकारों व कवियों द्वारा नायिका के सोलह श्रृंगार और बारह आभूषण संबंधित विविध बिंदुओं को उजागर किया है।

कथक नृत्य में नायिका के श्रृंगार व आभूषण विधान का वृहद चित्रण मिलता है। यहाँ पर कथक नृत्य में मूलतः नायिका के सोलह श्रृंगार तथा बारह आभूषण संबंधित अंगरूपों की चेष्टाकृत संकेतिक रूपरेखा का उल्लेख किया गया है। कथक नृत्य में नायिका के श्रृंगार व आभूषण व्यवस्था में सामान्यतः प्रयुक्त हस्त भंगिमाओं का विवरण इस प्रकार है।

(अ) श्रृंगार विधान का अंग स्वरूप :-

1. केश प्रसाधन :-

केश प्रसाधन नायिका के श्रृंगारिक स्वरूप का प्रारंभिक एवं आवश्यक सौंदर्य विधान है। नायिका के व्यक्तित्व को रमणीय व आकर्षक अभिव्यक्ति को उद्भूत बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण अंश है। कथक नृत्य के भाव पक्ष में नायिका श्रृंगार अभिनय के अंतर्गत केश प्रसाधन नारी सौंदर्य स्वरूप की व्याख्या करता है। कथक नृत्य के श्रृंगारिक क्रिया प्रस्तुतिकरण में हस्त मुद्राओं के विषय में दोनों हाथों का प्रयोग होता है। जिसमें नायिका केशों को सुलझाने व संवारने हेतु हस्त मुद्रा में एक हाथ अर्धचंद्र मुद्रा बनाते हुए केशों को

व्यवस्थित करती है। जबकि दूसरे हाथ की मुद्रा से नायिका कंधी का भाव दर्शाने हेतु मुष्ठी मुद्रा का प्रयोग करती है। इसके अतिरिक्त इन हस्त मुद्राओं के बारंबार प्रयोग करने से हस्त संचालन द्वारा निरंतर क्रिया वृत्ताकार रूप का अवलोकन भी करवाती है।



(2) चोटी प्रसाधन:-

केश प्रसाधन के पश्चात नायिका कंकतिका (कंधी) केश-कलाप को वेणीबद्ध हेतु विविध आकार-प्रकार से चोटी प्रसाधन करती है। कथक नृत्य में भी नायिका श्रृंगार के प्रारंभिक चरण केश प्रसाधन के उपरान्त ही नायिका चोटी सृजना का विधान को प्रस्तुत किया जाता है। इस अभिनय प्रकरण में नायिका हस्त मुद्राओं के संबंध में दोनों हाथों से कर्त्तरीमुख मुद्रा से चोटी गूँथने तथा कपित्थ मुद्रा से चोटी बांधने की क्रिया को प्रदर्शित करती है। चोटी गूँथने तथा चोटी बांधने की क्रिया के दौरान विशेषकर चोटी गूँथने हस्त मुद्राओं की गतिमय क्रियाकलाप गुच्छनुमाकार वृत्तों के स्वरूप को भी दृष्टिगोचर कराती है।



(3) तिलक धारण :-

तिलक ललाट को शोभायमान बनाने वाला श्रृंगारिक विधान है। वर्तमान में नायिका द्वारा भाल पर धारण बिंदिया तिलक का ही पूर्व रूप है। नायिका श्रृंगारिक प्रकरण में तिलक धारण विधान के अंतर्गत नायिका माथे के मध्य भाग में तिलक लगाती है। कथक नृत्य के भाव प्रदर्शन में नायिका द्वारा तिलक धारण हेतु हस्त मुद्रा में एक हाथ से त्रि- पताका हस्त मुद्रा का प्रयोग करती है। वहीं नायिका दूसरे हाथ से पताका हस्त मुद्रा द्वारा आईने का भाव दर्शाती है। कथक नृत्य में कभी-कभी नायिका श्रृंगारदान में लगे आईने के कल्पना स्वरूप को अपने सम्मुख रखकर भी तिलक धारण विधान का भाव प्रदर्शित करती है।



(4) काजल धारण:-

काजल आँख के सौंदर्य एवं बनावट स्वरूप को आकर्षक एवं विस्तृत कर नायिका के मुखमंडल को अत्यधिक आभान्वित करता है। भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में नयन भाव - भंगिमा की क्रिया

का विशेष स्थान है। नायिका द्वारा काजल प्रकरण हेतु हस्त मुद्राओं में एक हाथ से अराल मुद्रा तथा दूसरे हाथ से आईने का प्रयोग पताका हस्त मुद्रा द्वारा प्रदर्शित करती है। आईने के भाव प्रदर्शन संदर्भ में नायिका कहीं-कहीं श्रृंगारदान को भी प्रयुक्त करती है।



(5) ओष्ठ रंजन:-

नायिका के रूप श्रृंगार के सौंदर्यमयी आकर्षक अंगों में ओष्ठ रंजन विशेष स्थान रखता है। जिसमें नायिका के होठों की लालिमा का लालित्य न केवल ओष्ठ बल्कि दाँतों की पंक्ति को भी चमकता एवं सुंदरता प्रदान करता है। कालांतर में ओष्ठ रंजन हेतु नायिका तांबूल चर्वण का प्रयोग करती थी। वर्तमान परिदृश्य में ओष्ठ रंगने के लिए विविध प्रकार की सामग्री का प्रयोग होता है। नायिका द्वारा ओष्ठ रंजन क्रिया प्रस्तुतिकरण में एक हाथ अराल मुद्रा में ओष्ठ रंगन की क्रिया को दर्शाता है जबकि दूसरा हाथ मुख दर्शन हेतु पताका मुद्रा में आईने के भाव को प्रस्तुत करता है। इस प्रकरण में नायिका ओष्ठ रंजन के क्रियात्मक परिदृश्य में हस्त क्रिया द्वारा अर्धवृत्ताकार में चेष्टा करती है।



(ब) आभूषण विधान का अंग स्वरूप:-

1. माँगटीक प्रकरण :-

केश प्रकरण उपरांत माँग को केश विन्यास की स्थितिनुसार शिर को शोभित कर माँग व माथे के ऊपरी मध्य भाग पर धारण किया जाता है। कथक नृत्य के नायिका भाव-भंगिमा प्रदर्शन में माँगटिक आभूषण विधान संबंधित नृत्य क्रिया के प्रस्तुतिकरण में विशेष स्थान रखती है। जिसमें नर्तकी माँगटिक आभूषण को भंगिमा द्वारा दर्शाते हुए विविध क्रियाएं करती है। माँगटिक आभूषण के हस्त मुद्रा प्रदर्शन हेतु एक हाथ कटकामुख मुद्रा में माथे के समकक्ष प्रस्तुत कर नृत्यमयी स्वरूप को प्रदर्शित करती है। जबकि दूसरा हाथ नायिका भाव व्यंजनानुसार या गत निकास अनुसार पताका मुद्रा में का प्रयोग करती है।



2. कुंडल धारण :-

नायिका के कानों को सुशोभित करने वाला कुंडल आभूषण आवेध्य अलंकार (ना. शा, श्लोक संख्या 22, पृ. 22) के अंतर्गत आता है। कथक नृत्य के नायिका श्रृंगारिक भाव विधान में प्रयुक्त हस्त मुद्राओं में दोनों हाथों से हसास्य मुद्रा का प्रयोग कर नायिका के कुंडल धारण आभूषण विधान को दर्शाया जाता है।



3. वेसर धारण :-

वेसर नायिका के नाक को शोभायमान बनाने वाला आभूषण है। कथक नृत्य में नायिका विसर आभूषण धारण एवं उसके आकार स्वरूप को नाक के समकक्ष अराल मुद्रा में एक हाथ से वेसर आभूषण का भाव छोटे वृत्त रूप में प्रदर्शित करती है। जबकि दूसरा हाथ नायिका अपनी सुविधानुसार स्थान एवं अवस्था के अनुरूप निश्चित कर पताका मुद्रा में दर्शाती है।



4. हार धारण :-

यह नायिका द्वारा गले में धारण किए जाने वाला अलंकरण है। जो कि नायिका के गले को आकर्षक एवं सौंदर्यपूर्ण बनाता है। कथक नृत्य के परिपेक्ष्य में नायिका श्रृंगार में प्रयुक्त हस्त मुद्रा धारण विधि प्रदर्शन में दोनों हाथ ग्रीवा के समकक्ष अर्धवृत्ताकार में हस्त संचालन कर हसास्य मुद्रा द्वारा हार धारण का सांकेतिक भाव रूप प्रदर्शित करती है।



5. कंकण धारण :-

यह आभूषण नायिका की कलाइयों को शोभित करता है। कथक नृत्य में नायिका कंकण धारण प्रकरण को हस्त मुद्रा द्वारा एक हाथ से पद्मकोश तथा दूसरे हाथ से अर्धचंद्र मुद्रा में अर्थात् कंकण के आकारनुसार हस्त क्रिया करते हुए कंकण धारण विधान को प्रदर्शित करती है।



उक्त वर्णित कथक नृत्य में नायिका का श्रृंगार व आभूषण प्रकरण को अंग- भंगिमाओं की सांकेतिक पृष्ठभूमि में उकेरा गया है। जिसमें नायिका द्वारा हस्त मुद्राओं के विनियोग व अन्य स्थानों से श्रृंगार तथा आभूषण प्रसंग का अभिनयात्मक अंगाकन किया गया है। कथक नृत्य के नृत्य पक्ष में जहाँ हस्त मुद्रा का सीमित प्रयोग होता है वहीं दूसरी ओर नृत्य शैली के भाव पक्ष में हस्त मुद्राओं की विशिष्ट परंपरा परिलक्षित होती रही है। कथक नृत्य में नायिका के परिपेक्ष्य में अभिनय की विस्तृत श्रृंखला रही है। जिसकी मूल परिपाटी आंगिक संप्रेषण तथा ठुमरी, गजल, भजन, गत तथा गत - भाव इत्यादि सामग्री अंग भाषा के रेखीय चित्रण का मूलभूत आधार रही है।

सन्दर्भ सूची

- शास्त्री बाबू लाल, नाट्यशास्त्र भाग - 3, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, संस्करण - पुनर्मुद्रण, वर्ष - 2005, श्लोक संख्या - 12, पृष्ठ - 118.
- सिंह मांडवी, कथक परंपरा, स्वामी पब्लिकेशंस दिल्ली, वर्ष - 2010, पृष्ठ - 222.
- सिंह मांडवी, कथक परंपरा, स्वामी पब्लिकेशंस दिल्ली, वर्ष - 2010, पृष्ठ - 222.
- सिंह मांडवी, कथक परंपरा, स्वामी पब्लिकेशंस दिल्ली, वर्ष - 2010, पृष्ठ - 222.
- सिंह मांडवी, कथक परंपरा, स्वामी पब्लिकेशंस दिल्ली, वर्ष - 2010, पृष्ठ - 223.
- गुप्त डॉक्टर माता प्रसाद (संपादक), पद्मावत, भारतीय भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, संस्करण - द्वितीय, वर्ष - नवंबर 1973, पृष्ठ 319 - 320.
- महाराज बिरजू, रस गुंजन, पापुलर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई संस्करण - प्रथम, वर्ष - 21 फरवरी 1994, पृष्ठ - 41.
- सिंह मांडवी, कथक नृत्य परंपरा में गुरु लच्छू महाराज, बी. आर. रिदम दिल्ली, संस्करण - प्रथम, वर्ष - 2006, पृष्ठ - 159.
- सिंह मांडवी, कथक नृत्य परंपरा में रायगढ़ दरबार, बी. आर. रिदम दिल्ली, संस्करण- प्रथम, वर्ष - 2013, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ से स्वीकृत शोध - प्रबंध, पृष्ठ - 131.

द. एशिया की भूराजनीतिक चुनौतियां : भारत-चीन सम्बन्ध के संदर्भ में

डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र*

सारांश

प्रस्तुत शोध शीर्षक द.एशिया की भूराजनीतिक चुनौतियां भारत-चीन सम्बन्ध के संदर्भ में जानने का देश एक समसामयिक प्रासंगिक विषय है। द. एशिया के देश अपनी भौगोलिक सामरिक आर्थिक हितों के लिए अपने नजदीकी पड़ोसी भारत के साथ मजबूती से जुड़ा रहा है। वर्तमान में चीन द्वारा BRI योजना के माध्यम से द. एशिया के देशों में आर्थिक सामरिक एवं राजनीतिक सहयोग में नीतिगत वृद्धि करने से भारत-चीन संबंध तनाव के रूप में परलक्षित हुआ है। वर्तमान वातावरण द. एशिया के देशों के समक्ष अनेक चुनौतियां लेकर आया है। यह शोध पत्र भारत-चीन संबंध तथा द. एशिया के भूराजनीतिक चुनौतियां पर केन्द्रित है। इसमें भारत-चीन सम्बन्ध की प्रकृति एवं द. एशिया के परिवर्तित भू-राजनीतिक चुनौतियों को समझने का प्रयास है। शोध परिकल्पना के रूप में शक्ति समीकरण को राष्ट्रीय हित का आधार मानकर विश्लेषित किया गया है, इसका शोध उद्देश्य भारत-चीन सम्बन्ध के वर्तमान स्वरूप में द. एशिया की चुनौतियों की जाँच करना है।

प्रमुख शब्द : भारत-चीन सम्बन्ध, भूराजनैतिक, आर्थिक सामरिक परिस्थितियां

प्रस्तावना – भारत-चीन दो एशियाई शक्तिशाली देश हैं, दोनों देशों के मध्य सांस्कृतिक, आर्थिक एवं वैचारिक संबंधों का इतिहास पुराना है। वर्तमान में दोनों देश विश्व की उभरती हुई शक्तियां हैं। विश्व 21वीं शताब्दी को एशियाई शताब्दी के रूप में देख रहा है, भारत-चीन का सम्बन्ध प्राचीन काल से आध्यात्मिक धार्मिक गतिविधियों के केंद्र के रूप में रहा है, बौद्ध काल में पारसांस्कृतिक आदान प्रदान द्वारा सम्बन्ध स्थापित थे। उस समय भूमि मार्ग से आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध के नेटवर्क स्थापित थे, जिसे सिल्क रोड के नाम से जाना जाता है,¹ 1206 ईस्वी में दिल्ली सल्तनत के शासन में अनेक लड़ाइयों के कारण भारत-तिब्बत व्यापार अवरुद्ध हो गया। 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोपीय सैन्य वाणिज्यिक जहाजों के आगमन से भारत-चीन सम्बन्ध परिवर्तित हो गये, भारत-चीन के मध्य सीमा का जुड़ाव तिब्बत के चीन में विलय हो जाने पर आया। आज भारत एवं चीन की सीमा अफगानिस्तान से वर्मा की पिपहू दर्रे तक है।² इसे तीन भागों में विभक्त किया गया है।

पश्चिमी भाग – लद्दाख सिकांग प्रान्त से तिब्बत तक

मध्य भाग – हिमालय प्रदेश उत्तराखंड से सिक्किम तक

पूर्वी भाग – सिक्किम असम अरुणाचल प्रदेश से तिब्बत तक

पूर्वी भाग पर आज भारत का नियंत्रण है चीन इसे स्वीकार नहीं करता। 1914 में ब्रिटिश शासन काल में सीमा का निर्धारण मैकमोहन रेखा द्वारा शिमला समझौते में किया गया है।

चीन इस समझौते पर आपत्ति दर्ज करते हुए शिमला समझौते पर हस्ताक्षर नहीं किया, चीन का तर्क है कि ब्रिटिश सरकार 35000 वर्ग मील का क्षेत्र अपने पास रख लिया है। भारत चीन के इस दावे को स्वीकार नहीं करता, भारत का कथन है कि मैकमोहन रेखा इस क्षेत्र की प्राकृतिक एवं प्रशासनिक रेखा है।

1947 से 1949 तक तिब्बत का मुद्दा भारत के लिए बड़ी चिंता का विषय रहा। 1954 में भारत-चीन के मध्य पंचशील समझौता हुआ। आज पंचशील समझौता भारतीय विदेशनीति की धुरी है, इसे गुटनिरपेक्ष आंदोलन के सिद्धांत की व्याख्या माना जाता है।³ भारत-चीन संबंध शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के इन्हीं पांच सिद्धांतों के द्वारा निर्धारित किया जाता है। अंततः सीमाओं पर विरोधाभास तिब्बत की स्थिति, राजनीतिक व्यवस्था में अंतर आदि से भारत-चीन संबंधों में कटुता आई। जिसे चीन ने 1962 में भारत पर आक्रमण कर युद्ध में बदल दिया।⁴ युद्ध के बाद भारत-चीन संबंध कटु हो गए। चीन की सर्वहारा क्रांति ने चीन को कमजोर कर दिया।⁵ इसके बाद 1978 में देंगजियाओपिंग सरकार की सत्ता चीन पर आधिपत्य हुई, जिन्होंने चीन में अनेक आर्थिक सुधार किया। उच्च स्तरीय यात्राएं, पारस्परिक सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्धता, पंचशील पर

* असि.प्रो. रक्षा अध्ययन, एम.डी.पी.जी. कॉलेज प्रतापगढ़

आधारित शांति समृद्ध नीति के अनुपालन आदि ने चीन को मजबूत किया। उपरोक्त सुधारों के बावजूद भूटान एवं सिक्किम की शक्ति राजनीति के कारण चीन को गंभीर चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा।⁶ आज चीन की वर्तमान स्थिति का श्रेय देंगजियाओपिंग के आर्थिक सुधारों का परिणाम है। आर्थिक उदारवाद से चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को राजनीतिक स्थिरता मिली। उसने आर्थिक नीतियों में जांच एवं संतुलन के बल पर चीन को महाशक्ति के रूप में विकसित किया।⁷ इन्हीं सुधारों का परिणाम रहा है कि चीन 21वीं शताब्दी का दूसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बन गई। इसी समय भारत भी तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था में आ गया।

भारत चीन संबंधों में वैमनस्ता वैश्विक वित्तीय संकट के बाद देखने को मिलती है। 2000 से 2010 तक भारत चीन के मध्य आर्थिक स्थिति में अंतर अचानक से बढ़ गई। चीन की GDP 1.2 ट्रिलियन से बढ़कर 07 ट्रिलियन हो गई। जबकि भारत की GDP आधे से बढ़कर 1.2 ट्रिलियन डॉलर तक ही पहुंची। आर्थिक अंतर ने सैन्य एवं राजनीतिक व्यवस्था में दुविधा को जन्म दिया। जो दोनों देशों के संबंधों में राजनीतिक गतिरोध का कारण बना। भारतीय निर्यात में 28% चीन का होना भारतीय अर्थव्यवस्था के हित के लिए शुभ संकेत नहीं था। यहीं से चीन स्वयं को अपने भू राजनीतिक शक्ति संबंधों के संदर्भ में प्रस्तुत करने लगा, यही प्रमुख कारण था कि चीन 2008 में भारत अमेरिका सैनिक परमाणु समझौता को बर्दाश्त नहीं कर सका। उसने दक्षिण चीन सागर में भारत के विरुद्ध आपत्ति दर्ज की। हिंद प्रशांत क्षेत्र में चीन का रवैया आज हिंद प्रशांत के पड़ोसी देशों के लिए असुरक्षा का कारण बना हुआ है। जो आज अमेरिका चीन संबंधों में समस्या का एक कारण है। चीन का यह परिवर्तित रूप सैन्य श्रेष्ठ की भावना का परिणाम है। चीन अपने महान राजनीतिक लक्ष्य के लिए रणनीतिक आयाम अपनाकर समझौते के खिलाफ जाने में संकोच नहीं करता। चीन द्वारा कानून का उल्लंघन कर अपने सैन्य खर्च में वृद्धि करना उसकी मानसिक प्रवृत्ति को प्रकट करती है। आज विश्व का सबसे बड़ा सैन्य खर्च चीन का है, 2019 में चीन का सैन्य बजट 175 बिलियन अमेरिकी डॉलर था।⁸ द. एशिया में भारत चीन प्रतिस्पर्धा से भारत चीन संबंधों में टकराव का कारण बना हुआ है।

चीन के लिए दक्षिण एशिया का महत्व –

चीन आज मलक्का डायलेमा की दुविधा से चिंतित है, उसे लगता है कि अमेरिका मलक्का स्ट्रेट में उसकी नौकाओं को रोककर चीनी अर्थव्यवस्था पर अंकुश लगा सकता है। चीन इसे काउंटर करने के लिए अपने BRI परियोजना का निर्माण किया। इस परियोजना का उद्देश्य अफ्रीका, यूरोप तथा एशिया के हवाई एवं समुद्री भू भागों से स्वयं को जोड़ना है। इसके लिए उसने पाकिस्तान से मिलकर सड़क, रेल बंदरगाह के निर्माण का नेटवर्क स्थापित किया है। वर्तमान में इस नेटवर्क का उद्देश्य चीन अपने शिनजियांग प्रांत को हिंद महासागर से जोड़ देना है। इसके साथ-साथ चीन स्वायत्त तिब्बत से नेपाल की राजधानी काठमांडू तक रेल का निर्माण कर रहा है, जो आज भारत चीन टकराव का कारण है। चीन BRI योजना के मध्य से भारत के आर्थिक प्रभाव को रोकने के लिए दक्षिण एशियाई देशों से मजबूती के साथ जुड़ रहा है। आज दक्षिण एशियाई देश भारत एवं चीन कि रस्साकसी से बचने के लिए दोनों देशों से संतुलन बनाए रखने की कोशिश कर रहे हैं।

भारत के आर्थिक विश्लेषण में यह कहा जाता है, कि आज चीनी निर्यात भारत में अधिक है, जब कि भारतीय निर्यात चीन में कम है। इसे संतुलित करने के प्रयास करने होंगे। यद्यपि भारत द्वारा 2020 से चीनी सामानों से निर्भरता को कम करने के प्रयास किये जा रहे हैं। इसके लिए टैक्स वसूली तथा व्यापार पर अंकुश लगाने की कोशिश की जा रही है। इसी परिपेक्ष में भारत राष्ट्रीय सुरक्षा का हवाला देकर टिकटाक जैसी 300 चीनी एप्स पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।⁹

भारत-चीन के बीच उत्पन्न प्रतिस्पर्धा विश्व देशों को भी प्रभावित कर रही है। क्योंकि वैश्विक अर्थव्यवस्था भविष्य के आयाम का महत्वपूर्ण कारक होती है। भारत-चीन संबंधों के अध्ययन से हम कह सकते हैं कि यह दोनों देशों में सहयोग एवं संघर्ष को दर्शाता है। आज दोनों देशों की बदलती हुई भूराजनीतिक परिस्थितियां एवं गतिशीलता ने अनेक समस्याओं का निर्माण किया है। भारत-चीन आज अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय व्यवस्था में अपने रणनीतिक वर्चस्व के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हुए सीमा विवाद में उलझे हुए हैं। इन विभिन्न मतभेदों के बावजूद अतीत में दोनों ने क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर एक दूसरे से सहयोग भी स्थापित किया है। जैसे 2014 में अहमदाबाद, 2018 में बुहान, 2019 में मामल्ला पुरम में मोदी और जिनपिंग की मुलाकात से दोनों देशों के समबन्धों में सौहार्दपूर्ण वातावरण भी बना है। BRI परियोजना वैमनस्ता का कारण अवश्य था, फिर भी दोनों देशों ने द्विपक्षीय संबंधों को महत्व दिया, आज

गलवान घाटी की घटना से दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये हैं।¹⁰ डोकलाम प्रतिरोध 2017 से दोनों देशों के समन्ध गम्भीर दुश्मनी में परिणित हो गये हैं।

इस प्रकार चीन की BRI योजना से दक्षिण एशिया में चीन के बढ़ते प्रभाव से प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है। CPEC चीन पाकिस्तान आर्थिक गलियारा व बांग्लादेश चीन भारत म्यांमार BCM आर्थिक गलियारा हिमालयी बहु आयामी संपर्क आदि से दक्षिण एशिया के देश संकट में हैं।¹¹ अतः वह पड़ोसी होने का लाभ तो लेना चाहते हैं किंतु भविष्य के लिए चिंतित हैं। इधर भारत भी चतुर्भुज सुरक्षा के माध्यम से दक्षिण एशिया के देशों से सहयोग बढ़ाने में लगा है। दक्षिण एशिया पर दोनों देशों की नीति का व्यापक प्रभाव है। अमेरिका नेतृत्व की समझदारी एवं भागीदारी ने भारतीय व्यापार मार्ग को पुनर्जीवित करने के लिए प्रोजेक्ट मौसम लॉन्च किया है।¹² भारत सरकार दक्षिण एशिया के लिए सुरक्षा एवं विकास सागर की अवधारणा पर कार्य कर रही है। भारत क्वाड के माध्यम से चीन के प्रभुत्व को रोकने के लिए सैन्य आधुनिकीकरण पर विशेष बल दे रहा है। आज प्रशांत क्षेत्र भू राजनीतिक उथल-पुथल का केंद्र है। यहीं से दक्षिण एशियाई देशों की चुनौती भू राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर ली है। भू राजनीतिक के अंतर्गत भौगोलिक, आर्थिक, सामरिक चुनौतियां दिखाई देने लगी हैं। आज दक्षिण एशिया और हिंद महासागर भारत की पहली सुरक्षा पंक्ति है। भारत चीन के राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभाव का मुकाबला विभिन्न कनेक्टिविटी एवं निवेश के माध्यम से कर रहा है। भारत स्वयं को बनाए रखने के लिए विभिन्न मोर्चों पर पारस्परिक निर्भरता का वातावरण बना रहा है। दक्षिण एशिया में अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिए सैन्य, राजनीतिक, आर्थिक सांस्कृतिक साधनों का उपयोग कर रहा है। भारत का अपना लक्ष्य स्वयं को एशियाई ताकत के रूप में स्थापित करना है, इसके लिए भारत हिंद महासागर के विशाल संसाधनों तक अपनी पहुंच बना रहा है।

चीन भी स्ट्रिंग आफ प्लस पॉलिसी के द्वारा भारत को चारों तरफ से घेर रहा है। इसके लिए वह संचार की महत्वपूर्ण समुद्री लाइनों को सुरक्षित करने में लगा है। वह तिब्बत जैसे अपने अस्थिर क्षेत्र का आर्थिक विकास करने में लगा है। भारत चीन सीमा विवाद, भारत द्वारा चीनी वस्तुओं का बहिष्कार आदि विभिन्न भूराजनीतिक खतरों के अनुभव को आत्मसात करते हुए भी दोनों देशों ने व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि की है। 1991 से 2021 के मध्य भारत चीन व्यापार औसतन 141.90 इनर बिलियन डॉलर था, जो जुलाई 2021 में अपने उच्चतम रिकॉर्ड 192 इनर बिलियन डॉलर तक पर पहुंच गया।¹³ इस अप्रत्याशित वृद्धि से दक्षिण एशिया के देशों को अपनी रणनीतियां निर्धारित करने में चुनौतियां बढ़ रही हैं। 2014 से 2019 तक भारत में चीनी निवेश FDI 12 गुना बढ़ी है।¹⁴ आर्थिक निवेश एवं सहयोग के बीच संघर्ष का भी बढ़ना सोचनीय अवश्य है।

दक्षिण एशिया में चीन का प्रभाव एवं राजनीतिक चुनौतियां:-

शीत युद्ध के बाद भारत पाक संघर्ष, पाकिस्तान द्वारा परमाणु हथियारों का विकास तथा इस क्षेत्र की आतंकवादी गतिविधियों ने विश्व को आकर्षित किया। दक्षिण एशिया में चीन की कूटनीति और पड़ोसी की रणनीति ने नेपाल, श्रीलंका, बांग्लादेश, मालदीव, भूटान आदि देशों को प्रभावित किया। चीन की दक्षिण एशिया नीति तिब्बत और झीजियांग प्रांत की सुरक्षा और आर्थिक विकास बढ़ाने के लिए अपने राजनीतिक एवं रणनीतिक हितों को सांधना है। यहां की अस्थिरता एवं जिहादी खतरों को कम करना है। इसके लिए भारत और अमेरिका का विरोध करना भी उसके एजेन्डे में शामिल है। इसके लिए चीन अपने व्यापार एवं परिवहन संपर्क में वृद्धि को बढ़ा रहा है।

चीन नेपाल के सहयोग से भौगोलिक बाधा को दूर करने के लिए ट्रांस हिमालयी संपर्क मार्ग द्वारा जल विद्युत सड़कों पर निवेश कर रहा है।¹⁵ वह नेपाल से भारत की निर्भरता को कम करने के लिए अपने चार प्रमुख बंदरगाहों पर नेपाल को उपयोग करने के लिए छूट दे रखी है। बांग्लादेश, श्रीलंका, मालदीव में भी अपनी नाकेबंदी कर रहा है। वह पाकिस्तान से समझौता कर ग्वादरबंदरगाह का अधिग्रहण कर लिया है। श्रीलंका के रम्वनटन बंदरगाह को 99 वर्ष की लीज पर ले रखा है। वह मालदीव के उत्तर पश्चिम में अटालमाकुनुधू में ज्वाइंट ऑब्जरवेटरी केंद्र का निर्माण कर रहा है। जो भारत के अति निकट होने से भारतीय सुरक्षा को खतरा है। वर्तमान में मालदीव में भारत विरोधी सत्ता का आसीन होना भारत के लिए गंभीर चुनौती है। मालदीव में चीन का कैक्टस जैसा ऑपरेशन भारत के लिए खतरा है। जिहादी यहां से भारत में आतंकवाद को बढ़ावा दे सकते हैं। भारत मालदीव से अपनी प्रगाढ़ता को बनाए रखना चाहता है। मालदीव के राष्ट्रपति का भारत आगमन संबंध सुधार का प्रयास है। बांग्लादेश म्यांमार में भी चीनी हस्तक्षेप बढ़ रहा है। वर्तमान में बांग्लादेश में तख्तापलट से जिस हालात में बांग्लादेश जा रहा है। उससे द. एशिया का परिदृश्य खराब हो रहा है। यह भारत के लिए चिन्ता का विषय है। यहां पूर्व सरकार विरोधी आन्दोलन में जमात

इस्लामी, हिजबुल तहरीर, नेशनलिस्ट पार्टी के साथ-साथ अनेक इस्लामिक संगठन कार्य कर रहे हैं। इसमें अमेरिका का भी चोरी छिपे समर्थन है। भारत द्वारा वार्ता के बावजूद कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दे रहा है। आज हमें बांग्लादेश में भारत की चिंता के 3 पहलू दिखाई दे रहे हैं।

बांग्लादेश में कट्टरपंथियों का वर्चस्व।

बांग्लादेश का झुकाव पाकिस्तान की ओर।

चीन की BRI योजना को गति मिलना।

इन घटनाओं से भारत के समक्ष 4 आशंकाएँ उभर रही हैं।¹⁶

बांग्लादेश में अफगानिस्तान की तरह तालिवानी शासन न स्थापित हो जाये।

बांग्लादेश पूर्वोत्तर के आतंकवादियों का शरण स्थली न बन जाय।

बांग्लादेश में अल्पसंख्यकों भी की सुरक्षा खतरे में न आ जाये।

बांग्लादेश विश्व शक्तियों का केंद्र न बन जाये।

आज यह सभी भारत के लिए चिंता का सबक है। भारत भी प्रति उत्तर हेतु उत्तर में ईरान के सिस्तान प्रदेश में चावहार बंदरगाह का निर्माण कर, इसे अफगानिस्तान से जोड़ दिया है। इससे पाकिस्तान द्वारा कभी मार्ग अवरुद्ध करने पर भारत को पाकिस्तान के रास्ते से जाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आज दक्षिण एशिया में चीन की बढ़ती उपस्थिति, अफगान संकट में चीन की प्रत्यक्ष भागीदारी जिहादियों को संसाधन संचालित दृष्टिकोण में बदल दिया है। इसका प्रभाव दक्षिण एशिया पर भविष्य में अवश्य पड़ेगा। चीन की कथनी एवं करनी में अंतर है। जो वह कहता है करता नहीं जो करता है, उसे कहता नहीं। यह अपने हर कार्य को अपने हित लाभ के दृष्टिकोण से देखता है, दक्षिण एशिया और मध्य एशिया में उसका यही दृष्टिकोण भारत चीन संबंधों में तनाव का कारण है। चीन अपनी विस्तारवादी नीति के कारण सीमा विवाद को अपने हितों के अनुरूप मानता है। वह सीमा विवाद पैदा कर समस्या को दीर्घकालिक बनाए रखना चाहता है। यही कारण है कि चीन का उसके पड़ोसी देशों से सीमा विवाद बना हुआ है। चीन ताइवान पर आधिपत्य चाहता है। वह ताइवान पर अमेरिकी रुख को अपने शक्ति समीकरण के रूप में देखता है। वह अमेरिकी वर्चस्व को चुनौती देने के लिए रूस से संबंधों को मजबूत बना रहा है। वह भारत अमेरिकी निकटता को अपनी शत्रुता का कारण मान लिया है। वह नहीं चाहता कि भारत का झुकाव अमेरिका की तरफ हो। उसके इस भावनाओं पर मेरा व्यक्तिगत मत है, कि यदि चीन की नाराजगी से भारत के संबंध अमेरिका एवं चीन विरोधी अन्य देशों से मजबूत बनते हैं तो वह भारत के लिए हितकर होगा। चीन की भूटान के साथ सीमा समझौता एक नीति के तहत की गई कूटनीतिक विजय है, जो भविष्य में दक्षिण एशिया को अवश्य प्रभावित करेगी। दक्षिण एशिया में चीन की रुचि से भारतीय आकांक्षाओं को आघात अवश्य लगेगा। जिसे चीन अपने एक अवसर के रूप में देख रहा है। चीन को मालूम है कि भारत चीन संघर्ष युद्ध में भी बदलता है तो भी भारत उसे ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचा सकता। भारत सदैव चीन से संबंधों को शांतिपूर्ण ढंग से हल करने में विश्वास करता है, यही कारण है कि भारत द्वारा शांतिपूर्ण समझौते के प्रयास किये जा रहे हैं। उपरोक्त तथ्यों के आलोक नार्थ हम कर सकते हैं कि महाद्वीपीय, समुद्रीमदक्षिण एशिया में भारत चीन के प्रतिद्वंद्विता से भूराजनीतिक, भूआर्थिक एवं सामरिक आयाम में एक नया परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। जिसमें दक्षिण एशिया की चुनौतियां प्रासंगिक हैं जो निम्नवत हैं।

1. उपयुक्त विदेश नीति की चुनौती—

दक्षिण एशिया के प्रमुख देश नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, मालदीव वर्तमान वातावरण में भूराजनीतिक पहली के केंद्र बन गए हैं, यह देश अपनी विदेशनीति का निर्धारण करने में दुबिधा का अनुभव कर रहे हैं। उपयुक्त विदेशनीति चुनना इन देशों के लिए महत्वपूर्ण है।

2. रणनीति एवं कूटनीति की चुनौती—

दक्षिण एशिया के राष्ट्र छोटे-छोटे होने के कारण रणनीतिक एवं राजनीतिक पहली की समझ नहीं रख पाते। वे क्षेत्रीय एवं वैश्विक राजनीति में उलझ जाते हैं, जिससे सही रणनीति नहीं अपना पाते।

3. संप्रभुता एवं क्षेत्रीय अखंडता की चुनौती—

भूराजनीतिक चुनौतियां सदैव सुरक्षा चुनौतियों को आमंत्रित करती हैं, दक्षिण एशिया की सुरक्षा के लिए अपनी संप्रभुता एवं क्षेत्रीय अखंडता बनाए रखना प्रमुख चुनौती है।

4. शक्ति संतुलन की चुनौती—

दक्षिण एशिया के देश भारत चीन दोनों से शक्ति संतुलन बनाए रखना चाहते हैं, किंतु दबाव की राजनीति एवं कर्ज के कारण शक्ति संतुलन बनाने में दिक्कत का अनुभव कर रहे हैं।

5. व्यापारिक चुनौती—

दक्षिण एशिया में चीन के बढ़ते व्यापार से भू आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन आ गया है, जिससे इन देशों में नीति संबंधी चुनौतियां आ गई हैं। अभी तक भारत इस क्षेत्र का एक बड़ा व्यापारिक साझेदार निवेशक था, किंतु आज चीन भारत की तुलना में एक बड़ा निवेशक एवं व्यापारिक साझेदार बन गया है।

6. सामुद्रिक हित से अवसर की चुनौती—

समुद्री व्यापार मार्ग में अपारम्परिक सुरक्षा हेतु भारत चीन के साझा हित निहित थे। आज दोनों देशों के टकराव से दक्षिण एशिया के लिए अवसर का मार्ग खुल रहा है।

7. सह अस्तित्व की चुनौती—

दक्षिण एशिया के देशों के लिए भारत एवं चीन से शक्ति संतुलन बनाना आसान नहीं है ऐसी स्थिति में सह अस्तित्व का संकट विद्यमान है। इस प्रकार दक्षिण एशिया में भूराजनीतिक चुनौतियों से भू-आर्थिक एवं सामरिक समस्याओं को प्रभावित करने का अवसर चीन को प्राप्त हुआ है, जिसके निहितार्थ चीन भारत सीमा विवाद की आड़ में भारत को तंग करने की सोच पाल रखा है। ऐसे में भारत को अपनी सीमाओं की रक्षा में सदैव सतर्क रहने तथा चीन से अपनी आर्थिक निर्भरता को कम करने के प्रयास जारी रखने होंगे।

निष्कर्ष एवं सुझाव—

भारत चीन का ऐतिहासिक सांस्कृतिक संबंध बहुत पुराना है। चीन ने शक्ति राजनीति एवं वर्चस्व के लिए सीमा विवाद को हथियार के रूप में प्रयोग किया, जिससे दोनों देशों में तनाव बढ़ा है, चीन की BRI योजना भारत के लिए चिंता का सबक है। भारत इसे एक चुनौती के रूप में देखता है। आज हिंद महासागर एवं दक्षिण एशिया में चीन का बढ़ता प्रभाव भारतीय सुरक्षा एवं अर्थव्यवस्था के लिए संकट है। भारत की हिंद महासागर और दक्षिण एशियाई सुरक्षा नीति से चीन की चिंता बढ़ी है। चीन भारत अमेरिका सामाजिक संबंधों से भी भयभीत है। क्वाड संगठन में एक सदस्य के रूप में भारत हिंद प्रशांत क्षेत्र का प्रमुख महत्वपूर्ण सदस्य है। क्वाड चीन पर अंकुश लगाने का महत्वपूर्ण हथियार है। भारत में चीन के CPEC को काउंटर करने के लिए जम्मू कश्मीर राज्य को विभक्त कर लद्दाख को केंद्र शासित प्रदेश बना दिया है। भारत अपनी सीमाओं की सुरक्षा हेतु सैन्य आधुनिकीकरण पर बल दे रहा है, भारत अपने मुखर विदेशनीति के द्वारा चीन को कड़ा संदेश देने में सफल रहा है। उपरोक्त परिस्थितियों से चीन की समस्या बढ़ी है। जो दोनों देशों के संबंधों में विष्वेक के रूप में दिखाई दे रही है।

वर्तमान में वैश्विक व्यवस्था में रूस-यूक्रेन युद्ध से चीन का झुकाव रूस की तरफ बढ़ा है। 16वां ब्रिक्स सम्मेलन जो 20 अक्टूबर से 24 अक्टूबर 2024 को रूस के कज़ान में हुआ। इसमें रूस के सहयोग से भारत चीन डोकलाम विवाद को हल करने के लिए आम सहमत बनी। 5 वर्षों के अंतराल पर द्विपक्षी संबंधों में नरमी का संकेत मिलते ही वार्ता की पहल हुई। इसके बाद चीन ने विवादित क्षेत्र से अपनी सेना हटाने का आश्वासन दिया है। इस समझौते में दोनों पक्ष एक दूसरे के मूल हितों और प्रमुख सरोकारों को समझते हुए ईमानदारी एवं सदभावना के साथ मतभेदों को सुलझाने के लिए तैयार हैं। प्रश्न उठता है कि क्या चीन का हृदय परिवर्तन हुआ है। यदि हां तो कारण क्या है, इस पर चीन की मंशा को देखते हैं तो असंभव प्रतीत होता है। क्या उसने एशिया एवं विश्व में अपने वर्चस्व एवं विस्तार को त्याग दिया है। जैसा कि चीन की अवधारणा के उल्लेख से यह ज्ञात होता है, कि चीन अपने वैध अधिकारों एवं हितों को कभी नहीं छोड़ता, वह अपनी शक्ति एवं श्रेष्ठता के आधार पर हावी रहता है।¹⁷ चीन सदैव अपने पड़ोसियों को धौंस देकर ग्रे जोन और सलामी स्लाईसिंग रणनीति का प्रयोग कर, आर्थिक एवं सैनिक दबाव बनाता है। इसी रणनीति के तहत वह स्वयं को महाशक्ति के रूप में स्थापित करना चाहता है। वह अमेरिका को पछाड़कर चीनी मूल्यों पर आधारित नई विश्व व्यवस्था बनाने की रह पर अग्रसर है। चीन ने अभी तक जो सीमा समझौते किये हैं। उन राष्ट्रों का संबंध अमेरिका से प्रगाढ़ था। उसने अमरीकी प्रभाव को रोकने के लिए ऐसे समझौते किये, जिससे कि वे राष्ट्र हिंद प्रशांत क्षेत्र में उसके लिए चुनौती न बन सकें। वे चीनी व्यवस्था को आसानी से स्वीकार कर ले। चीन के इसी रुख को देखते हुए भारतीय राजनीतिकारों एवं वार्ता कारों का मानना है कि चीन विवादों को हमेशा के लिए हल करने का इच्छुक नहीं दिखता।

वर्तमान में चीन की आर्थिक गतिमंद पड़ना भी भारत के प्रति नरम रूख का एक कारण है। चीन तभी आश्वस्त होगा, जब भारत अमेरिका के साथ मिलकर उसकी घेराबंदी न करें। अमेरिका की मित्रता भारत के उत्थान के लिए अनिवार्य है। चीन के साथ भारत की प्रतिस्पर्धा में कमी आना वास्तविक है। भू राजनीतिक स्तर पर भारत चीन संबंध दूर की कौड़ी है। भारत को अपनी सैन्य तैयारियों एवं क्षमताओं को उन्नत करते हुए सतर्क रहने की नीति पर चलना होगा। भारत चीन अप्रत्यक्षित संबंधों से दक्षिण एशिया की भू राजनीतिक चुनौतियां बढ़ती जा रही है। दक्षिण एशिया रण का मैदान बनता जा रहा है। चीन दक्षिण एशिया क्षेत्र में अपने निवेश बढ़ाकर प्रतिद्वंद्विता को बढ़ा दिया है। दक्षिण एशिया क्षेत्र में बाह्य अभिनेताओं का प्रवेश शक्ति संतुलन को कठिन कर दिया है। भारत चीन प्रतिस्पर्धा ने दक्षिण एशिया के लिए अवसर ही नहीं पैदा किया, अपितु चिंताओं को बढ़ा दिया है। दक्षिण एशियाई देश भारत से अपनी निर्भरता कम करने के लिए ऋण जाल को एक साधन के रूप में देखने लगे हैं। ऐसी स्थिति में आने वाले समय में भू राजनीतिक कमजोरी बढ़ेगी। जो दक्षिण एशिया को अवश्य प्रभावित करेगा। उपरोक्त परिणामों के फलस्वरूप दोनों देशों के संबंध संघर्ष एवं सहयोग पर आधारित हैं। दोनों देश जानते हैं कि युद्ध किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। शांति वार्ता ही अंतिम समाधान है। यही कारण है की वार्ता अवरुद्ध नहीं है। भारत को चीन द्वारा यथास्थिति को बदलने के कारणों की तलाश करनी होगी। भारत की रणनीतिक, उद्योग चीनी आयात पर अधिक निर्भर है, इसके लिए भारत को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास करने होंगे। इंडोपैसिफिक क्षेत्र में संतुलन बनाए रखने के प्रयास करने होंगे। दीर्घकालिक प्रतिस्पर्धा के लिए भारत को जनमत तैयार करना होगा।

संबंध सुधार के आयाम :-

दोनों देशों को संबंध सुधार हेतु निम्न कदम उठाने चाहिए, भरोसे की कमी को दूर करना होगा। एक दूसरे पर विश्वास कायम करना होगा। दोनों देशों को अपने-अपने प्रेस पर नियंत्रण रखना होगा। तर्कसंगत आवाज को कायम रखना होगा। सांस्कृतिक उद्योगों को लक्षित करना होगा। इस प्रकार दक्षिण एशिया की भूराजनीतिक चुनौतियों का अवलोकन भारत चीन प्रतिद्वंद्विता को सिद्ध करती है, जिसमें भूराजनीतिक चुनौतियां ने आर्थिक एवं सामरिक स्थिति ग्रहण कर शक्ति राजनीति को प्रमाणित किया है।

सन्दर्भ सूची :-

- योजना विकास विशेष पहल मंत्रालय सीपीसी प्राधिकरण 2 दिसंबर 2021
- सिंह टंडन अग्रवाल स्वतन्त्र भारत की युद्ध कला भारत-चीन सीमा पृ० 37
- जॉ पुष्पेन्द्र एवं श्रीपाल जैन अंतरराष्ट्रीय सम्बन्ध पृ. 120
- शर्मा 1962 के भारत चीन युद्ध का पुरावलोकन
- गुओ चीनी अर्थव्यवस्था को समझना
- गुओ चीनी अर्थव्यवस्था का पृष्ठ 145
- तियां और सू के सैन्य व्यय का अनुमान
- लिटनर चीन-भारत युद्ध पृष्ठ 5
- विजय गोखले गलवान से रास्ता भारत चीन सम्बन्ध कार्नेगी एडानेंट फॉर इंटरनेशनल पीस मार्च 2021
- योजना विकास 2 दिसंबर 2021
- मोहम्मद अमीबुल बांग्लादेश चीन भारत म्यांमार आर्थिक गलियारा चुनौतियां एवं संभावनाएं जनरल ऑफ डिफेंस एनालिसिस एवं संभावनाएं जनरल ऑफ डिफेंस एनालिसिस 30 नवम्बर 2018 पृष्ठ 283 से 302
- भारत चीन से आयात करता है ट्रेडिंग इकोनोमिक्स सितम्बर 2021
- रोशन शाहाप्रत्यक्ष विदेशी निवेश 8 सितम्बर 2021
- ए एम दीक्षित चीन का बेल्ट एवं रोड डिपार्टमेंट 21 जुलाई 2017
- ए एम दीक्षित वेल्ड एवं रोड डिपार्टमेंट 21 जुलाई 2017
- दैनिक जागरण 26 दिसम्बर 2024 भारत के लिए चुनौती बनता बांग्लादेश प्रकाश सिंह पृष्ठ-6 सम्पादकीय
- दैनिक जागरण 19 दिसम्बर 2024 चीन पर भरोसा न करे भारत: श्रीराम चैलियाँ पृष्ठ 6 सम्पादकीय ।

आचार्य क्षेमेन्द्र कृत कविकण्ठाभरण : एक विमर्श

डॉ. सत्येन्द्र कुमार सिंह*

आचार्य क्षेमेन्द्र काव्यशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान हैं। इन्होंने अपनी मेधा एवं कवित्व के बल पर संस्कृत जगत को अनेक ग्रन्थों से विभूषित किया है। आचार्य क्षेमेन्द्र का साहित्यिक कर्तृत्व अत्यन्त विनाल एवं विविधता से परिपूर्ण है। इनके ग्रन्थ वृहत्तकथामंजरी से ज्ञात होता है कि इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी था—“श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्या साहित्य बोधवारिधे। आचार्य शेखरमणोविद्याविवृन्ति कारिणः।”⁽¹⁾ आचार्य क्षेमेन्द्र संस्कृत एवं साहित्यशास्त्र की शिक्षा प्रछन्न मेधा सम्पन्न विद्वान अभिनवगुप्त से प्राप्त की थी तथा ये कमीर के रहने वाले थे। आचार्य क्षेमेन्द्र ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया जिसमें प्रमुख हैं— औचित्यविचारचर्चा, भारतमंजरी, वृहत्तकथामंजरी, कविकण्ठाभरण, सुवृत्ततिलक, समयमातृका आदि जिसमें से औचित्यविचारचर्चा एवं कविकण्ठाभरण काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। औचित्यविचार चर्चा में जहाँ इन्होंने काव्य शास्त्र में ‘उचितस्य भावः इति औचित्यः’ का सम्पादन करते हुए इसे काव्यात्म के पद पर प्रतिष्ठित किया तो वही कविकण्ठाभरण में कवि शिक्षा का निरूपण करते हुए चमत्कार को काव्यानन्द के रूप से निरूपित किया है।

कविकण्ठाभरण को आचार्य क्षेमेन्द्र ने स्वमतानुसार ‘सन्धि’ नाम से पाँच अध्यायों में विभक्त किया है जिनके नाम कम”ः कवित्वप्राप्ति, शिक्षाकथन, चमत्कारकथन, गुणदोष विभाग एवं परिचय प्राप्त है। कविकण्ठाभरण के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि इस ग्रन्थ में चमत्कार को काव्यानन्द का पर्याय मानते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस तत्त्व को काव्यात्म तत्त्व माना है फिर भी इस ग्रन्थ की प्रतिष्ठा शिक्षा ग्रन्थ के रूप में ही हुई है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवित्वप्राप्ति नामक प्रथम सन्धि में कवित्व शक्ति प्राप्त करने के उपायों का निदर्शन करते हैं। इन्होंने कवित्व शक्ति प्राप्त करने हेतु दिव्य एवं पौरुष उपाय सुझाए हैं। ‘अथेदानीमकवेः कवित्वशक्तिरूपदि’यते। प्रथमम् तावद् दिव्यः प्रयत्नः ततः पौरुषः।⁽²⁾ परवर्ती आचार्य यथा मम्मट, विवनाथ, जगन्नाथ, हरिप्रसाद प्रभृत आचार्यों की भी यही मान्यता दृष्टिगत होती है। जैसे आचार्य मम्मट काव्यप्रकाश में कहते हैं।

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।

काव्यज्ञाशिक्षाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।।⁽⁴⁾

आचार्य मम्मट शक्ति, लोकव्यवहार एवं शास्त्र ज्ञान तथा अभ्यास को कव्यनिर्माण कारण माना है। इसी प्रकार से आचार्य जगन्नाथ तथा अन्य आचार्य प्रतिभा को काव्य कारण माना है जिसका प्राणीमात्र में संचार दैव प्रसाद अथवा अभ्यास से होता है। अतः स्पष्ट है कि आचार्य क्षेमेन्द्र की इस मान्यता से उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती आचार्य सहमत हैं आचार्य क्षेमेन्द्र दिव्य प्रयत्न के सन्दर्भ में कहते हैं कि इस प्रकार की प्रतिभा वाग्देवी सरस्वती के प्रसाद स्वरूप प्राप्त होती है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति विनाश को काव्य सृजन में प्रवीणता हासिल हो जाती है।

निर्विकारां निराकारां शक्तिं ध्यायेत् परात्पराम्।

एषा बीजत्रयीवाच्यां त्रयी वाक्काममुक्तिम्।।⁽⁵⁾

आचार्य क्षेमेन्द्र ने पौरुष को कवित्व शक्ति प्राप्त करने का द्वितीय मार्ग बताते हैं जो पुरुषाधिन होती है, इसके अन्तर्गत आचार्य मम्मट द्वारा निर्दिष्ट लोकव्यवहार का ज्ञान एवं अभ्यास का समाहार दृष्टव्य होता है। अभ्यास करने से कठिन से कठिन कार्य अत्यन्त सहजता से हो जाता है अर्थात् लक्ष्य प्राप्ति के लिए अभ्यास नितान्त आवश्यक है—

करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान।

रसरि आवत जात ते सिल पर परत निगान।⁽⁶⁾

आचार्य क्षेमेन्द्र पौरुष का निरूपण करते समय सर्वप्रथम तीन प्रकार के शिक्षाओं का उल्लेख करते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार से है— (1) अल्प प्रयत्न से काव्यक्रिया में सिद्धि पाने वाले (2) बहुत प्रयत्नों के पश्चात् काव्य क्रिया में सिद्धि पाने वाले (3) बिल्कुल सिद्धि न पाने वाले। तृतीय श्रेणी शिक्षा को कवित्व न प्राप्त करने के कारणों का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

यस्तु प्रकृत्या सममान एवं कण्ठेन का व्याकरणेन नष्टः।

तर्केण दग्धोऽनल धूमिना वाऽव्यविद्धकर्णः सुकविप्रबन्धैः।।

* असि0प्रो0, संस्कृत, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत

न तस्य वक्तृत्वसमुद्भवः स्याच्च शिक्षावि^१षैरपि सुप्रयुक्तैः।

न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि संदर्भितं प^२यति नार्कमन्धः॥^(६)

आचार्य क्षेमेन्द्र के कहने का तात्पर्य यह है कि अभ्यास ऐसी औषधि है जिसके द्वारा प्रत्येक लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है परन्तु शर्त यह है कि अभ्यास नियमानुसार एवं विषयानुसार किया जाय। इनका स्पष्ट मानना था कि सीमा से अधिक व्याकरण का अध्ययन, तर्क^३ील होना तथा अन्य शास्त्रों के अध्ययन में अरुचि होना ही ऐसे छिद्रान्वेषी वि^४ष्यों के कवित्व शक्ति प्राप्ति के मार्ग में बाधा डाल देते हैं। इसी तथ्य को दृष्टि में रखते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं कि कवित्व प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले मर्मज्ञ को कभी भी किसी वैयाकरण या तर्क^५ील व्यक्ति को गुरु नहीं बनाना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि यदि कोई भी व्यक्ति वि^६ष पूर्णमनोयोग से अभ्यास करे तो कवित्व अव^७य प्राप्त होगा।

द्वितीय सन्धि में आचार्य क्षेमेन्द्र छायोपजीवी, पदकोपजीवी, पादोपजीवी तथा सकलोपजीवी कवियों का परिचय कराते हुए इस बात पर बल देते हैं कि एक सहृदयकवि को अन्य कवियों को सम्मान देना चाहिए तथा उनके कृतियों को ज्ञानपिपाषु कि भांति पढ़ने के साथ ही अपूर्ण रचनाओं को पूर्ण करने का यत्न करना चाहिए। ऐसा कवि सुमधुर काव्य का प्रणयन कर लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र कविकण्ठाभरण की तृतीय सन्धि में चमत्कार तत्त्व का निरूपण करते हैं। चमत्कार शब्द 'चमत्' इस आ^८चर्य बोधक अव्यय तथा 'कार' से मिलकर बना है। 'कार' शब्द 'कृञ्' धातु से भाव अर्थ 'घञ्' तथा कर्ता अर्थ में 'अण्' प्रत्यय योजित होकर निष्पन्न होता है। इसका विग्रह 'चमत्कारः चमत्कारः चमत्कृतिर्वा' है। प्रो० राम प्रताप ने चमत्कार पद की चार प्रकार से व्युत्पत्ति की है।

चमत्करोतीति चमत्कारः कर्तरि प्रयोगः।

चमत्क्रियते (सामाजिकः) अनेनेति चमत्कारः कर्मणि करणे च प्रयोगः।

चमत्कर्णं चमत्कारः भावे प्रयोगः।

चमत्कारोऽस्मिन् विद्यते इति चमत्कारः चमत्कारि काव्यम् अधिकरणे लाक्षणिक प्रयोगः।

चमत्क्रियतेऽसौ चमत्कार चमत्कृतार्थः।

अर्थात् जो सहृदय मानस को चमत्कृत करे वह है चमत्कार। आचार्य क्षेमेन्द्र की दृष्टि में चमत्कार काव्यानन्द या काव्य सौन्दर्य का बोधक है जिसके अभाव पक्ष में कोई भी काव्य सरस एवं सुमधुर या यह कहे कि वह सहृदय मानस को आनन्दित करने में समर्थ नहीं होगा। आचार्य क्षेमेन्द्र का स्पष्ट मत है कि "जिस प्रकार से सद्यः विकसीत वि^९ष्ट पुष्प के पराग के अस्वाद के लिए उत्सुक भ्रमर सौन्दर्य युक्त पुष्प उद्यान की ओर दौड़ता है ठीक उसी प्रकार काव्य में विलक्षण सौन्दर्य तथा रमणीयता के सृजन की इच्छा धारित करने वाला महाकवि वाणी की चमत्कृति के लोभवशात् चारुता पूर्ण विषय शब्द तथा सुन्दर अर्थ वाले काव्य का अनुसरण करता है।^(१०) इसीलिए आचार्य क्षेमेन्द्र इस बात पर वि^{११}ष बल देते हैं कि शिक्षा प्राप्त कवि को अपने काव्य को चमत्कार सम्पन्न अव^{१२}य बनाना चाहिए इसके अभाव में काव्य सहृदय मानस को अपनी ओर आकर्षित करने में असमर्थ हो जाएगा। आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवि तथा सहृदय दोनों के लिए चमत्कार को परम साध्य बताया है—

न हि चमत्कार विरहितस्य कवेः कवित्वं काव्यस्य वा काव्यत्वम्।^(१३) अर्थात् चमत्कार से रहित कवि में न तो कवित्व होता और न ही काव्य में काव्यत्व होता है ऐसा काव्य सौन्दर्यहीन तरुणी के समान होता है जो किसी के चित्त के आकर्षण का विषय नहीं बनता।

आचार्य क्षेमेन्द्र का स्पष्ट मानना है कि काव्य भले अन्याय काव्यतत्त्वों से युक्त होने के साथ ही सुन्दर वर्णों से परिपूर्ण एवं निर्दोष हो परन्तु ऐसी कृति सौन्दर्य बोध में असमर्थ होती है इस बात की पुष्टि के लिए मालवरुद्र एवं कालिदास के पद्यों का उदाहरण भी देते हैं। समान विषय वस्तु पर आधारित होने पर भी मालवरुद्र की रचना चमत्कार रहित होने के कारण सहृदय चिन्ताकर्षण में असमर्थ है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने चमत्कार को सौन्दर्य, काव्यानन्द चारुता के रूप में स्वीकार करते हैं इसे भी औचित्य के समान काव्यात्म तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए दिखायी देते हैं। इनके परवर्ती आचार्य वि^{१४}वे^{१५}वर, हरिप्रसाद एवं आचार्य जगन्नाथ ने चमत्कार तत्त्व को वि^{१६}ष महत्व दिया अर्थात् आचार्य क्षेमेन्द्र ने चमत्कार रूपी जिस तत्त्व को काव्य के परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया था धिरे-धिरे उस तत्त्व को काव्यात्म के रूप में प्रतिष्ठा मिलने लगी। आचार्य क्षेमेन्द्र चमत्कार के भेदों का भी निरूपण करते हैं—

तत्र द^{१७}विध^{१८}चमत्कारः — अविचारितरमणीयः, विचार्यमाणरमणीयः, समस्तसूक्तव्यापी, सूक्तेदे^{१९}दृ^{२०}यः, शब्दार्थगतः, अलंकारगतः, रसगतः, प्रख्यातवृत्तिगत^(२१)च^(२२) अर्थात् काव्यगत चमत्कार द^{२३}प्रकार का होता है। (१) बिना विचार किये प्रतीत होने वाला (२) विचार करने पर प्रतीत होने वाला (३) समस्त सूक्ति में रहने वाला (४)

सूक्ति के एक अंश में रहने वाला (5) शब्द में रहने वाला (6) अर्थ में रहने वाला (7) शब्द और अर्थ दोनों में रहने वाला (8) अलंकार में रहने वाला (9) रस में रहने वाला (10) प्रख्यात व्यक्ति के चरित्र रहने वाला। इससे स्पष्ट होता है कि आचार्य क्षेमेन्द्र काव्य सौन्दर्य के प्रत्येक पहलु में चमत्कार तत्त्व की प्रधानता को स्वीकार करते हैं।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने कविकण्ठाभरण के चतुर्थ सन्धि में गुण और दोषों का निरूपण करते हुए कहते हैं कि “कवि राजहंस के समान होता है। जैसे राजहंस अपने विवेक से दूध और पानी को पृथक् कर देता है ठीक उसी प्रकार से कवि भी काव्य से गुण और दोष को पृथक् कर देता है। इन्होंने तीन प्रकार के गुण और तीन प्रकार के दोषों का उल्लेख किया है —

“तत्र शब्दवैमल्यं अर्थ वैमल्यं रसवैमल्यमिति त्रयः काव्य गुणाः। शब्दकालुष्यं, अर्थकालुष्यं रसकालुष्यं इति काव्यदोषाः। सगुणं निर्गुणं, सदोषं निर्दोषं च काव्यम्।”⁽¹³⁾

अर्थात् शब्दों की विमलता, अर्थों की विमलता एवं रस की विमलता ये तीन काव्य गुण होते हैं जबकि शब्दों की सदोषता, अर्थ की सदोषता तथा रस की सदोषता ये तीन काव्य दोष हैं। जहाँ पर अन्य आचार्य काव्य की प्रकृति या ध्वनि आदि के आधार पर काव्य का विभाजन किया है। वही आचार्य क्षेमेन्द्र साहित्यशास्त्र में एक नयी परम्परा को जन्म देते हैं मेरे दृष्टि में क्षेमेन्द्र ऐसे प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने गुण और दोष को आधार काव्य बनाकर विभाजन किया है। इनकी दृष्टि में काव्य पाँच प्रकार का होता है— (1) गुण युक्त (2) गुण रहित (3) दोष युक्त (4) दोष रहित (5) गुण-दोष दोनों से युक्त।

आचार्य क्षेमेन्द्र की स्पष्ट मान्यता है कि जिस प्रकार से किसी अनजान मार्ग पर कोई व्यक्ति भटकता रहता है ठीक उसी प्रकार से काव्य-मार्ग भी होता है। काव्य सृजन में कोई बाधा न आए इसलिए एक कवि को—“तर्क”शास्त्र, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, चाणक्यनीति, कामशास्त्र, महाभारत, रामायण, मोक्षप्राप्ति के उपाय, अध्यात्मशास्त्र, धातुशास्त्र, रत्नपरीक्षाशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, ज्योतिष, धनुर्वेद, गजलक्षणशास्त्र, अक्षरलक्षणशास्त्र, पुरुषलक्षणविद्या, द्युतविद्या, जादूगरी, प्रकीर्ण⁽¹⁴⁾ प्रभृत विषयों का अध्ययन अनिवार्य रूप से करना चाहिए, ऐसा न करने वाले कवि को काव्य सृजन में अनेक⁽¹⁵⁾ समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भले ही कविकण्ठाभरण एक शिक्षा ग्रन्थ है फिर भी उसमें काव्य शास्त्रीयतत्त्वों की गवेषणा भी दृष्टव्य होती है, काव्य सृजन में आतुर मानस को इस ग्रन्थ के अध्ययन से लाभ अवश्य मिलेगा। इस ग्रन्थ के माध्यम से आचार्य क्षेमेन्द्र ने दो नूतन मान्यताओं को पल्लवित किया है जिसमें से चमत्कार तत्त्व को तो कालान्तर में प्रतिष्ठा मिली तथा वह काव्यात्म तत्त्व समझा जाने लगा परन्तु गुण और दोष के आधार पर काव्य विभाजन को उतनी प्रतिष्ठा न मिल सकी। अतः हम यह स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि कविकण्ठाभरण साहित्यशास्त्र का एक अलौकिक ग्रन्थ है।

संदर्भ सूची

वृहत्कथामंजरी — श्लोक 37

संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास पृ० 330—331

कविकण्ठाभरण पृ० 45

काव्यप्रकाश 1/3

कविकण्ठाभरण 1/13

वृंद सतसई | Vicharmanthan4u.com

कविकण्ठाभरण पृ०—50

वही 1/22—33

सुकविरतिशयार्थी वाक्यचमत्कार लोभादभिसरति मनोज्ञे वस्तु शब्दार्थसार्थे।

भ्रमर इव वसन्ते, पुष्पकान्ते बनान्ते नवकुसुम विषमोदमास्वादलोलः॥ वही 3/1

वही पृ० 73

वही पृ० 78

वही 4/1

वही पृ० 88

वही 5/3

भारतीय एकता के प्रतीक डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी

अंजली कुमारी*
डॉ. विजय नारायण सिंह**

श्यामा प्रसाद मुखर्जी का जन्म 06 जुलाई, 1901 को एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता श्री आशुतोष मुखर्जी (1864–1924) बंगाल के प्रतिष्ठित लोगों में से एक थे। इनके पितामह गंगा प्रसाद कलकत्ता के प्रसिद्ध चिकित्सक थे। इनकी माता का नाम योगमाया देवी था, जो सनातनी परंपरा की धर्म परायण हिंदू महिला थी।

श्यामा प्रसाद को प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए मित्र इंस्टीट्यूट में दाखिला कराया गया। बालक श्यामा प्रसाद प्रतिभा के धनी और मेधावी थे। 1917 में उन्होंने प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास की। 1919 में इंटर आर्ट्स में विश्वविद्यालय में प्रथम रहे। 1921 में बी०ए० अंग्रेजी आनर्स तथा क्षेत्रीय भाषा बंगला की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। इसके परिणामस्वरूप उन्हें 'बंकिम चन्द्र स्वर्ण तथा रजत पदक' प्राप्त हुए। एम०ए० की परीक्षा में भी वे प्रथम श्रेणी के साथ 1923 में उत्तीर्ण हुए।

वैवाहिक जीवन :-

श्यामा प्रसाद मुखर्जी का विवाह 16 अप्रैल 1922 को डॉ० बेनी माधव चक्रवर्ती की पुत्री सुधा देवी से हुआ। 1933 में सुधा देवी का निधन हो गया।

कार्य-क्षेत्र

सन् 1924 में श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में पंजीकृत हुए। 1926 में वे लिंकन इन में भर्ती होने के लिए इंग्लैंड गये। इंग्लैंड से लौटने पर वे हाईकोर्ट बार में शामिल हो गये। लेकिन उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः शिक्षा और राजनीति रहा। 33 वर्ष की छोटी आयु में वे 1934 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के उप-कुलपति बने और 1938 तक इस पद पर रहे। स्वतंत्रता के पूर्व वे लंबे समय तक बंगाल विधानसभा के सदस्य और कुछ काल के लिए प्रान्त के वित्तमंत्री भी रहे। आगे चलकर 1946 में वे स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने के लिए गठित संविधान सभा के सदस्य बने। 1952 में स्वतंत्र भारत के प्रथम चुनाव संपन्न हुए और वे दक्षिण कलकत्ता से लोकसभा में चुनकर आये।

डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी को जम्मू कश्मीर राज्य में प्रवेश करने के कारण पब्लिक सेप्टी ऐक्ट की धारा तीन ए के तहत बंदी बना लिया गया। मुखर्जी एवं उनके दो साथियों का पुलिस जीप में बैठाकर श्रीनगर ले जाया गया, जहाँ निशात बाग के पास एक छोटी सी कोठी को सब-जेल में परिवर्तित कर इन्हें वहाँ बंदी रखा गया। लेकिन इनकी मृत्यु रहस्यमयी परिस्थिति में 22 जून 1953 को हुई।

कश्मीर की समस्या अखंड भारत के लिए नासूर था। कश्मीर समस्या के समाधान के प्रयास में अखंड भारत की अभिकल्पना में डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने जम्मू-कश्मीर में अपना बलिदान दिया। इनका सार्वजनिक जीवन स्पष्ट, सुदीर्घ और बहुआयामी था। वे 1930 के दशक में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किये तथा 1953 में कश्मीर में बलिदान तक अविराम रूप से देश की अखंडता के लिए प्रयासरत रहे। वे बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। वे उच्च शिक्षाविद्-संवैधानिक राजनीतिज्ञ, विद्वान एवं कुशल सांसद, हिन्दू हितों के प्रबल रक्षक और सहृदय मानवतावादी थे। वे अपने जीवन में कभी सिद्धान्तों से समझौता नहीं किये। जब उनके समक्ष सिद्धान्त और पद के बीच चुनाव का अवसर आया, वे सिद्धान्त पर अडिग रहे और पद ठुकरा दिया।

डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी का राजनैतिक जीवन डेढ़ दशक का रहा। 1937 से 1953 तक भारतीय राजनीति का जटिल कार्यकाल रहा है। डेढ़ दशक के अपने राजनैतिक जीवन में उन्होंने बंगाल प्रांत की राजनीति में भाग लिया और हिन्दू महासभा के मंच के देश की राष्ट्रीय राजनीति में भी मूल्यवान योगदान दिया। डॉ० मुखर्जी अपने पिता आशुतोष मुखर्जी के मृत्यु के बाद वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने।¹ जब वे बंगाल की राजनीति में सक्रिय हुए तो उस समय मुस्लिम लीग ब्रिटिश शासन से प्रोत्साहित होकर सांप्रदायिक राजनीति के मार्ग पर चल रही थी। डॉ० मुखर्जी ने ब्रिटिश-मुस्लिम लीग की हिन्दू हित

* शोध छात्रा, एम० ए० (इतिहास), NET 2014, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

** सेवानिवृत्त सह प्राध्यापक, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

विरोधी गतिविधियों का बंगाल विधानसभा के भीतर और बाहर प्रबल प्रतिकार किया। एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में उन्होंने बंगाल की मुस्लिम लीग सरकार को गिरकर फजलुल हक के नेतृत्व में गैर-मुस्लिम लीग सरकार के गठन में परिणामकारी भूमिका निभाई, ताकि बंगाल को सांप्रदायिक महौल से बचाया जा सके।

डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी वर्ष 1939 में सावरकर के संपर्क में आए² तथा वे हिन्दू महासभा में सम्मिलित हो गए। डॉ० मुखर्जी के समक्ष अखंड भारत की स्वतंत्रता एवं निर्माण में तीन स्तरों पर संघर्ष करना पड़ रहा था: —

राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का दमन करने पर उतारू ब्रिटिश सत्ता से,

देश विभाजन की मांग पर अडिग मुस्लिम लीग से,

हिन्दू-मुस्लिम एकता के मोह में फँसी और तुष्टीकरण के मार्ग पर चल रही कांग्रेस से।

डॉ० श्यामा प्रसाद मुखर्जी हर हाल में देश को संयुक्त और अविभाजित रखना चाहते थे। वे अखंड और संयुक्त भारत के प्रबल पक्षधर थे और देश की विभाजन की आरे ले जानेवाली सभी योजनाओं के विरोधी थे। किन्तु जब उन्हें लगा कि विभाजन टाला नहीं जा सकता और कांग्रेस द्वारा अपनाई गयी नीति के परिणाम स्वरूप पंजाब और बंगाल प्रान्त पाकिस्तान में चले जाएँगे तो एक व्यावहारिक और यथार्थवादी राजनीतिज्ञ के नाते उन्होंने पंजाब और बंगाल के बहुल क्षेत्रों को पाकिस्तान में शामिल किये जाने के विरुद्ध जनमत तैयार किया। परिणामतः आज हमारे समक्ष हिन्दू बहुल क्षेत्र पाकिस्तान में जाने से बचा लिया जैसे — पं० बंगाल और पंजाब। उनकी यह सफलता उल्लेखनीय है।

देश स्वतंत्र होने पर पं० नेहरू के नेतृत्व में बने मंत्रिमंडल में डॉ० मुखर्जी को उद्योग और आपूर्ति मंत्री के रूप में शामिल किया गया।³ उद्योग मंत्री के रूप में उन्होंने भारत की औद्योगिक नीति निर्धारित करने और औद्योगिक विकास की मजबूत नींव रखने में उल्लेखनीय योगदान प्रस्तुत किया। लेकिन वे अधिक दिनों तक मंत्रिमंडल में नहीं रह पाये। रक्षा, विदेश नीति और पाकिस्तान के प्रति नीति को लेकर उनके और पं० नेहरू के बीच मतभेद बढ़ते जा रहे थे। पूर्वी पाकिस्तान (अब बंगलादेश) के हिन्दुओं के उत्पीड़न और निष्क्रमण के प्रश्न पर वे पं० नेहरू की नीतियों से न केवल असहमत थे बल्कि अपने को छला हुआ एवं आहत अनुभव करते थे। जब पंडित नेहरू और पाकिस्तानी प्रधानमंत्री लियाकत अली में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के प्रश्न पर दिल्ली में वार्ता तथा समझौते की प्रक्रिया चल रही थी, उन्होंने अप्रैल 1950 में केंद्रीय मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। शीघ्र ही उन्होंने कांग्रेस के राष्ट्रीय विकल्प के रूप में 'भारतीय जनसंघ' के नाम से एक अखिल भारतीय राजनैतिक दल का गठन किया।⁴ भारतीय जनसंघ और आगे चलकर उसमें आविर्भूत भारतीय जनता पार्टी को देश की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुए।

भारतीय जनसंघ की स्थापना के समय से ही डॉ० मुखर्जी कश्मीर समस्या से जुड़ गए। उन्होंने राष्ट्र की एकता और अखंडता की दृष्टि से कश्मीर समस्या का विश्लेषण किया, कश्मीर के साथ भारत की पूर्ण एकीकरण पर बल दिया और जम्मू-कश्मीर राज्य तथा भारत के ऐसे संवैधानिक संबंधों का विरोध किया, जो एकीकरण के मार्ग में बाधक थे। जम्मू-कश्मीर के भारत से एकीकरण के मुद्दे पर प्रजा परिषद् द्वारा किए गए आंदोलन को डॉ० मुखर्जी ने अपना पूर्ण समर्थन दिया और कश्मीर के भारत से एकीकरण के लिए तथा राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए संघर्ष करते हुए अपने प्राणों की आहुती दी।

सरदार पटेल, जिन्होंने अपने जीवन के अंतिम वर्ष भारतीय संघ को दिन-रात मेहनत करके बनाने में लगाए थे और नेहरूजी के विचित्र व्यवहार से जूझते जूझते 15 दिसंबर, 1950 को स्वर्गवास हो गए। ऐसे में नेहरूजी भारत के भाग्य को संवारने वा एकमात्र कमांडर रह गए। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह था कि जम्मू व कश्मीर के घटनाक्रम के बारे में उनसे असहज प्रश्न करने वाला कोई नहीं था, परंतु नेहरूजी को यह अंदेशा था कि डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, अध्यक्ष, भारतीय जनसंघ राष्ट्रवादी विचारधारा वाली राजनीति के पथ पर स्वयं को अग्रसर कर लेंगे। उस समय तक नई संसद की बैठक बुलाई जा चुकी थी। जैसा कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने टिप्पणी करते हुए कहा था कि सरकार में पटेलजी की जिम्मेदारियों डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी पर आ गई हैं। वह इन जिम्मेदारियों को स्वीकारने से कोई भी शर्म नहीं करेंगे।⁵

मई 21, 1952 को नई संसद में राष्ट्रपति के अभिभाषण में, जो शेख अब्दुल्लाह की अलगाववादी नीतियों के संदर्भ में था, पर टिप्पणी करते हुए मुखर्जी ने कहा कि भारत की एकता और अखंडता दाँव पर है। नेहरूजी ने दखल देकर संसद को सूचित करते हुए कहा कि 'मैं डॉ. मुखर्जीजी के मुकाबले कश्मीर के बारे में अधिक जानकारी रखता हूँ।' डॉ. मुखर्जी ने अपना पक्ष निडरतापूर्वक रखते हुए कहा कि मैं यह जानता हूँ कि क्या

कश्मीरी पहले भारतीय हैं और बाद में कश्मीरी हैं, या वह पहले कश्मीरी हैं और बाद में भारतीय, या वह केवल कश्मीरी ही हैं और भारतीय कभी भी नहीं? यह एक अति महत्वपूर्ण बिंदु है, जिसका हमें निर्णय करना है।⁶

डॉ. मुकर्जी ने सही दिशा में निशाना साधा था। उन्होंने संक्षेप में समस्या के संबंध में बताया कि सरकार शेख अब्दुल्लाह के साथ अनुबंध पर हस्ताक्षर करके नेशनल कॉन्फ्रेंस की सांप्रदायिक और अलगाववादी नीतियों को वैधता प्रदान करते हुए औपचारिक तौर पर जम्मू व कश्मीर को विशेष दर्जा प्रदान कर दिया था।⁷

यह समझौता प्रजा परिषद के नेतृत्व में शेख अब्दुल्लाह के विरुद्ध आंदोलन प्रारंभ करने वाले रियासत के गैर-मुसलिमों के लिए एक बहुत बड़ा धक्का था। इस समझौते का महत्व कांग्रेस और अन्य विपक्षी पार्टियों में खो गया, परंतु डॉ. मुकर्जीजी उस समय तक प्रजा परिषद के संपर्क में थे और पंडित प्रेमनाथ डोगराजी द्वारा भी उनको जानकारी दे दी गई थी। वह अपने आप को इस खेल में पार समझ रहे थे।

जून 14, 1952 को डॉ. मुकर्जी को भारतीय जनसंघ की कार्यकारी समिति द्वारा पारित प्रस्ताव मिला, जिसमें जोर देकर जम्मू व कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग माना गया था और यह घोषणा की गई थी कि रियासत की संविधान सभा द्वारा निर्वाचित राष्ट्राध्यक्ष और अलग ध्वज की बात के साथ-साथ उसके आधारभूत सिद्धांत, समिति द्वारा इस तथ्य को मान्यता देना कि जम्मू और कश्मीर स्वायत्तता संपन्न गणतंत्र बना रहेगा, यह सब बातें भारतीय संविधान की भावना और भारत की प्रभुता का स्पष्ट उल्लंघन है। समिति इस योजना का एक गंभीर दृष्टिकोण लेती है, लोगों को भारत सरकार के साथ-साथ याद दिलाना चाहती है कि 1945 की 'कैबिनेट मिशन योजना' के अनुसार तीन विषयों सहित केंद्र एक कमजोर कड़ी था, इसलिए कांग्रेस और लोगों ने इसका विरोध किया।⁸

यह भारत की एकता और हितों के लिए भी हानिकारक था। मुसलिम लीग पृथक्तावादी प्रवृत्ति, फिर भी भारत को विभाजित करने में कामयाब हो गई, जिसके विध्वंसकारी परिणाम सामने आए। जम्मू व कश्मीर रियासत को उसी पथ पर कार्य की अनुमति देना ऐसा प्रतीत होता है, जैसे इतिहास को स्वयं ही दोहराने की अनुमति देना ! इसका अर्थ होगा—उपद्रवी तत्त्वों को पुनः आह्वान करना कि 'आओ और भारत की एकता और अखंडता को तोड़ दो', जो कि ऐसी जबरदस्त सराबोर से प्राप्त की गई है। यह प्रस्ताव लोगों का आह्वान भी करता है कि 29 जून, 1952 के दिन को, 'कश्मीर दिवस' के रूप में मनाकर भारतीय जनसंघ के दृढ़मत को समर्थन प्रदान करें।⁹

26 जून, 1952 को डॉ. मुकर्जी ज.व.क. के प्रश्न पर लोकसभा में बोलते हुए कहते हैं कि रियासत के लिए एक अलग ध्वज, एक निर्वाचित प्रमुख और अनुच्छेद 370 ही ऐसे आधार हैं, जिनकी वजह से शेख अब्दुल्लाह रियासत के लिए एक अलग संविधान चाहते हैं। "आप वफादारी विभाजित नहीं कर सकते। शेख अब्दुल्लाह कह चुके हैं कि हम दोनों ध्वजों के साथ बराबरी का बरताव करेंगे। आप ऐसा नहीं कर सकते। यह आधा-आधा वाला प्रश्न नहीं है। यह समानता का प्रश्न नहीं है। यह संपूर्ण भारतवर्ष के लिए एक ध्वज प्रयोग करने का प्रश्न है, जिसमें कश्मीर भी सम्मिलित है। यहाँ अलग ध्वज के साथ अलग 'कश्मीर गणतंत्र' का कोई प्रश्न नहीं है।" उन्होंने अनुच्छेद 370 की घोषणाओं, नागरिक अधिकारों के दमन के विवरण, हिंदी के उन्मूलन, सांप्रदायिक लाइनों के साथ जम्मू के विभाजन, धर्मार्थ संपत्ति और धन का संपत्तिहरण, सेवाओं में सांप्रदायिकता और जम्मू के विरुद्ध भेदभाव के लोहे के परदे, जिन्हें शेख अब्दुल्लाह ने रियासत के आस-पास खींचा है, में निहित विधान भविष्य में पृथक् आन्दोलन के लिए प्रेरक होगा।¹⁰

आज संविधान के धारा 370 को समाप्त कर जम्मू-कश्मीर का भारत के साथ एकीकरण हो चुका है।

संदर्भ

ऋतु कोहली, डॉ० श्यामा प्रसाद मुकर्जी और कश्मीर समस्या, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016

विजय त्रिवेदी, संघम् शरणम् मच्छामि, मां, 2020

आरएसएस 360°, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ: परत दर परत, Bloomsbury, 2020

आचार्य मायाराम'पतंग', एकात्म भारत के प्रणेता डॉ० श्यामा प्रसाद मुकर्जी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022

तथागत राय, अप्रतिम नायक, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रो. कुलभूषण मोहत्रा, प्रजा परिषद का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2024

वही

वही

वही

वही

भूमंडलीकरण और दलित स्त्री: सशक्तिकरण की संभावनाएँ और सीमाएँ : एक विहंगावलोकन

डॉ० धर्मवीर चौहान*

प्रस्तावना

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने दलित स्त्रियों के जीवन पर बहुआयामी प्रभाव डाला है, जो आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और लैंगिक परिप्रेक्ष्य में गहराई से महसूस किए जा सकते हैं। एक ओर यह प्रक्रिया अवसरों, संसाधनों और तकनीकी विकास की पहुँच को व्यापक बनाती है, वहीं दूसरी ओर यह असमानताओं को और अधिक जटिल और तीव्र बनाती है। भूमंडलीकरण के प्रभाव से उत्पन्न पूँजीवादी संरचनाएँ उन वर्गों को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं जो पहले से ही सामाजिक रूप से वंचित हैं। दलित स्त्रियाँ, जो जाति और लिंग दोनों ही कारणों से दोहरे शोषण का शिकार होती हैं, इस प्रक्रिया के अंतर्गत और अधिक हाशिए पर धकेली जाती हैं। भूमंडलीकरण ने जिस प्रकार श्रम के बाज़ार को अनौपचारिक बनाया है, उसमें दलित स्त्रियाँ सस्ते श्रमबल के रूप में इस्तेमाल की जाती हैं, जहाँ उनके पास न तो सुरक्षा होती है और न ही अधिकारों की कोई गारंटी।¹ इस प्रक्रिया ने दलित स्त्री के अस्तित्व, पहचान और संघर्ष को नए संदर्भों में प्रस्तुत किया है। हिंदी कहानी, जो भारतीय समाज की जटिलताओं और विविधताओं को प्रतिबिंबित करती है, ने दलित स्त्री के अनुभवों को केंद्र में रखकर सशक्तिकरण की संभावनाओं और सीमाओं को उजागर किया है। हिंदी कहानी इस परिवर्तनशील सामाजिक संदर्भ का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनी है। प्रियंका सोनकर की कृति *दलित स्त्री विमर्श: सृजन और संघर्ष* (2020)² इस बात पर बल देती है कि हिंदी कहानी केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक दस्तावेज़ भी है, जिसमें दलित स्त्री की आवाज़ को स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है। जैसे सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' न केवल जातिगत भेदभाव को रेखांकित करती है, बल्कि यह दिखाती है कि शिक्षा और आत्मनिर्भरता कैसे दलित स्त्री के लिए सशक्तिकरण का माध्यम बनती है।

इसी प्रकार, सुमित्रा शर्मा की पुस्तक *वैश्वीकरण, सामाजिक गतिशीलता एवं अनुसूचित जातियाँ* (2015)³ भूमंडलीकरण की पृष्ठभूमि में दलित स्त्री की सामाजिक गतिशीलता पर प्रकाश डालती है। वह यह विश्लेषण प्रस्तुत करती है कि भूमंडलीकरण ने एक ओर सामाजिक वर्गों के बीच दूरी बढ़ाई है, वहीं दूसरी ओर उसने अवसरों का नया क्षितिज भी खोला है- लेकिन यह अवसर केवल उन्हीं के लिए सुलभ हैं जो शिक्षित, संगठित और जागरूक हैं। रजनी पाठक⁴ की पुस्तक *स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य* (2018) इस बात की पुष्टि करती है कि दलित स्त्री को हिंदी कहानी में न केवल एक पीड़ित चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है, बल्कि उसे सामाजिक अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाली एक चेतन और सक्रिय शक्ति के रूप में भी दिखाया गया है।

भूमंडलीकरण की अवधारणा और उसका सामाजिक प्रभाव

भूमंडलीकरण का मुख्य उद्देश्य आर्थिक उदारीकरण, बाज़ार का विस्तार और वैश्विक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना है। हालांकि इसका प्रभाव केवल आर्थिक तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक ढाँचों को भी प्रभावित करता है। भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में यह प्रक्रिया सामाजिक असमानताओं को और अधिक जटिल बना देती है।

* प्रवक्ता, राष्ट्रीय इंटर कॉलेज महर्षेय पुरंदर, जौनपुर (उ.प्र.)

दलित स्त्रियाँ, जो जाति, वर्ग और लिंग के त्रिस्तरीय शोषण का शिकार हैं, भूमंडलीकरण की चपेट में सबसे अधिक आती हैं। शिक्षा, रोज़गार और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता के मामले में उनके लिए यह प्रक्रिया कभी-कभी अवसर बनती है, तो कभी एक नई तरह की गुलामी।

दलित स्त्री: एक त्रिस्तरीय उत्पीड़न

दलित स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण करते समय हमें यह समझना होगा कि वे केवल स्त्री या केवल दलित नहीं हैं, बल्कि उनकी पहचान इन दोनों आयामों के संगम से बनती है। इस दृष्टि से ब्लैक फेमिनिज्म की तरह भारत में भी दलित स्त्री विमर्श ने एक स्वतंत्र विचारधारा का विकास किया है।

हिंदी साहित्य में कुसुम मेहता, सावित्रीबाई फुले, उषा दहिया, सावित्री देवी, अनिता भारती, कुंवर नारायण, और ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे लेखकों ने दलित स्त्री की पीड़ा, संघर्ष और स्वप्न को स्वर दिया है।⁵

2. भूमंडलीकरण और हिंदी कविता

भूमंडलीकरण ने भारतीय समाज में व्यापार, सूचना, पूंजी और संस्कृति के तीव्र प्रवाह के माध्यम से गहरा प्रभाव डाला है। इसका असर हिंदी कविता पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हिंदी कवि इस नए सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य को न केवल रचनात्मक रूप से अभिव्यक्त कर रहे हैं, बल्कि इसके भीतर छिपी असमानताओं और संघर्षों को भी उजागर कर रहे हैं।

भूमंडलीकरण के प्रभाव से जातिवाद, लिंगभेद, और वर्गभेद जैसे मुद्दे और अधिक जटिल हुए हैं। हिंदी कविता इन समस्याओं को मुख्य रूप में प्रस्तुत कर रही है, विशेषकर दलित और स्त्री विषयक रचनाओं में यह प्रवृत्ति अधिक देखी जा सकती है। समकालीन हिंदी कविता ने जहाँ एक ओर हाशिए पर खड़ी आवाज़ों को मंच दिया है, वहीं उसने भूमंडलीकरण के कारण उत्पन्न नए सामाजिक तनावों और सशक्तिकरण की संभावनाओं को भी अभिव्यक्त किया है।⁶

2.1 ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

हिंदी कविता की प्राचीन और मध्यकालीन परंपराओं में दलितों, विशेषकर दलित स्त्रियों के अनुभवों को शायद ही कोई स्थान मिला। इन कालखंडों में कविता मुख्यतः ब्राह्मणवादी और सामंती दृष्टिकोण से संचालित होती थी, जिसमें स्त्रियों की छवि या तो आदर्शवादी थी या पूरी तरह से अनुपस्थित।

हालाँकि, बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दलित चेतना के उभार के साथ दलित साहित्य और कविता का विकास हुआ, जिसने दलित स्त्रियों के जीवन को साहित्यिक विमर्श के केंद्र में लाने का कार्य किया। कवयित्रियाँ जैसे कुसुम मेहते, सावित्री बाई फुले, और कुमुद पावडे ने न सिर्फ अपनी कविताओं में दलित स्त्रियों के दमन को उकेरा, बल्कि उनके संघर्ष और आत्मसम्मान की भावना को भी अभिव्यक्ति दी।⁷

विशेष रूप से **कुमुद पावडे** की कविताओं में जातिगत और लैंगिक भेदभाव के विरोध की तीव्रता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है, जहाँ दलित स्त्री न केवल उत्पीड़न की शिकार है, बल्कि विरोध का प्रतीक भी बन जाती है। यह परिप्रेक्ष्य कविता को एक सामाजिक दस्तावेज़ में बदल देता है।

2.2 सशक्तिकरण की संभावनाएँ

भूमंडलीकरण के दौर में दलित स्त्रियों के सामने नए अवसरों के साथ-साथ नए प्रकार की चुनौतियाँ भी आई हैं। हिंदी कविता इस परिवर्तन को प्रतिबिंबित करती है—जहाँ एक ओर दलित स्त्रियाँ शिक्षा, रोज़गार और आत्मनिर्भरता की दिशा में बढ़ रही हैं, वहीं दूसरी ओर वे अब अपनी अस्मिता और अधिकारों के लिए आवाज़ भी बुलंद कर रही हैं।

कविताएँ जैसे **सुभद्राकुमारी चौहान** की "नर नारी समता" या समकालीन दलित कवयित्रियों की रचनाएँ दलित स्त्रियों के नए आत्मविश्वास की झलक दिखाती हैं। उदाहरणस्वरूप, एक कविता में कवयित्री लिखती हैं:

*"मेरे हाथों में कलम है अब,
जंजीरें नहीं लिखती मैं अब"*

यह पंक्ति दलित स्त्री की आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण की भावना को दर्शाती है। कविता अब केवल दर्द की अभिव्यक्ति नहीं रह गई है, बल्कि यह प्रतिरोध और निर्माण की भाषा बन चुकी है।

हिंदी कविता में यह बदलाव, जहाँ दलित स्त्री केवल 'पीड़िता' नहीं बल्कि 'परिवर्तन की वाहक' के रूप में सामने आती है, सशक्तिकरण की प्रक्रिया को गति देता है। इस प्रक्रिया में कविता न केवल भावनात्मक चेतना जाग्रत करती है, बल्कि सामाजिक बदलाव के लिए प्रेरणा भी बनती है।

स्वर की स्वतंत्रता

भूमंडलीकरण ने दलित स्त्रियों को आत्मकथा, कविता, कहानी, ब्लॉग आदि माध्यमों में स्वतंत्र रूप से अपनी बात कहने की शक्ति दी है। आत्मकथाएँ जैसे *"मैं बवंडर हूँ"* (उर्मिला पवार) और *"अपनी ज़मीन अपनी बात"* (कुसुम मेघवाल) सशक्त उदाहरण हैं।⁹

2.3 आलोचनात्मक दृष्टिकोण

कई कवियों ने हिंदी कविता में यह भी दर्शाया है कि सशक्तिकरण की प्रक्रिया में कुछ सीमाएँ हैं। भूमंडलीकरण ने कुछ अवसर उत्पन्न किए हैं, लेकिन यह प्रक्रिया सामाजिक असमानताओं को समाप्त करने में पूरी तरह सक्षम नहीं है। दलित स्त्रियाँ, जो पहले आर्थिक रूप से पिछड़ी थीं, आज भी सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से हाशिये पर हैं। हिंदी कविता ने यह दिखाया है कि दलित स्त्रियाँ अपने उत्पीड़न को पहचानने के बावजूद, अपनी जाति, लिंग और वर्ग के कारण सशक्तिकरण के रास्ते में बाधाओं का सामना करती हैं।

2. कविता और कहानी में प्रतिरोध की आवाज़

हिंदी दलित कविता और कहानी में भूमंडलीकरण के प्रभाव को प्रतिरोध के माध्यम से उजागर किया गया है। यह साहित्य न केवल पीड़ा को स्वर देता है, बल्कि बदलाव की संभावनाएँ भी प्रस्तुत करता है।

अनिता भारती की कविताएँ दलित स्त्रियों की मुखर आवाज़ बनकर सामने आती हैं। भूमंडलीकरण के दौर में जहाँ एक ओर स्त्रियों को श्रम का हिस्सा बनाया गया, वहीं दूसरी ओर उनका मानवीय अस्तित्व अब भी नकारा गया। उनकी कविता की पंक्तियाँ: *"मैं दलित हूँ / दलित स्त्री हूँ / पर सबसे पहले एक इंसान हूँ / मुझे पूँजी नहीं, सम्मान चाहिए।"* यह कविता सिर्फ आर्थिक आज़ादी के पीछे छिपे शोषण को नहीं, बल्कि अस्मिता की लड़ाई को केंद्र में लाती है।¹⁰

नीलिमा चौहान की कहानियाँ भूमंडलीकरण की आलोचना करती हैं, विशेषतः उस प्रक्रिया की जिसमें स्त्री को "उपयोग की वस्तु" बना दिया गया है। उनकी कहानियों में महिला के दोहरे अस्तित्व की झलक मिलती है—एक ओर वह उत्पाद की उपभोक्ता है, दूसरी ओर स्वयं एक वस्तु की तरह प्रस्तुत की जाती है। इस तरह का द्वैत भूमंडलीकरण के 'फेमिनिस्ट' दिखावे को उजागर करता है।¹¹

भूमंडलीकरण के प्रभाव: कविता के दृष्टिकोण

भूमंडलीकरण ने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों की स्थिति में बदलाव लाने का काम किया है। दलित स्त्रियाँ इस बदलाव का हिस्सा बनी हैं, लेकिन उनके लिए यह बदलाव आशा और संघर्ष के बीच झूलता हुआ प्रतीत होता है। हिंदी कविता में भूमंडलीकरण के इस प्रभाव को विभिन्न रूपों में देखा गया है।

3.1 आर्थिक सशक्तिकरण के अवसर

भूमंडलीकरण के कारण वैश्विक बाजारों में भारत का प्रवेश हुआ है, और यह दलित स्त्रियों के लिए नए रोजगार के अवसरों को जन्म देता है। हिंदी कविता ने इस बदलाव को देखा है और दिखाया है कि कैसे दलित स्त्रियाँ अब एक नई आशा के साथ काम की दुनिया में कदम रख रही हैं।

3.2 सामाजिक असमानताएँ

हालाँकि भूमंडलीकरण ने दलित स्त्रियों के लिए कुछ अवसर दिए हैं, लेकिन कविता में यह भी देखा गया है कि सामाजिक असमानताएँ और जातिवाद जैसी समस्याएँ अभी भी अस्तित्व में हैं। जातिवाद और पितृसत्तात्मकता दलित

स्त्रियों के सशक्तिकरण के रास्ते में अवरोध पैदा करती हैं। कविता में इस बात को अभिव्यक्त किया गया है कि दलित स्त्रियाँ अब भी अपने अधिकारों को प्राप्त करने में संघर्षरत हैं।

3.3 स्त्री का संघर्ष

हिंदी कविता में दलित स्त्रियों का संघर्ष एक प्रमुख विषय बन चुका है। इन कविताओं में उन्हें केवल शिकार के रूप में नहीं, बल्कि अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत एक जुझारू स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कविता में उनके दर्द और संघर्ष के साथ-साथ उनकी उम्मीद और आत्मविश्वास भी अभिव्यक्त होते हैं।

4. दलित स्त्री का संघर्ष: कविता के माध्यम से अवलोकन

हिंदी कविता ने हमेशा समाज के वंचित वर्गों के संघर्ष को उजागर किया है। दलित स्त्रियाँ, जो समाज के सबसे निचले तबके से आती हैं, अपने संघर्ष में अकेली नहीं हैं। कविता के माध्यम से यह दिखाया गया है कि दलित स्त्रियाँ अपने उत्पीड़न को पहचानने के बाद उस पर विजय पाने के लिए सक्रिय रूप से काम कर रही हैं।

4.1 कविता में उत्पीड़न और संघर्ष

कवियों ने अपनी रचनाओं में दलित स्त्रियों के उत्पीड़न को प्रमुख रूप से दर्शाया है। इन कविताओं में वे स्त्रियाँ जो पितृसत्तात्मक समाज, जातिवाद और लिंगभेद की चक्की में पिस रही हैं, अपने अधिकारों के लिए बोलने की हिम्मत जुटाती हैं। कविता में उनका संघर्ष शक्ति, आशा और आत्मसम्मान की प्रतीक बनता है।

सीमाएँ और चुनौतियाँ

भूमंडलीकरण ने जहाँ एक ओर महिलाओं को वैश्विक बाज़ार से जोड़ने और रोजगार के नए अवसर प्रदान करने का दावा किया, वहीं दूसरी ओर यह प्रक्रिया दलित स्त्रियों के लिए उतनी समावेशी नहीं रही। वैश्वीकरण के कारण निम्न आय वर्ग और वंचित समुदायों पर विशेष रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

1. असंगठित क्षेत्र में शोषण

भूमंडलीकरण ने असंगठित क्षेत्र को बढ़ावा दिया है जहाँ श्रमिकों को न्यूनतम वेतन, स्वास्थ्य सुविधा और सामाजिक सुरक्षा नहीं मिलती। दलित स्त्रियाँ इस क्षेत्र में सबसे अधिक कार्यरत हैं।¹²

2. सांस्कृतिक उपनिवेशवाद

भूमंडलीकरण के नाम पर जो सांस्कृतिक मॉडल प्रसारित होता है, वह अक्सर सवर्ण, शहरी और पितृसत्तात्मक होता है। इस मॉडल में दलित स्त्रियों की सांस्कृतिक पहचान को या तो विस्मृत किया जाता है या वस्तुवत बना दिया जाता है।

3. प्रतिनिधित्व की कमी

मीडिया, राजनीति और मुख्यधारा साहित्य में दलित स्त्रियों का प्रतिनिधित्व अभी भी सीमित है। वे या तो 'उपेक्षित पीड़िता' के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं या फिर उनकी आवाज़ को विलीन कर दिया जाता है।

निष्कर्ष

भूमंडलीकरण और दलित स्त्री का संबंध जटिल है। हिंदी कविता ने इस संबंध को समर्पण, संघर्ष और सशक्तिकरण के विभिन्न पहलुओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कविता ने न केवल दलित स्त्रियों के दर्द और संघर्ष को सामने लाया है, बल्कि उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार की संभावनाओं को भी प्रस्तुत किया है। हालांकि, यह सशक्तिकरण की प्रक्रिया बहुत सरल नहीं है और इसमें अभी भी कई चुनौतियाँ हैं। हिंदी कविता ने इन चुनौतियों को पहचानते हुए दलित स्त्रियों के संघर्ष को एक नई दिशा दी है, जिससे उनके सशक्तिकरण के रास्ते में और भी स्पष्टता और मार्गदर्शन मिलता है।

दलित स्त्री का सशक्तिकरण हिंदी कविता में अब एक प्रमुख विमर्श बन चुका है। आधुनिक और समकालीन कवयित्रियाँ दलित स्त्रियों की आवाज़ को मुख्यधारा में लाने का प्रयास कर रही हैं। कविता उनके जीवन के संघर्षों को शब्द देती है, उनके आत्मबल को बढ़ाती है और सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरणा का स्रोत बनती है।

संदर्भ सूची

- शर्मा, अर्चना. *भूमंडलीकरण और श्रमिक वर्ग*. नई दिल्ली: संवाद प्रकाशन, 2018.
- सोनकर, प्रियंका (2020). *दलित स्त्री विमर्श: सृजन और संघर्ष*. संकल्प पब्लिकेशन, दिल्ली.
- शर्मा, सुमित्रा (2015). *वैश्वीकरण, सामाजिक गतिशीलता एवं अनुसूचित जातियाँ*. अंजलि प्रकाशन
- पाठक, रजनी (2018). *स्त्री विमर्श और हिंदी साहित्य*. एशियन पब्लिकेशन.
- भारती, अनिता। *दलित स्त्रीवाद और उसका साहित्य*। वाणी प्रकाशन।
- शर्मा, सीमा. *हिंदी कविता में दलित और स्त्री विमर्श*, संवाद प्रकाशन, 2021।
- ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2009
- कुमुद पावड़े, *न जात न पात*, 1981
- पवार, उर्मिला. (2008). *मैं बवंडर हूँ*. संवाद प्रकाशन।
- भारती, अनिता. *दलित कविता संग्रह*. भोपाल: अनामिका प्रकाशन, 2015.
- चौहान, नीलिमा. *स्त्री और भूमंडलीकरण की कहानियाँ*. दिल्ली: फेमिनिस्ट वॉइस, 2017.
- Deshpande, Satish. (2003). *Contemporary India: A Sociological View*. Penguin.



‘देशबंधु’ चित्तरंजन दास: एक वैचारिक राष्ट्रनिर्माता की राजनीतिक दृष्टि

सुधीर कुमार*
डा. सत्यपाल यादव**

सारांश :

यह शोधपत्र देशबंधु चित्तरंजन दास के राजनीतिक विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वे भारतीय राष्ट्रवाद के उन अग्रणी चिंतकों में से एक थे, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के उद्देश्यों, स्वरूप और मार्गदर्शन को वैचारिक आधार प्रदान किया। दास का राजनीतिक चिंतन गांधीवादी असहयोग से लेकर संवैधानिक साधनों के उपयोग तक व्यापक था, जिसमें उन्होंने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए विभिन्न रणनीतियों को सिद्धांत और व्यवहार की कसौटी पर कसकर परखा। वे राष्ट्रीयता की अवधारणा को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित न मानते हुए सामाजिक न्याय, आत्मनिर्भरता, विकेंद्रीकरण और समुदायों के बीच सह-अस्तित्व के सिद्धांतों से जोड़ते हैं। स्वराज की उनकी परिकल्पना केवल शासन परिवर्तन नहीं, बल्कि भारतीय समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पुनर्निर्माण का आह्वान थी। उन्होंने स्वराज के भीतर लोकतंत्र, स्थानीय स्वायत्तता और नैतिक राष्ट्रवाद के तत्वों को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया। उनका विश्वास था कि स्वतंत्रता की प्राप्ति तब तक अधूरी है जब तक वह आमजन के लिए न्याय, समानता और सम्मान सुनिश्चित न करे।

मुख्य शब्द : चित्तरंजन दास, स्वतंत्रता संग्राम, असहयोग आंदोलन, स्वराज पार्टी, देशबंधु, गांधी युग, वैकल्पिक राजनीति, राष्ट्रवाद, राष्ट्रनिर्माण, भारतीय राजनीति, विचारक, संगठनकर्ता, वैचारिक संघर्ष।

मुख्य आलेख –

चित्तरंजन दास का जन्म कलकत्ता (आधुनिक कोलकाता) में 5 नवंबर, 1870 को हुआ था। 1890 में उन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज से स्नातक की पढ़ाई पूरी की। उच्चतर शिक्षा के लिए हुए इंग्लैंड रवाना हो गए। वर्ष 1891 में पहली बार भारतीय सिविल सेवा की परीक्षा में शामिल हुए पर सफलता नहीं मिली। 1893 में भारत वापस आए और कलकत्ता उच्च न्यायालय में वकालत शुरू किया (Ray xi)। वर्ष 1906 में पहली बार कांग्रेस में एक प्रतिनिधि के तौर पर शामिल हुए, लेकिन उसके सदस्य नहीं बने। वर्ष 1917 तक वे कांग्रेस से बाहर ही रहे और एक दर्शक के रूप में कांग्रेस के उतार-चढ़ाव को देखते रहे। वर्ष 1917 में दास ने श्रीमती एनी बेसेंट को कांग्रेस का अध्यक्ष चुने जाने में अग्रणी भूमिका निभाई। तत्पश्चात दास ने 1917 से 1924 तक आयोजित कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में भाग लिया (Ray 191)। दिसंबर 1921 में कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में चित्तरंजन दास को अध्यक्ष चुना गया, लेकिन कुछ दिन पहले अपराधी कानून संशोधन अधिनियम के तहत गिरफ्तारी के कारण इस दायित्व से उन्हें वंचित होना पड़ा था (Ray 191)। 1908 में उन्होंने अरविंद घोष और मनिकटोला बम षड्यंत्र केस के आरोपियों के लिए कानूनी लड़ाई लड़ी। इसी तरह 1911 में ढाका षड्यंत्र केस के दोषियों का बचाव किया। वर्ष 1919 में कांग्रेस द्वारा गठित जलियांवाला बाग जांच समिति के सदस्य बनाए गए (Ray xii)। चार सितंबर 1920 को कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में चित्तरंजन दास ने असहयोग आंदोलन का विरोध किया था। लेकिन दिसंबर में आयोजित नागपुर के सालाना अधिवेशन में असहयोग को अपनी सहमति प्रदान कर दी थी। उस समय वकालत में उनका अच्छा नाम था। बावजूद इसके गांधीजी द्वारा असहयोग के आह्वान पर उन्होंने वकालत का पेशा छोड़ दिया था (Ray 66)।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गया अधिवेशन (दिसंबर 1922) की अध्यक्षता करते हुए चित्तरंजन दास ने काउंसिलों में प्रवेश को लेकर एक साहसिक और निर्णायक रुख अपनाया। उन्होंने अपने भाषण में स्पष्ट रूप से तर्क दिया कि कांग्रेस को

* शोधार्थी, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विधान परिषदों में प्रवेश करना चाहिए ताकि उनकी कार्यप्रणाली को भीतर से बाधित किया जा सके, उनमें व्यवस्थित अवरोध और गतिरोध उत्पन्न किया जा सके, जिससे औपनिवेशिक सरकार को राजनीतिक दबाव में आकर और अधिक संवैधानिक सुधार देने के लिए बाध्य होना पड़े। उनका यह दृष्टिकोण असहयोग आंदोलन की पूर्ववर्ती रणनीति से भिन्न था, जिसमें परिषदों के पूर्ण बहिष्कार का समर्थन किया गया था। गया अधिवेशन से पूर्व, अक्टूबर 1922 में देहरादून में आयोजित संयुक्त प्रांत के प्रादेशिक राजनीतिक सम्मेलन में दास ने अपने सामाजिक दृष्टिकोण की झलक देते हुए यह ऐतिहासिक घोषणा की थी कि स्वराज केवल "भद्रलोक" अथवा शिक्षित उच्चवर्ग के लिए नहीं, बल्कि "जनसामान्य" के लिए होना चाहिए। यह कथन भारतीय राष्ट्रवाद को अधिक समावेशी और जनकेंद्रित दिशा में ले जाने का प्रयास था। यद्यपि गया अधिवेशन में उनके द्वारा प्रस्तुत काउंसिल-प्रवेश प्रस्ताव को 890 के विरुद्ध 1,740 मतों से अस्वीकृत कर दिया गया, तथापि दास और मोतीलाल नेहरू ने अपने राजनीतिक लक्ष्य को आगे बढ़ाते हुए मार्च 1923 में एक पृथक संगठन — स्वराज पार्टी — की स्थापना की। (सरकार 247)

चित्तरंजन दास के राजनीतिक विचार

चित्तरंजन दास के प्रारंभिक राजनीतिक विचार बंगाल पुनर्जागरण के महान राष्ट्रवादी चिंतकों से गहराई से प्रभावित थे। विशेष रूप से बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय और ‘राष्ट्रगुरु’ सुरेंद्रनाथ बनर्जी की विचारधारा ने उनके राजनीतिक दृष्टिकोण को दिशा दी। बंकिम चंद्र की राष्ट्रवादी चेतना और सांस्कृतिक गौरवबोध, तथा सुरेंद्रनाथ बनर्जी की उदारवादी संवैधानिक राजनीति— जिन्होंने 1895 और 1902 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता की—दास के लिए प्रारंभिक वैचारिक प्रेरणा का स्रोत बनीं। बनर्जी के नेतृत्व और राजनीतिक व्यावहारिकता ने दास की सोच को प्रभावित किया, जिससे वे एक ऐसे राष्ट्रवादी के रूप में उभरे जो सिद्धांत और रणनीति—दोनों को संतुलन में रखकर आगे बढ़ना चाहते थे (Davar, para 1)। निम्न सभी पक्षों के माध्यम से उनके राजनीतिक चिंतन की गहराई और विविधता को समझने का प्रयास किया गया है।

● **राष्ट्रवाद** - चित्तरंजन दास के अनुसार, राष्ट्रवाद एक ऐसी सृजनात्मक और गतिशील प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कोई भी राष्ट्र अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति करता है। यह अभिव्यक्ति किसी संकीर्ण संप्रभुता या अलगाववाद पर आधारित नहीं होती, बल्कि वह स्वयं को एक व्यापक और उदात्त विश्व-योजना का अंग मानते हुए सम्पन्न होती है। इस प्रक्रिया में राष्ट्र अपनी पहचान को केवल अपने भीतर खोजने का प्रयास नहीं करता, बल्कि वह अन्य राष्ट्रों की आत्म-अभिव्यक्ति और आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया में भी सक्रिय सहयोग करता है। उनके शब्दों में, "विविधता उतनी ही वास्तविक है जितनी एकता" और यही विविधता एकता की नींव बनती है। दास स्पष्ट करते हैं कि वे जिस राष्ट्रवाद की बात कर रहे हैं, उसे यूरोप के समकालीन राष्ट्रवाद से भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। यूरोपीय राष्ट्रवाद एक आक्रामक, संकीर्ण और स्वार्थपरक राष्ट्रवाद है, जो वाणिज्यिक लाभ-हानि के समीकरणों पर आधारित है। जैसे फ्रांस का लाभ जर्मनी की क्षति मानी जाती है और जर्मनी का लाभ फ्रांस की हानि। यह राष्ट्रवाद घृणा पर पनपता है—फ्रांसीसी राष्ट्रवाद जर्मनी से घृणा पर आधारित है और जर्मन राष्ट्रवाद फ्रांस से। इस विचारधारा में यह बोध नहीं है कि किसी एक राष्ट्र को चोट पहुंचाना, दरअसल सम्पूर्ण मानवता को आहत करना है। दास एक नए, समावेशी राष्ट्रवाद की बात करते हैं—ऐसे राष्ट्रवाद की, जो न केवल आत्म-अभिव्यक्ति की आकांक्षा रखता है, बल्कि मानवता की समष्टिगत चेतना से भी जुड़ना चाहता है। (Das 19-20)।

● **स्वराज** - चित्तरंजन दास का मानना था कि भारतीय राष्ट्र के समग्र और वास्तविक विकास की पूर्वशर्त उसकी राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ करना है। उनके अनुसार, भारत की स्वतंत्रता और प्रगति का मार्ग स्वराज की ओर ही जाता है। स्वराज को समझने के प्रयास में यह आवश्यक है कि हम इसे किसी सीमित, यांत्रिक या संकुचित शासन प्रणाली तक सीमित न करें। दास स्पष्ट करते हैं कि स्वराज और साम्राज्य के बीच एक मौलिक और स्वभावगत भिन्नता है। जहाँ साम्राज्य बाह्य नियंत्रण और अधीनता का प्रतीक है, वहीं स्वराज एक स्वतःस्फूर्त, स्वाभाविक और आत्मिक अभिव्यक्ति है, जो किसी राष्ट्र के सामूहिक मानस की गहन इच्छाओं, आकांक्षाओं और ऐतिहासिक चेतना को प्रतिबिंबित करती है। दास के अनुसार, स्वराज किसी बाहरी ढांचे का नाम नहीं, बल्कि उस जीवंत चेतना का प्रतीक है जो राष्ट्र के समस्त जीवन, इतिहास और सांस्कृतिक स्मृति से अनुप्राणित होती है। यह तब प्रारंभ होता है जब कोई राष्ट्र आत्मबोध के साथ अपने स्वतंत्र विकास की दिशा में संगठित प्रयास

करता है। यही कारण है कि वे स्वराज को 'राष्ट्रीय मन की अभिव्यक्ति' के रूप में परिभाषित करते हैं। इस दृष्टिकोण से स्वराज और राष्ट्रवाद परस्पर पूरक एवं पर्यायवाची बन जाते हैं। दास ने यह भी रेखांकित किया कि भारत के समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रश्न स्वराज की संकल्पना के चारों ओर केंद्रित हैं। स्वराज ही वह ध्रुवतारा है, जिसकी ओर भारत की समस्त आकांक्षाएँ उन्मुख हैं और जो उसकी स्वतंत्रता एवं प्रगति की दिशा निर्धारित करता है (Das, 22–23)। उनका यह भी स्पष्ट मत था कि "स्वराज का मेरा आदर्श तब तक संतुष्ट नहीं होगा, जब तक कि लोग इसे प्राप्त करने में हमारा सक्रिय सहयोग नहीं करते" (Das, 39)।

● **असहयोग** - चित्तरंजन दास के अनुसार, राष्ट्रीय दृष्टिकोण से असहयोग की विधि का अर्थ है—राष्ट्र की समस्त ऊर्जा को एकत्रित करते हुए अपनी आंतरिक शक्ति पर आधारित होना तथा आत्मनिर्भरता की दिशा में संगठित प्रयास करना। यह केवल एक राजनीतिक रणनीति नहीं, बल्कि राष्ट्र को आत्मबल और संगठन की शक्ति से सशक्त करने की प्रक्रिया है। इस माध्यम से राष्ट्र अपनी सामूहिक चेतना को जागृत करता है और अपने भविष्य को स्वयं गढ़ने की क्षमता विकसित करता है।

नैतिक परिप्रेक्ष्य से देखा जाए तो असहयोग, आत्म-शुद्धि की एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समाज उन प्रवृत्तियों, व्यवहारों और संस्थाओं से स्वयं को पृथक् करता है, जो राष्ट्र के नैतिक और सामाजिक विकास में बाधक हैं, और जिनका प्रभाव व्यापक मानवता के लिए भी विनाशकारी हो सकता है। यह मार्ग राष्ट्र को एक नैतिक पुनर्जागरण की ओर ले जाता है, जिससे वह अपने चरित्र की ऊँचाइयों तक पहुँचता है।

दास ने इस विचार को एक आध्यात्मिक आयाम भी प्रदान किया। उनके अनुसार स्वराज का आध्यात्मिक स्वरूप एक प्रकार के 'प्रतिहार' में निहित है—एक ऐसा अलगाव जो उन शक्तियों से दूरी बनाता है, जो राष्ट्र के स्वभाव, उसकी परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिकूल हैं। यह साधना के उस स्तर का संकेत है जिसमें राष्ट्र आत्म-मंथन के माध्यम से अपनी अंतर्निहित आत्मा की खोज करता है और उसे उसकी संपूर्ण महिमा के साथ अभिव्यक्त करता है। दास ने इस विषय को विस्तार से विश्लेषित न करने की बात करते हुए यह स्पष्ट किया कि हर दृष्टिकोण—राष्ट्रीय, नैतिक और आध्यात्मिक—से यही सिद्ध होता है कि अहिंसक असहयोग की विधि ही स्वराज प्राप्ति की सबसे सच्ची, प्रभावशाली और गरिमामयी राह है (Das, 23–24)।

● **अहिंसा** - चित्तरंजन दास का विश्वास था कि इतिहास की दृष्टि से हिंसा आधारित क्रांतियाँ कभी भी स्थायी और सार्थक रूप में परिणत नहीं होतीं। उन्होंने दो ठूक शब्दों में स्वीकार किया कि वे उन लोगों में से हैं, जिन्होंने अहिंसा को न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन का मार्ग बनाया, बल्कि उसे अपने राजनीतिक दर्शन का मूलधार भी माना। यद्यपि अहिंसा का मूल्य नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से निर्विवाद है, दास ने यह भी आग्रह किया कि इसके समीचीनता के पक्ष पर विचार करना समय की माँग है। उनका प्रश्न था—क्या हिंसात्मक उपायों से स्वराज प्राप्त किया जा सकता है? और उनका उत्तर था—इतिहास स्वयं इस प्रश्न का स्पष्ट और निर्णायक उत्तर देता है: "बिल्कुल नहीं" (Das, 24–25)। दास ने यह मत प्रकट किया कि विश्व के इतिहास में जितनी भी महान क्रांतियाँ हुई हैं, उनमें से कोई भी हिंसा के मार्ग से स्थायी स्वतंत्रता सुनिश्चित नहीं कर सकी। उन्होंने बल दिया कि भारत जैसे विविधतापूर्ण और सांस्कृतिक रूप से परिपक्व देश में, स्वतंत्रता केवल अहिंसा और आत्म-शुद्धि के मार्ग से ही संभव है। इस संदर्भ में उन्होंने विशेष रूप से स्पष्ट किया कि भारत में स्वतंत्रता प्राप्त करने का एकमात्र प्रभावी और नैतिक साधन अहिंसक असहयोग की पद्धति है (Das, 29)। यह दृष्टिकोण न केवल उनके राजनीतिक आदर्शों का परिचायक था, बल्कि गांधीवादी रणनीति के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का भी प्रमाण था।

● **सरकार का स्वरूप** - चित्तरंजन दास का मानना था कि वास्तविक स्वराज की प्राप्ति तभी संभव है जब शासन की शक्ति स्थानीय केन्द्रों में निहित हो। उनके अनुसार स्वराज का अर्थ केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं, बल्कि शासन व्यवस्था में व्यापक भागीदारी और विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत पर आधारित संरचना से है। उन्होंने सुझाव दिया कि कांग्रेस को एक ऐसी समिति का गठन करना चाहिए, जो शासन की एक समग्र योजना तैयार करे — एक ऐसी योजना जो सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए स्वीकार्य और व्यावहारिक हो (Das, 40)। दास के अनुसार, "वास्तविक लोकतंत्र की नींव छोटे केंद्रों में रखी जानी चाहिए — क्रमिक विकेंद्रीकरण नहीं, जिसका तात्पर्य पहले से केंद्रीकृत होना है — बल्कि व्यावहारिक रूप से स्वायत्त छोटे केंद्रों का

क्रमिक एकीकरण एक जीवंत सामंजस्यपूर्ण समग्रता में होना चाहिए" (Das, 41)। इस दृष्टिकोण में सत्ता की अवधारणा नीचे से ऊपर की ओर निर्मित होती है, न कि ऊपर से थोपी जाती है। उन्होंने शासन व्यवस्था की पुनर्रचना हेतु कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रस्तुत किए, जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है (Das, 47):

1. भारत की प्राचीन ग्राम व्यवस्था के अनुरूप स्थानीय केंद्रों की स्थापना।
2. इन ग्राम केंद्रों के एकीकरण से क्षेत्रीय स्तर पर बड़े समूहों का विकास।
3. राज्य का एकीकृत रूप इन छोटे केंद्रों की स्वाभाविक और क्रमिक वृद्धि का परिणाम होना चाहिए।
4. ग्राम और क्षेत्रीय स्तर पर केंद्रों को व्यावहारिक रूप से स्वायत्त बनाया जाना चाहिए।
5. नियंत्रण की अवशिष्ट शक्ति यद्यपि केंद्र सरकार के पास हो, किंतु उसका प्रयोग अपवादस्वरूप और पूर्ण सावधानी के साथ किया जाए, जिससे स्थानीय स्वायत्तता बाधित न हो।

दास के अनुसार, ऐसी केंद्र सरकार का कार्य मुख्यतः मार्गदर्शन और सलाह देना होना चाहिए, न कि निरंकुश नियंत्रण स्थापित करना। यह दृष्टिकोण शासन की एक ऐसी लोकतांत्रिक कल्पना प्रस्तुत करता है, जिसमें सत्ता का स्रोत जनता होती है और शासन की संरचना स्थानीय आत्मनिर्भरता पर आधारित होती है। उनके विचारों में भारतीय लोकतंत्र की संभावित संरचना के स्वरूप का गहरा दार्शनिक और व्यावहारिक आधार निहित है।

● **परिषदों का बहिष्कार** - चित्तरंजन दास ने स्पष्ट किया कि परिषदों के बहिष्कार और असहयोग की रणनीति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा स्वीकृत मूलभूत सिद्धांतों के अनुरूप ही थी। उनका कहना था कि "यह असहयोग के किसी भी सिद्धांत का उल्लंघन नहीं करता है जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपनाया और लागू किया है। हमने अब तक नौकरशाही के साथ असहयोग नहीं किया है? हम केवल इस देश के लोगों को असहयोग करने के लिए तैयार कर रहे हैं" (Das, 51-52)। दास असहयोग आंदोलन की द्वैतीय प्रवृत्ति — 'विनाश' और 'सृजन' — को समान रूप से महत्व देते थे। उन्होंने उदाहरण देते हुए बताया कि वकीलों और अदालतों के बहिष्कार से वर्तमान न्यायिक ढांचे का विनाश होता है, जबकि पंचायतों की स्थापना एक रचनात्मक विकल्प प्रदान करती है। उसी प्रकार, स्कूलों और कॉलेजों का बहिष्कार शिक्षा व्यवस्था को अस्वीकार करता है, किंतु राष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना से एक नई शिक्षा प्रणाली का सृजन होता है। विदेशी वस्त्रों को जलाने का कार्य विनाशकारी था, तो वहीं चरखा और करघे के माध्यम से स्वदेशी वस्त्र उत्पादन की प्रक्रिया रचनात्मक थी। इसी तर्क के आलोक में दास ने परिषदों के बहिष्कार को भी देखा — यह केवल विरोध नहीं, बल्कि उनकी ऐसी संस्थाओं में रूपांतरण की आकांक्षा भी थी जो स्वराज की दिशा में सक्रिय भूमिका निभा सकें। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि यदि जनता की मांगें स्वीकार नहीं की जातीं, तो परिषद के भीतर हर कार्य का संगठित विरोध आवश्यक है। इसके अंतर्गत "हमें पूरे बजट को अस्वीकार करना चाहिए, हर विधेयक को नकारना चाहिए, और हर संभव अवसर पर सदन को स्थगित करने का प्रस्ताव रखना चाहिए" (Das, 62)। इस प्रकार, दास की दृष्टि में असहयोग केवल प्रतिरोध की रणनीति नहीं थी, बल्कि एक व्यापक रचनात्मक प्रक्रिया भी थी, जिसके माध्यम से स्वराज की कल्पना को मूर्त रूप दिया जा सकता था।

● **श्रम संगठन के बारे में** - चित्तरंजन दास का मानना था कि मजदूरों और किसानों की भागीदारी कांग्रेस के ढांचे के भीतर ही सुनिश्चित की जानी चाहिए। वे इस विचार के पक्षधर नहीं थे कि इन वर्गों के लिए कोई पृथक संगठन बनाया जाए, क्योंकि इससे राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया बाधित हो सकती थी। दास के अनुसार, "मजदूर एवं किसान कांग्रेस समितियों के सदस्य हो सकते हैं, लेकिन उनका कोई अलग संगठन नहीं होना चाहिए" (Das, 67)। उनकी दृष्टि में यह आवश्यक था कि कांग्रेस स्वयं किसानों और श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए सक्रिय भूमिका निभाए। अतः उन्होंने यह स्पष्ट सुझाव दिया कि कांग्रेस को तत्काल प्रभाव से एक शांतिपूर्ण, व्यावहारिक और कार्यक्षम समिति नियुक्त करनी चाहिए, जो देश के मजदूरों और किसानों को संगठित करने की दिशा में ठोस प्रयास कर सके (Das, 68)। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि दास वर्ग-संघर्ष की राजनीति के स्थान पर समावेशी संगठनात्मक रणनीति को अधिक महत्व देते थे।

● **स्कूलों और कॉलेजों का बहिष्कार** - चित्तरंजन दास का स्पष्ट मत था कि ब्रिटिश-प्रायोजित शिक्षण संस्थानों का बहिष्कार राष्ट्रीय आंदोलन की रणनीति का एक प्रभावशाली आयाम है, जिसे पूर्ववत् ही प्रभावी ढंग से जारी रखा जाना चाहिए। उन्होंने

असहमत होते हुए कहा कि वे सविनय अवज्ञा जांच समिति की उस सिफारिश से सहमत नहीं हैं जिसमें औपनिवेशिक विद्यालयों और महाविद्यालयों से छात्रों को निकालने के प्रस्ताव को छोड़ दिया गया है। दास के अनुसार, यह कदम राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में शिथिलता लाने वाला है। हालाँकि, उन्होंने यह स्वीकार किया कि इस बहिष्कार की रणनीति को सार्थक और टिकाऊ बनाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों की स्थापना अत्यंत आवश्यक है। वे जांच समिति की इस सिफारिश से सहमत थे कि समांतर रूप से राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की जानी चाहिए ताकि युवा पीढ़ी को स्वदेशी मूल्यों, राष्ट्रीय आत्मगौरव और स्वतंत्रता संग्राम की चेतना से युक्त शिक्षा प्रदान की जा सके (Das 70)।

● **हिंदू-मुस्लिम एकता** - चित्तरंजन दास का दृढ़ विश्वास था कि भारत की राष्ट्रीय एकता तभी स्थायी रूप ले सकती है जब समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों के अधिकारों को समान रूप से स्वीकारा जाए और उनके साथ उचित व्यवहार किया जाए। उनके अनुसार, “भारत के विभिन्न वर्गों की एकता तभी संभव है जब प्रत्येक वर्ग एक-दूसरे के अधिकारों को सहयोग और सम्मान के साथ स्वीकार करे।” इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने विभिन्न वर्गों और समुदायों के मध्य आपसी समझौते की आवश्यकता पर बल दिया। दास ने विशेष रूप से अछूत कहे जाने वाले वर्गों के प्रति समाज के व्यवहार की आलोचना की। उनका मानना था कि यदि हम इन वर्गों के प्रति श्रेष्ठता की भावना रखते हुए व्यवहार करेंगे, तो उनके कल्याण का कोई सार्थक परिणाम नहीं निकलेगा। उन्होंने सुझाव दिया कि इन वर्गों को समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित करते हुए उन्हें राष्ट्रनिर्माण के कार्यों में भागीदार बनाया जाना चाहिए। उनके शब्दों में—“हमें उन्हें हमारे सामने मौजूद कार्य में सम्मिलित करना चाहिए और उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करना चाहिए” (Das 71)।

● **खादी** - चित्तरंजन दास खादी के व्यावसायिक या औद्योगिक उत्पादन के पक्षधर नहीं थे। उनका स्पष्ट मत था कि खादी का उद्देश्य आत्मनिर्भरता की भावना को प्रोत्साहित करना होना चाहिए, न कि केवल उत्पादन की मात्रा बढ़ाना। उनका मानना था—“मैं यह अधिक पसंद करूंगा कि कुछ परिवार आत्मनिर्भर हों, बजाय इसके कि बड़े पैमाने पर कारखाने स्थापित किए जाएं।” उन्होंने खादी को स्वराज का साधन मानने की धारणा पर प्रश्न उठाते हुए कहा, “अक्सर यह कहा जाता है कि खदर ही हमें स्वराज दिलाएगा। मैं अपने देशवासियों से पूछता हूँ कि खदर किस प्रकार हमें स्वराज की ओर ले जा सकता है?” दास के अनुसार, यह कथन केवल उसी स्थिति में सत्य हो सकता है जब खादी को स्वराज का प्रतीक माना जाए। जैसे खादी भारतीय जनजीवन के एक महत्वपूर्ण पक्ष—वस्त्र निर्माण—में आत्मनिर्भरता की भावना जगाती है, उसी प्रकार इसकी प्रेरणा राष्ट्रीय जीवन के समग्र क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता की चेतना उत्पन्न करे, तभी यह प्रतीक अर्थपूर्ण होगा। उनके विचार में, खादी की यह प्रतीकात्मक शक्ति तभी प्रभावी हो सकती है जब असहयोग की समस्त गतिविधियाँ हर दिशा में सशक्त रूप से फैलाई जाएँ। दास का विश्वास था कि केवल प्रतीक पूजन नहीं, बल्कि व्यापक और समन्वित राष्ट्रीय प्रयासों के माध्यम से ही स्वराज की शीघ्र प्राप्ति संभव है (Das 71-73)।

● **अहिंसा बनाम हिंसा**: स्वतंत्रता का साधन - चित्तरंजन दास का दृढ़ विश्वास था कि स्वतंत्रता की प्राप्ति का मार्ग केवल नैतिक और अहिंसक साधनों से ही संभव है। उनका यह दृष्टिकोण न केवल गांधीवादी दर्शन से सामंजस्य रखता था, बल्कि एक सुसंगत ऐतिहासिक चेतना पर भी आधारित था। उनके अनुसार, इतिहास ने बार-बार यह प्रमाणित किया है कि बल और हिंसा के माध्यम से प्राप्त की गई स्वतंत्रता न तो स्थायी होती है और न ही नैतिक दृष्टि से वैध। दास मानते थे कि जो व्यक्ति अथवा समूह हिंसक तरीकों से सत्ता प्राप्त करता है, वह अंततः उसी हिंसा का शिकार हो जाता है। हिंसा सत्ता के प्रति एक प्रकार का आसक्ति भाव उत्पन्न करती है, जिससे स्वयं को मुक्त कर पाना कठिन हो जाता है। सत्ता पर अधिकार जमाने के बाद हिंसक साधनों से आई शक्ति में नैतिक नियंत्रण का अभाव होता है, जिसके कारण वह सत्ता जनहित की अपेक्षा व्यक्तिगत या वर्गीय हितों के लिए प्रयुक्त होने लगती है। इसके विपरीत, अहिंसा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें साध्य और साधन के बीच कोई विरोध नहीं होता। दास के अनुसार, अहिंसा अपने साथ उस नैतिक चेतना को लेकर आती है जो किसी भी राष्ट्र को दीर्घकालिक और न्यायसंगत स्वतंत्रता की ओर ले जाती है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि अहिंसा के मार्ग में वह पतन नहीं है जो हिंसा में स्वाभाविक रूप से निहित होता है। इस प्रकार, चित्तरंजन दास के राजनीतिक विचारों में अहिंसा केवल एक रणनीतिक विकल्प

नहीं, बल्कि एक मूलभूत नैतिक और राजनीतिक सिद्धांत था। वे मानते थे कि स्वतंत्रता का कोई भी प्रयत्न, यदि वह स्थायी और न्यायपूर्ण होना चाहता है, तो उसे अहिंसा के सिद्धांत पर ही आधारित होना चाहिए। (Roy para 16)

निष्कर्ष - चित्तरंजन दास भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उन विशिष्ट नेताओं में से थे, जिनकी राजनीतिक विचारधारा ने न केवल तत्कालीन आंदोलन को दिशा दी, बल्कि आधुनिक भारतीय लोकतंत्र की नींव को भी वैचारिक आधार प्रदान किया। उनका राजनीतिक चिंतन गांधीवादी अहिंसा से प्रेरित होते हुए भी स्वतंत्र और व्यावहारिक दृष्टिकोण से युक्त था। उन्होंने संविधानवाद, परिषद-प्रवेश, राष्ट्र निर्माण, अल्पसंख्यकों के अधिकार, पंचायत व्यवस्था और विकेंद्रीकरण जैसे मुद्दों पर जो विचार प्रस्तुत किए, वे उनके दूरदर्शी और समन्वयवादी राजनीतिक दर्शन के प्रमाण हैं। दास मानते थे कि स्वराज केवल राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरण नहीं, बल्कि राष्ट्र की आत्मा की अभिव्यक्ति है। वे स्वराज को नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास से जोड़ते थे। उन्होंने बार-बार यह प्रतिपादित किया कि हिंसा के मार्ग से स्थायी स्वतंत्रता संभव नहीं है, और केवल अहिंसक असहयोग ही भारत को सच्चे स्वराज की ओर ले जा सकता है। वहीं दूसरी ओर, उन्होंने संवैधानिक राजनीति के माध्यम से भी राष्ट्रीय उद्देश्यों को साधने की आवश्यकता को रेखांकित किया। उनकी यह विशेषता रही कि उन्होंने संगठनात्मक कौशल, वैचारिक दृढ़ता और व्यावहारिकता का अद्भुत संतुलन प्रस्तुत किया। स्वराज पार्टी की स्थापना और काउंसिल के मंच का रचनात्मक उपयोग इसका प्रमाण हैं। चित्तरंजन दास का राजनीतिक दर्शन आज भी उस समावेशी, लोकतांत्रिक और नैतिक राजनीति की प्रेरणा देता है जिसकी आज़ाद भारत को निरंतर आवश्यकता है। इस प्रकार, दास केवल एक राजनीतिक रणनीतिकार नहीं, बल्कि एक विचारशील राष्ट्रनिर्माता थे, जिनकी दृष्टि आज भी भारतीय राजनीतिक चेतना को दिशा देने में सक्षम है।

संदर्भ सूची

- Das, Chittaranjan, India for Indians, The Cambridge Press, Madras, 1921
- Ray, Prithwis Chandra, Life and Times of C.R.Das, Oxford University Press, 1927
- Sarkar, Sumit, Aadhunik Bharat (1885-1947), Rajkamal Prakashan, New Delhi, 1973
- Davar, Praveen, Chittaranjan Das: ‘Apostle of Nationalism’, Indian National Congress, 2 june, 2024. Accessed on -3 June, 2025. <https://inc.in/congress-sandesh/tribute/chittaranjan-das-apostle-of-nationalism>
- Roy, Evelyn ,The Metamorphosis of Mr C. Das, Labour Monthly, Vol. 4, June 1923, No. 6, pp. 363-376. Accessed on 3 June,2025. <https://www.marxists.org/archive/roy-evelyn/1923/06/x01.htm>

भिक्षावृत्ति : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

दिनेश कुमार*
प्रो. रमोद कुमार मौर्य**

सारांश

भिक्षावृत्ति, जिसे किसी व्यक्ति द्वारा अन्य लोगों से खाने या पैसे की माँग करने की क्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है, समाज में अक्सर देखी जाती है। यह सवाल उठता है कि क्या लोग विवशता के कारण भिक्षावृत्ति करते हैं या वे साजिश का शिकार हैं। दिल्ली हाई कोर्ट ने भिक्षावृत्ति को अपराध मानने वाले बाम्बे प्रिवेंशन ऑफ बेगिंग एक्ट, 1959 की 25 धाराएँ समाप्त करने का आदेश दिया, यह मानते हुए कि भिखारियों के मौलिक अधिकारों का संरक्षण आवश्यक है। भारत में भिक्षावृत्ति के लिए कोई केंद्रीय कानून नहीं है और केवल महाराष्ट्र में भिक्षावृत्ति से संबंधित एक कानून मौजूद है। भिक्षावृत्ति का इतिहास ऋग्वैदिक काल तक जाता है, जहाँ इसे पवित्र माना जाता था, लेकिन समय के साथ इसका स्वरूप बदल गया है। आज कुछ लोग मजबूरी में भिक्षावृत्ति करते हैं, जबकि अन्य इसे व्यवसाय के रूप में अपनाते हैं।

मुख्य शब्द— भिक्षावृत्ति, समाज, निर्धनता, भुखमरी, प्रशासन, मानवाधिकारों, पुनर्वास, आजीविका।

प्रस्तावना :—

किसी व्यक्ति को दो वक्त की रोटी के लिए अन्य लोगों के आगे हाथ फैलाना या अपनी आजीविका के लिए किसी दूसरे व्यक्ति से खाने के लिए कोई वस्तु या नकद माँगना भिक्षावृत्ति कहलाता है। भिक्षावृत्ति के ऐसे उदाहरण सार्वजनिक स्थलों, धार्मिक स्थलों, ट्रेन में, बस में, सड़क किनारे या चौराहों पर अक्सर देखे जाते हैं। समाज में ऐसी दशा देखकर मन में यह प्रश्न उठता है कि भिक्षा माँग रहे लोग क्या अपनी विवशता के कारण भिक्षावृत्ति करते हैं या फिर ये किसी साजिश के शिकार हैं और जबरदस्ती इनसे भिक्षावृत्ति कराया जाता है। अपने समाज में इसका पता लगाने के लिए अभी तक कोई बेहतर तन्त्र नहीं बन पाया है। अभी हाल ही में दिल्ली हाई कोर्ट ने भिक्षावृत्ति को अपराध मानने वाला कानून बाम्बे प्रिवेंशन ऑफ बेगिंग एक्ट, 1959 की 25 धाराओं को समाप्त करने का आदेश दिया है। हाई कोर्ट ने यह आदेश इसलिए दिया है क्योंकि भिखारियों के मौलिक अधिकारों और उनके आधारभूत मानवाधिकारों की रक्षा के लिए दायर दो जनहित याचिकाओं की सुनवाई करने के दौरान दिया।

यहाँ एक बात ध्यान देने वाली है कि देश में अभी तक भिक्षावृत्ति के सन्दर्भ में भी कोई केन्द्रीय कानून नहीं है जिसका प्रयोग करके समाज से भिक्षावृत्ति को कम किया जा सके। भारत में सिर्फ एक ही राज्य है और वह राज्य महाराष्ट्र है जहाँ पर भिक्षावृत्ति से सम्बन्धित एक एक्ट बना है जो बाम्बे प्रिवेंशन ऑफ बेगिंग एक्ट, 1959 के नाम से जाना जाता है तथा इसी को आधार मानकर 20 राज्यों और 2 केन्द्र शासित राज्यों (दिल्ली और दमन व दीव) ने अपने यहाँ भिक्षावृत्ति से सम्बन्धित कानून बनाये हैं।

यदि भारत में भिक्षावृत्ति के इतिहास की चर्चा करें तो इसका अतीत काफी लम्बा दिखाई देता है। वैसे भारत में भिक्षावृत्ति ऋग्वैदिक काल से ही दिखाई देता है। उस समय भिक्षावृत्ति का भाव परम पवित्र था। उस समय यह प्रचलन में था कि लोग गुरुकुल में रह कर शिक्षा प्राप्त करते थे और उसके बदले में आज की तरह फीस देने की प्रथा प्रचलित नहीं थी बल्कि गुरुकुल में रह कर ही भिक्षा माँगकर अपने गुरु की सेवा करते थे तथा प्रत्येक गृहस्थ का परम कर्तव्य था कि ऐसे भिक्षु जो उनके यहाँ भिक्षा माँगने आये उनको भिक्षा दें। यह प्रावधान इसलिए था कि ताकि उस समय समाज में यह प्रथा प्रचलित थी कि समाज में सभी वर्गों के लोग चाहे वे अमीर हो या गरीब, उच्च जाति के हो या निम्न जाति के हो गुरुकुल में जाते समय अपने घर से कुछ नहीं ले जायेंगे तथा सभी लोग भिक्षा माँग कर ही गुरु की सेवा करेंगे।

* शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, औराई, भदोही, उ०प्र० संबद्ध महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

** प्रोफेसर (शोध निर्देशक), समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, औराई, भदोही (उ०प्र०)

उस समय यदि समाज में यह प्रथा प्रचलित होती कि लोग शिक्षा प्राप्त करने के लिये जब गुरुकुल जाते समय अपने घर से सामान ले जाते तो ऐसी स्थिति में समाज में जो उच्च वर्ग है या सम्पन्न वर्ग है अपने साथ ढेर सारा सामान ले जाते और गुरु को भेंट करता जिससे वह उस पर प्रसन्न होता तथा वहीं समाज का निम्न वर्ग या गरीब वर्ग है अपने साथ कुछ नहीं ले जा पाता तो उसके अन्दर हीन भावना पैदा होती एवं उनके साथ गुरुकुल में भेदभाव होने की सम्भावना बढ़ जाती। ऐसी स्थिति में समाज में अमीर और गरीब वर्ग एक प्रकार की खाई बहुत ज्यादा गहरी होती। इसीलिए तत्कालीन समाज में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते समय अपने साथ कुछ नहीं ले जाना पड़ता है ताकि सभी शिष्य गुरु की नजर में एक समान बने रहें। लेकिन धीरे-धीरे भिक्षा माँगने की प्रवृत्ति बदल गयी। आज कुछ लोग ऐसे हैं जो मजबूरी में भिक्षावृत्ति करते हैं लेकिन वहीं कुछ लोग ऐसे हैं जो भिक्षावृत्ति को एक व्यवसाय के रूप में अपनाये हुए हैं तथा कुछ गिरोह ऐसे भी सक्रीय हैं जो दूसरे लोगों से जबरदस्ती भिक्षावृत्ति करवाते हैं।

भारत में भिक्षावृत्ति के स्वरूप एवं कारण :-

सामान्य तौर पर भिक्षावृत्ति को दो भागों में बाँटा जा सकता है – ऐच्छिक भिक्षावृत्ति एवं अनैच्छिक भिक्षावृत्ति। ऐच्छिक भिक्षावृत्ति के अन्तर्गत समाज में बहुत से ऐसे लोग हैं जो आलस्य, प्रयास करने के बावजूद भी काम का न मिलना, काम न करने की इच्छा आदि की वजह से भिक्षावृत्ति का काम करते हैं। अनैच्छिक भिक्षावृत्ति के अन्तर्गत समाज में कभी-कभी ऐसा भी देखने को मिल जाता है कि भीख माँगने वाले सभी लोग इसे ऐच्छिक रूप से नहीं अपनाते हैं बल्कि मजबूरी में भिक्षावृत्ति को अपनाते हैं।

सामान्यतः निर्धनता तथा आय की असमानताओं के चलते देश में एक ऐसा भी वर्ग है जिसे आधारभूत सुविधायें जैसे – रोटी, कपड़ा और मकान आसानी से नहीं प्राप्त हो पाती हैं और यह वर्ग मजबूर होकर भिक्षावृत्ति करते हैं।

कई बार ऐसा भी देखने को मिल जाता है कि लोगो की गरीबी और भुखमरी का फायदा कुछ गिरोह उठाते हैं और ऐसे गिरोह संगठित रूप से भिक्षावृत्ति का रैकेट चलाते हैं। ऐसे गिरोह गरीब व्यक्तियों की मजबूरी का फायदा उठाते हैं तथा उनको लालच देकर, डरा धमका कर, नशीले पदार्थ देकर तथा मानव तस्करी के द्वारा लाये गये लोगो को शारीरिक रूप से अपंग बनाकर भीख माँगने पर मजबूर करते हैं।

बाम्बे प्रिवेंशन ऑफ बेगिंग एक्ट, 1959 के प्रमुख प्रावधान :-

इस अधिनियम के द्वारा भिक्षावृत्ति को ही अपराध घोषित किया गया है तथा इसके साथ ही पुलिस प्रशासन को यह अधिकार भी देता है कि वह भीख माँगने वाले व्यक्ति को पकड़कर किसी पंजीकृत संस्था में भेज सके। इस अधिनियम में भिक्षावृत्ति को परिभाषित करने का प्रयास भी किया गया है जिसमें कहा गया है कि भिक्षावृत्ति के अन्तर्गत ऐसे व्यक्तियों को शामिल किया जाता है जो गाना गाकर, नृत्य करके, भविष्य बताकर, कोई चोट, घाव दिखाकर, बीमारी बताकर लोगो की सहानुभूति प्राप्त करता है और भीख माँगता है। इसके अलावा सार्वजनिक स्थानों पर इधर-उधर भीख माँगने के लिए घूमना-फिरना भी भिक्षावृत्ति के अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

इस कानून के तहत भिक्षावृत्ति करने वाले लोगो के लिए सजा का भी प्रावधान किया गया है और इसके अन्तर्गत भीख माँगते हुए पकड़े जाने पर पहली बार में तीन साल के लिए सजा का प्रावधान है तथा दूसरी बार पकड़े जाने पर 10 वर्ष तक के लिए व्यक्ति को सजा के तौर पर किसी पंजीकृत संस्था में भेजे जाने का प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही भिक्षावृत्ति में पकड़े गये व्यक्ति के आश्रितों विशेषकर बच्चों को भी उसी पंजीकृत संस्था में भेजा जाता है जिसमें उस व्यक्ति को भेजा गया है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत यह बात भी ध्यान देने वाली है कि इन संस्थाओं को भी अनेक प्रकार की शक्तियाँ भी प्रदान की गयी हैं, जैसे – संस्था में लाये गये व्यक्ति को सजा देना, कार्य करवाना आदि। इस संस्था में लाये गये व्यक्तियों के द्वारा यदि नियमों का पालन नहीं किया जाता है तो ऐसे व्यक्ति को जेल भी भेजा जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस अधिनियम में जहाँ एक ओर व्यक्ति को सुधरने का मौका दिया जाता है वहीं दूसरी ओर उन्हें दण्डित भी किया जाता है।

प्रशासन ने इस अधिनियम का प्रयोग सार्वजनिक स्थानों से भिखारियों को हटाने के लिए करना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिए 2010 के कॉमनवेल्थ खेलों का आयोजन दिल्ली में किया गया था और उस समय वहाँ से भिखारियों को बाहर निकालने के लिए इस अधिनियम का बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया। यहाँ एक समस्या यह थी कि दण्डात्मक प्रावधानों के तहत जब भिखारियों को पकड़ा तो जाता है इसके तहत उन्हें या तो दिल्ली से बाहर निकाल दिया जाता था या फिर उन्हें जेल में डाल दिया जाता था लेकिन उनके पुनर्वास के लिए सरकार के द्वारा कोई आवश्यक कदम नहीं उठाये जाते हैं।

मौजूदा अधिनियम की समस्याएँ हैं तथा किस प्रकार यह मौलिक अधिकारों और मानवीय मूल्यों से असंगत है?:-

इस अधिनियम की पहली समस्या भिक्षावृत्ति की परिभाषा को लेकर है। यह सर्वविदित है कि गायन, नृत्य, भविष्य बताकर आजीविका कमाना कुछ लोगों के लिए व्यवसाय है जबकि ऐसे लोगों को केवल अपने करतब दिखाकर आय अर्जित करने को अपराधिक क्रिया मान लेना किसी भी प्रकार से उचित नहीं ठहराया जा सकता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जब व्यक्ति के प्रयास करने के बावजूद रोजगार नहीं मिलता है और वह बेरोजगार ही रहता है। ऐसी स्थिति में आजीविका का कोई साधन उपलब्ध न होने पर सार्वजनिक स्थानों पर भीख माँगने के उद्देश्य से घूमने को अपराधिक क्रिया मान लेना किसी भी व्यक्ति को गरीब दिखने के कारण दण्डित किये जाने के समान है। जबकि इस प्रकार का कानून 19वीं शताब्दी में यूरोप में स्थापित 'पुअर हाउसेज' की विचारधारा को अपनाता है। यूरोप में इन पुअर हाउसेज में केवल उन्हीं लोगों को रखा जाता है जो सामाजिक और आर्थिक रूप से गरीब और लाचार लोग हैं।

किसी गरीब और मजबूर व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी स्थान पर ले जाकर रखना और सार्वजनिक स्थान पर जाने से रोकना उस व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का हनन ही तो है। जबकि भारतीय संविधान का अनुच्छेद 14 के तहत समानता का अधिकार दिया गया है, इस अनुच्छेद में यह उल्लेख किया गया है कि भारत के राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत समस्त नागरिकों को विधि के समक्ष समानता प्राप्त है या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जा सकता है और अनुच्छेद 19 के तहत स्वतन्त्रता का अधिकार देता है तथा भारत के समस्त नागरिकों को वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भी भाग में निर्बाध घूमने और जाने या निवास करने का अधिकार देता है।

इसके अलावा भारतीय संविधान के प्रस्तावना में मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के तहत भारत को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्वीकार किया गया है। ऐसे में एक कल्याणकारी राज्य का दायित्व यह होना चाहिए कि वह अपने नागरिकों की समस्त मूलभूत आवश्यकताओं भोजन, कपड़ा, आवास, रोजगार जैसी जरूरतों को पूरा कर उन्हें सामाजिक सुरक्षा प्रदान करें।

इन्हीं सब तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर ही दिल्ली हाई कोर्ट ने अपना प्रसिद्ध निर्णय दिया है। साथ ही हाई कोर्ट ने यह भी निर्णय दिया है कि भिक्षावृत्ति का व्यवस्थित रैकेट चलाने वाले गिरोहों के खिलाफ कठोर कदम उठाने के लिए सरकार कोई भी कानून बना सकती है। हाई कोर्ट के द्वारा इस प्रकार की कार्यवाही पर किसी भी प्रकार की कोई रोक नहीं लगाई गयी है।

भिक्षावृत्ति से निपटने के लिए संभावित उपाय :-

हाई कोर्ट ने यह भी कहा है कि सबसे पहले ऐच्छिक भिक्षावृत्ति और मजबूरी वश अपनायी गयी भिक्षावृत्ति में अन्तर किया जाना आवश्यक है। साथ ही इन दोनों से निपटने के लिए अलग-अलग रणनीति बनाये जाने की आवश्यकता है। इसके लिए वास्तविक स्थिति का पता व्यापक सर्वेक्षण के जरिये लगाया जा सकता है।

इस सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों के सामाजिक आर्थिक विश्लेषण के आधार पर एक केन्द्रीय कानून बनाया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में 2016 में केन्द्र सरकार ने पहला प्रयास 'द परसंस इन डेस्टीट्युशन (प्रोटेक्शन, केयर, रीहैबिलिटेशन) मॉडेल बिल, 2016 लाकर किया था। लेकिन 2016 के बाद से इस पर चर्चा बन्द हो चुकी है। इस पर फिर से काम किये जाने की आवश्यकता है।

भिक्षावृत्ति को रोकने के लिए सरकार के द्वारा सख्त कानून बनाया जाय लेकिन कानून बनाते समय यह भी प्रयास किया जाना चाहिए कि ऐसे कानून न बनाया जाय जो भिक्षावृत्ति करने वाले व्यक्ति को अपराधी घोषित करें।

प्रशासन के द्वारा पकड़े गये भिक्षावृत्ति करने वाले व्यक्ति को किसी प्रशिक्षण केन्द्र में भेजा जाय और उन्हें किसी विशेष व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाय तत्पश्चात् सरकार की यह जिम्मेदारी रहे कि ऐसे लोगो को ब्याज रहित कुछ राशि प्रदान की जाय ताकि वह अपना व्यवसाय कर सके और आत्मनिर्भर बन सके।

इसके अलावा गरीबी, बेरोजगारी, भूखमरी जैसी समस्याओं से निपटने के लिए मजबूर लोगो तक मौलिक सुविधाओं की पहुँच सुनिश्चित की जानी चाहिए ताकि उन लोगो को भीख माँगने जैसे पेशे में जाने से रोका जा सके। इसके लिए जो व्यक्ति इस प्रकार की समस्याओं से ग्रसित है उनकी सही पहचान करना और ऐसे लोगो तक सेवाओं की उचित आपूर्ति करना आवश्यक है।

दूसरी ओर ऐसी भी समस्यायें हैं जो बीमारी से सम्बन्धित है। समाज में बहुत से लोग ऐसे हैं जो गम्भीर बिमारी से पीड़ित, अपंगता से ग्रसित और छोटी उम्र के बच्चे जो भिक्षावृत्ति को अपना चुके हैं, उनके लिए व्यापक स्तर पर पुनर्वास किये जाने की जरूरत है। इसके लिए यह प्रयास किया जाना चाहिए कि जिन लोगो को भिक्षावृत्ति करते हुए पकड़ा जाय उनके लिए पुनर्वास गृहों की स्थापना करके उनमें आवश्यक चिकित्सीय सुविधायें उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

इसके साथ ही भिक्षावृत्ति के अन्तर्गत पकड़े गये लोगो की मौलिक जरूरतों को पूरा करते हुए उन्हें कौशल प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इससे वे अपनी आजीविका स्वयं अर्जित करते हुए आत्म निर्भर बन सकते हैं, तभी वे भविष्य में समाज की मुख्य धारा का हिस्सा बन सकते हैं। इस सम्बन्ध में बिहार जैसे पिछड़े राज्य में चलने वाली मुख्यमन्त्री भिक्षावृत्ति निवारण योजना का सन्दर्भ लिया जा सकता है। इस योजना के तहत भिक्षावृत्ति करते हुए लोगो को गिरफ्तार करने के स्थान पर उन्हें 'ओपन हाउस' में भेजकर उनके पुनर्वास की उचित व्यवस्था किये जाने का प्रावधान है।

जहाँ तक बात संगठित तौर पर चलने वाले भिक्षावृत्ति रैकेटों की है तो इनको मानवता के आधार पर मानव तस्करी एवं अपहरण जैसे अपराधों के साथ जोड़ कर देखा जाना चाहिए। दूर दराज के इलाकों से जिन लोगो को खरीदकर या अपहरण करके लाया जाता है और उन्हें भिक्षावृत्ति में लगाया जाता है, उन्हें अपराध की श्रेणी में शामिल किया जाना अति आवश्यक है। इसलिए इससे निपटने के लिए राज्यों के बीच सूचनायें साझा करने हेतु एक तन्त्र के विकास की भी आवश्यकता है जो सम्मिलित रूप से इस प्रकार की समस्या से आसानी से निपट सकें।

निष्कर्ष :-

बाम्बे प्रिवेंशन ऑफ बेगिंग एक्ट, 1959 द्वारा भिक्षावृत्ति को अपराध घोषित किया गया है, इस अधिनियम के तहत भिक्षावृत्ति को अपराध घोषित किया गया है, और पुलिस को भीख माँगने वालों को पकड़कर पंजीकृत संस्थाओं में भेजने का अधिकार दिया गया है। इसके तहत भिक्षावृत्ति की परिभाषा में उन व्यक्तियों को शामिल किया गया है जो लोगों की सहानुभूति प्राप्त कर भीख मांगते हैं। भिक्षावृत्ति करने वालों के लिए सजा का प्रावधान है; पहले गिरफ्तारी पर तीन साल और अगर दोबारा पकड़े जाने पर 10 साल के लिए पंजीकृत संस्था में भेजा जा सकता है।

अधिनियम में संस्थाओं को यह शक्ति भी दी गई है कि वे नियमों का उल्लंघन करने पर सजा दे सकें। लेकिन, पुनर्वास के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए जाते हैं। दिल्ली हाई कोर्ट ने भी भिक्षावृत्ति की परिभाषा और पुनर्वास के मुद्दे पर विचार किया है।

सरकार को चाहिए कि भिक्षावृत्ति को रोकने के लिए सख्त कानून बनाने के साथ-साथ बेरोजगारी, गरीबी और स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधान भी सुनिश्चित करे। पुनर्वास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कौशल विकास और चिकित्सा सुविधाओं का प्रावधान किया जाना चाहिए। संगठित भिक्षावृत्ति रैकेटों का इलाज भी मानव तस्करी के अपराधों के रूप में किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- आशीष कुमार गुप्ता, भारत गाथा, गुरुजी श्री रविन्द्र शर्मा की दृष्टि से, खण्ड – 1, भिक्षावृत्ति, प्रकाशक एवं मुद्रक : इन्दिरा गाँधी कला केन्द्र जनपथ होटल, जनपथ नई दिल्ली।
- डॉ० मालारविजी बी + 1 और, (शोध पत्र), भिक्षावृत्ति के सामाजिक आर्थिक मुद्दे : कोयंबटूर शहर में भिखारियों का एक अध्ययन, 19 मई 2016, – आईआरए – इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेण्ट एण्ड सोशल साइंसेज।
- विवेक कुमार सिंह, भिक्षावृत्ति उन्मूलन में जन भागीदारी की आवश्यकता (शोध पत्र), 31 जनवरी 2022 – उन्नति अनुसन्धान का अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल।
- Singh M. (2017) Beggars Code, Chennai, Nations Press Academy



ब्रेख्त की नाट्य पद्धति और अवधारणा

शैलजा दुबे*

प्रस्तावना

विदेशी नाटककारों में शेक्सपियर के बाद संभवतः ब्रेख्त ही ऐसा नाटककार है जो भारत में सबसे ज्यादा पढ़ा और खेला गया है। बदलते हुए भारतीय संदर्भ में शेक्सपियर की अपेक्षा ब्रेख्त की लोकप्रियता और प्रासंगिकता निरन्तर बढ़ते जाने की स्पष्ट संभावनाएँ दिखाई दे रही हैं। ब्रेख्त बीते युगों की शाश्वत धारणा को नहीं मानते। उन्होंने सामाजिक प्रेरणाओं को युगानुरूप भिन्न बनाकर देखा और परखा है। यथार्थ में आंकने की सलाह देते हुए वह मानते हैं कि हमारे सामने ऐसी चीज विद्यमान है, जिसे हम नकार कर चले जाते हैं। अगर उन चीजों पर गौर कर सामान्यतः उन्हें स्वीकार कर लें और अपनी समझ के प्रयास द्वारा उसमें निखार पैदा करें तो निसन्देह हमारी प्रस्तुति चकित कर देने वाली होगी। ब्रेख्त उम्मीद रखते हैं कि हम जिस जमीन पर खड़े हैं उसे महसूस करें और उसमें तबदीली के लिए क्या करना है यह सोचें।

मार्क्सवादी जीवन दर्शन, विशेषकर साम्यवादी जीवन धारा की चरम सीमा पर आसीन बर्टोल्ट ब्रेख्त नाटककार के अलावा कवि और निबन्धकार भी थे, किन्तु नाटककार के रूप में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। वह अपनी नाट्य कृतियों को ऐसा रूप देने में सफल रहा जिसमें उत्तेजना, मनोरंजन और शिक्षा का मिश्रण हो।

बीज शब्द : महाकाव्यात्मक रंगमंच, पृथक्करण सिद्धांत, मनोविक्षेपणात्मक दृष्टि, रंगदीप्ति, मुक्त यथार्थवाद, जागरूक पर्यवेक्षक, स्पैक्यूलेटिव ओबजरवर, अवचेतन मन।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख में विवेचनात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

शोध आलेख

बीसवीं शताब्दी में जब यूरोप का रंगमंच यथार्थवाद से आक्रांत था, स्तानिस्लावस्की के 'मेथड' ने रंगकर्मियों को जकड़ रखा था तब कवि, नाटककार और निर्देशक बर्टोल्ट ब्रेख्त के सिद्धांतों और रंग प्रयोगों ने यूरोप के रंगमंच का परिचय एक नवीन शैली से करवाया। बर्टोल्ट ब्रेख्त ने महाकाव्यात्मक रंगमंच (एपिक थियेटर) की नींव रखी और अभिनय की एक नई शैली विकसित की जिसे 'ए-इफ़ैक्ट' अर्थात् 'अलगाव का सिद्धांत' (एलियेशन थियरी) कहा गया।

ब्रेख्त ने यथार्थवाद को एक साजिश करार दिया जिसमें अभिनेता और निर्देशक दर्शकों को भावुकता और सम्मोहन में जकड़कर उन्हें नाट्य स्थितियों में अपने साथ बहा ले जाते थे। दर्शक नाटकीय स्थितियों को सहज और स्वाभाविक मान लेता था। इस प्रक्रिया में दर्शकों के लिये यह अवकाश नहीं था कि वे चैतन्य मस्तिष्क होकर स्थितियों का विश्लेषण कर सकें। नाटक को एक निश्चित परिणति तक पहुंचाने और दर्शक का मनोरंजन करने की बजाय वह नाटक मंचन के बाद दर्शक पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में अधिक चिंतित थे। मार्क्सवाद में उनकी गहरी आस्था थी।

* पीएच.डी (हिंदी), हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, मोबाइल नंबर- 8851921058, 8527598347

ईमेल - shailjadubey25101997@gmail.com

और दो विश्वयुद्धों के बीच उनका निजी जीवन और रचनात्मक जीवन उथल पुथल से भरा हुआ था। उनका जन्म 10 फरवरी 1898 को बावेरिया में हुआ था। साहित्य से लगाव कम वय में ही हो गया था, कवि के रूप में उन्होंने शुरुआत की थी। मेडिकल का छात्र रहते हुए उन्होंने आर्थर कुचर के थियेटर सेमिनार में भाग लिया और इसी क्रम में अपना पहला नाटक 'बाल' लिखा। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान मेडिकल सेवा करते हुए लिखा गया नाटक 'ड्रम्स इन द नाइट' पहला मंचित नाटक था। बर्लिन आने के बाद वे मार्क्स के लेखन के प्रभाव में आकर साम्यवादी विचारधारा की तरफ आकर्षित हुए। हेलेना वायल से शादी की जो श्रेष्ठ अभिनेत्री भी थी। जर्मनी में नाज़ियों के सत्ता में आने के बाद जर्मनी छोड़ने को विवश हुए और प्राग, वियना, जुरिक, फ़िनलैंड होते हुए अंततः अमेरिका में जा कर शरण लिया। वहाँ हॉलीवुड में पटकथा लेखन बनने की उनकी योजना विफल हुई। साम्यवादी रुझान के कारण अमेरिका में इन्हें जांच का सामना करना पड़ा। चौदह साल के निर्वासन के बाद वे 1948 में जर्मनी लौटे। साम्यवादी शासन व्यवस्था ने इनका स्वागत किया और जर्मनी थियेटर के लिये 'मदर करेज' की प्रस्तुति हुई। 1949 में इन्होंने बर्लिन एंसेबल थियेटर की स्थापना की। 1956 में देह त्यागने तक बर्लिन एंसेबल के साथ वे प्रयोगरत रहे।

एपिक थियेटर -

बर्टोल्ट ब्रेख्त अपनी प्रदर्शन शैली को प्रकृतिवादी न मानकर यथार्थवादी कहते हैं और अपनी कृतियों को 'एपिक थियेटर' की संज्ञा देते हैं। वह घटनाओं को साकार रूप देकर महानाट्यों के माध्यम से उसका वर्णन करते हैं। महानाट्य में विशेषता है कि वह दर्शक के भाव को इतना आन्दोलित नहीं करता जितना उसकी बुद्धि को। बर्टोल्ट ब्रेख्त निरपेक्ष भाव अर्थात् महाकाव्योचित सिद्धान्त का समर्थक है जिसका अर्थ है कि अभिनेता स्वयं रंगमंच पर खड़ा होकर यह दर्शाता है कि उसके विचार में चरित्र क्या रहा होगा। वह शारीरिक भंगिमा, कण्ठ स्वर और मुख मुद्रा-सभी को एक सामाजिक भंगिमा द्वारा निर्धारित करता है। उसके विचार में कथा ही नाटक की महान क्रिया है। महानाट्य का रूप प्रचलित नाट्य-रूप से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें नाटकीयता की बजाए वर्णनात्मक गुण होता है। यह मध्यकाल के कथाकारों और किस्सा सुनाने वालों की कला से मेल खाता है। किसी शूरवीर की प्रशस्ति का बखान करते हुये कथाकार उसके जीवन की बहुत सी घटनाओं को सामने लाता है। समस्त घटनाएँ अपना अलग अस्तित्व रखते हुये भी आपस में जुड़ी रहती हैं। नाट्य-रूप घटना के एक पक्ष को साकार करता है जबकि महानाट्य उसका वर्णन करता है।

अपने इस थियेटर के बारे में ब्रेख्त का कथन है- 'एपिक रंगमंच का दर्शक स्वयं कहता है- मैंने यह कभी नहीं सोचा था। इस कार्य का यह उपाय ठीक नहीं। यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। विश्वास ही नहीं होता। इसे तो रोकना ही होगा। इस मनुष्य का दुःख मुझे विचलित करता है क्योंकि इसमें कुछ भी अनिवार्य नहीं जान पड़ता। मैं मंच पर रोने वालों के लिए हँस रहा हूँ और हँसने वालों के लिए रो रहा हूँ।' अर्थात् दर्शक मन में इस महाकाव्योचित सिद्धान्त के माध्यम से अनेक प्रश्न खड़े किये जा सकते हैं। जिनके समाधान के लिए वह सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर विवश होगा और बदलाव की स्थिति पर विचार करेगा।

महाकाव्यात्मक थियेटर के माध्यम से बर्टोल्ट ब्रेख्त उन स्थितियों को प्रस्तुत करते हैं और उन ऐतिहासिक कारणों को ढूँढते हैं जिनमें मनुष्य को बदलते हुये अर्थात् नया रूप ग्रहण करते हुये दिखा सके। 'मदर करेज' में माँ अपने दोनों बेटों की मौत और बेटी को गोली लग जाने पर भी युद्ध के भयानक वातावरण से घिरी, पशु के समान हाँफती अकेली छकेड़ को खींचती है। अब भी उसमें इस धिनौनी जंग में अपना टूटा-फूटा माल बेचकर पैसा कमाने की

ललक है। 'खड़िया का घेरा' में शहर के गर्वनर की बीवी, क्रान्ति हो जाने पर अपने नन्हें बच्चे को छोड़कर भाग जाती है। उसकी दासी गूशा बच्चे को बचाकर ले जाती है और पालती है। इस घटना के पीछे दार्शनिक समस्या उभरकर आती है - खेत किसका वह जो मालिक है या वह जो हल चलाकर फसत उगाता है। 'ला सियोटाट का सैनिक' दुनियाँ के इतिहास में उन तमाम सैनिकों का प्रतीक है जो हजारों वर्षों से शासकों के लिए युद्ध लड़ते रहे। ऐसे युद्ध जिनमें न तो उनकी कोई रुचि है और न ही कोई लाभ। स्वयं पीड़ित होना उसकी नियति है। यहाँ ब्रेख्त प्रश्न उठाता है कि क्या परिस्थितियों में परिवर्तन- अर्थात् इससे छुटकारा सम्भव नहीं? महाकाव्यात्मक थियेटर की एक-एक चीज की बारीकियों के बारे में ब्रेख्त ने गहराई से सोचा और समझा है।

समाजवादी यथार्थवाद -

बर्टोल्ट ब्रेख्त उन तमाम समस्याओं को उठाते हैं जिनको अन्य यथार्थवादी नाटककारों ने उठाया, किन्तु ब्रेख्त उस फोटोग्राफिकल यथार्थ को ज्यों का त्यों नहीं दिखाते, वह तो मुक्त होकर यथार्थ समेटते हैं। तमाम पुरानी रूढ़ियों, अंध विश्वासों, अंतर्द्वंद्व में कट रहे नीरस भावगम्य प्रश्नों आदि के अस्तित्व को वह उग्रतापूर्वक नकारते हैं। वह बन्धनहीन यथार्थवाद की, यानी पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत शोषण और दमन के यथार्थ के विवरण की मांग करते हैं। ऐसे यथार्थ को मुक्त करने की सलाह देते हैं। यह कहते हैं कि निरपेक्ष प्रस्तुतीकरण द्वारा नीचे छिपी सच्ची परिस्थितियाँ दिखाई पड़नी चाहिए। अपने मुक्त यथार्थवाद के अंतर्गत वह रंगदीप्ति के रूप में दिन, चाँदनी अँधेरी रात, घिरे बादल आदि के लिए केवल 'अभिनय' को महत्व देते हैं। यथार्थ लिप्त नाटककारों की भाँति वैज्ञानिक प्रयोगों का सहारा नहीं लेते बल्कि अभिनय के रूप में वह अपनी प्रवृत्ति के अनुसार दृश्य बनाते हैं।

ब्रेख्त कहते हैं- उन जगहों को छाँटो जहाँ यथार्थ को झुटलाया जा रहा है। धकेला जा रहा है। गायब किया जा रहा है। ऊपरी चमक को कुरेदो ! अकेले बोलते रहने की बजाए विरोध करो ! विरोध को जगाओ। तुम्हारी दलीलें जीवित, व्यवहारिक और कार्यरत इन्सान और उसकी यथावत जिन्दगी है। निडर बनो, असली चीज सचाई है। उस सचाई को ऐसे यथार्थ को लेखन में प्रस्तुत करो। अगर तुम्हारे निष्कर्ष प्रस्ताव सही हैं तो तुम्हें यथार्थ के विरोध को सहन करने में समर्थ होना चाहिए। कठिनाईयों की डरावनी सम्पूर्णता का अन्वेषण करने, उनसे जनता के सामने खुल्लम खुल्ला निबटने में समर्थ होना चाहिए। तुम्हारे वर्ग का हित सारी मानवता का हित है, उसे बढ़ाने के लिए सब कुछ करो पर किसी चीज को इसलिए न निकालो कि उसका तुम्हारे निष्कर्षों से, तुम्हारे प्रस्तावों से और तुम्हारी आशाओं से मेल नहीं बैठता। अंततः वह जन संघर्षों में एक सबल हथियार की तरह यथार्थ की महत्ता स्वीकार करते हैं। वह कहते हैं मुक्त होकर ऐसे यथार्थ की रचना करो जो सांस्कृतिक औजार बन सके और वह जनता को जगाने की चेतना से लिप्त हो।

पृथक्करण सिद्धान्त -

ब्रेख्त ने कार्ल मार्क्स के नूतन सिद्धान्त पृथक्करण (एलिऐनेशन) को ग्रहण किया, जिसकी व्याख्या हीगल ने पाजिटिव अर्थात् स्थिर एवं सुनिश्चित या निगेटिव निषेधात्मक के मिश्रित अर्थों में की, तात्पर्य यह कि पुरातन चली आती स्वत्व सम्बन्धी मान्यताओं का सर्वथा निषेध करते हुये युगानुरूप स्वत्व-हस्तांतरण की स्वीकृति ही एलिऐनेशन का उद्देश्य होता है। प्रसिद्ध रंगशिल्पी हबीब तनवीर ब्रेख्त के पृथक्करण की व्याख्या इस रूप में करते हैं- 'मेरी समझ में पृथक्करण का सम्बन्ध अभिनय की ईमानदारी से नहीं अपितु अच्छे-बुरे अभिनय से है। उसमें सच्चाई के आधार पर ऊँचे

दर्जे की रीतिबद्धता -स्टाइलाइजेशन- होती है।' उनका कहना है कि ब्रेख्त सच्चाई के किसी पहलू को, उस स्थिति या पात्र के सबसे बुनियादी पहलू या तत्व को रीतिबद्ध या अतिरंजित करते थे।

ब्रेख्त की रंग परिकल्पना लार्ड एटीच्यूड को ट्रांसग्रेस करती है परन्तु यथार्थ और आदर्श के समन्वय द्वारा सौन्दर्य बोधात्मक आशंसा के लिए नहीं- सामाजिक यथार्थ से उभरने वाली नैतिकता से परिचित होने के लिए और विमर्श के लिए होना चाहिए। यहाँ ब्रेख्त भी भरत की तरह हर्ष (प्लेजर) की बात करते हैं। मगर यह एक जटिल आनन्द है। यहाँ दर्शक तादात्म्य नहीं करता, वह स्पैक्यूलेटिव ओबजरवर बनता है और पृथक्करण की स्थिति में उसे 'युग के सही एवं यथार्थ इतिहास' यानी 'थियेटरि सत्य' पर गवेषणन का मौका मिलता है। गवेषणन के लिए दर्शक को थियेटरि दुनियाँ से केवल पृथक ही नहीं उससे तटस्थ भी रहना पड़ता है, तभी पृथक रहकर उस पर सोचना सम्भव होगा।' इसके लिए ब्रेख्त ने एपिक थियेटर को महत्व दिया है। 'परिस्थितियों को उन्हीं के गीत सुनाकर नष्ट कर दो।' मार्क्स की यह युक्ति ब्रेख्त की रचनाओं को साकार करती जान पड़ती है।

अपने नाटकों के प्रदर्शन में ब्रेख्त ने आधुनिक विश्लेषणात्मक और सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य ही अपनाया है और पृथक्करण में निम्न बातों को निहित माना है-

जीवन से उन परिस्थितियों और ऐतिहासिक कारणों की तलाश, जिसमें वह मनुष्य को बदलाव अर्थात् नये रूपों के साथ प्रस्तुत कर सके।

प्रस्तुति द्वारा दर्शक वर्ग में ऐसे सवाल खड़े करना जिससे वह परिस्थितियों के मूल को पहचानने की कोशिश में लग जाए।

अपने को समझो। स्वयं को जानो। मजबूर इन्सान को परिस्थितियों से निकलने का रास्ता सुझाना। अर्थात् अपने लेखन में रोमाण्टिक समझ को नकारते हुये और उसे आधुनिक मानवीय अनुभूति से अनुरंजित करते हुये व्यक्ति अस्मिता को एक नई दिशा देना।

यथार्थ को फोटोग्राफिकल नहीं अपितु चेतना जगाने के लिए प्रस्तुत करना।

प्रेक्षागृह की सम्पूर्ण तैयारी में दर्शक को तैयार करना। इसके लिए नेरेशन समालोचन, प्रदर्शन में दर्शक सहयोग या सम्मिलन, भाषा संयोजन, कथावस्तु नियोजन ऐसे ढंग से किया जाता है कि दर्शक वर्तमान विषय स्थिति से हटकर उसे बदलने के लिए बौद्धिक स्तर पर विचार कर सके।

लेखक की प्रतिबद्धता के सम्बन्ध में ब्रेख्त का मानना है कि कोई कलाकार प्रतिबद्धता से बच नहीं सकता। उनके अनुसार- 'इस मूल्य विहीन जगत में कोई न कोई मूल्य छुपा है, उसे ही ढूँढ निकालना नाटककार की कलात्मकता का प्रमाण है।' उनका कहना है कि अनेक कठिनाइयों का निवारण किया जा सकता है और विपदाएँ दूर होने पर व्यक्ति में सामाजिक भाव अर्विभूत हो उठता है। प्रगतिवादी होने के साथ-साथ वे कहीं न कहीं क्रान्तिकारी भी हो उठते हैं। 'मरे हुये सिपाही की दास्तान' और 'रात में ढोल' के कारण म्युनिख की नाजी लिस्ट के काले निशान वाले नामों में ब्रेख्त का नाम भी जुड़ गया था।

प्रेक्षक की प्रतिक्रिया सम्बन्धी अवधारणा -

बर्टोल्ट ब्रेख्त अपने समय के दर्शक की सीमाओं और अपेक्षाओं को पहचानते थे। दर्शक जिस परिवेश में सांस ले रहे हैं और उस परिवेश को किस धरातल की जरूरत है, इस बात का अनुमान ब्रेख्त को था। वह नहीं चाहते थे कि उसका दर्शक नाटक में डूब जाए और स्वयं से बेखबर रहे। वह तो दर्शक को सचेत रखना चाहते हैं, ताकि बुद्धि कौशल

से वह नाटक को परख सके और उसको यह ध्यान रहे कि वह प्रेक्षागृह में बैठा नाटक देख रहा है। ब्रेख्त के मन में जो चेतना विकसित हो रही थी वह वैसी ही चेतना अपने दर्शक के मन में देखना चाहते थे। वह प्रचलित मूल्यों को झटके से तोड़ देते हैं और बिखरी समस्याओं का हल बदलाव ही सुझाते हैं।

'खड़िया का घेरा' में अजदक चचा काज़बेकी पर चोट करते हुए कहता है- 'लड़ाई में हार हुई पर राजकुमारों की नहीं, राजकुमारों ने अपनी लड़ाई जीत ली है। अड़तीस लाख तरेसठ हजार पियास्तर राजकुमारों ने उन घोड़ों के नाम पर खाये हैं जो फौज को पहुँचाये ही नहीं गये, और बयासी लाख चालीस हजार उस रसद के नाम पर।' दर्शक प्रेक्षागृह में इस बात को सुन रहा है। उसके मन में हलचल होती है अपने वर्तमान के प्रति और वह सचेत हो प्रतिक्रिया करने को बाध्य होता है। वह नाटक के सीन या अजदक के चरित्र में नहीं डूबता वरन् अजदक द्वारा कहे सत्य का अर्थ निकालता है और उन अर्थों की समीक्षा करता है। बौद्धिक स्तर पर प्रतिक्रियावश वह सोचता है- 'रसद और घोड़ों के नाम पर खाये रुपयों और सहायता के अभाव में असंख्य सैनिकों की मौत- जिम्मेदार कौन ! इसे रोकना होगा। बदलना होगा।

मंच पर वह अपने पात्र की कमजोरियों को दिखाकर दर्शक को सोचने पर विवश करते हैं। वह चाहते हैं कि दर्शक-देखे, परखे और उस पर अपना निर्णय दे। वह महानाट्य और नाट्यरूप दोनों के दर्शकों को भिन्न मानते हैं। उसकी नजर में महानाट्य दर्शक को अपने कार्य में उलझाता नहीं बल्कि एक तटस्थ दृष्टि प्रदान करता है। नाट्यरूप दर्शक को नाटक के कार्य में उलझा लेता है और भावनाओं को उत्पन्न करता है। जीवन को महसूस करने में सहायता देता है।

ब्रेख्त का एपिक थियेटर दर्शक की क्षमता को क्रियाशीलता की उस दिशा तक ले जाता है जहाँ से वह अपनी दुनियाँ से साक्षात्कार कर सके। इसीलिए ब्रेख्त ने संकीर्ण व्यक्तिगत सुख-दुःख या भावुकता, संवेदना के प्रचलित नाटकीय थियेटर से अलग हटकर एपिक थियेटर की कल्पना की, इसके लिए उन्होंने दर्शक को रंगमंचीय जादू से अभिभूत करने की बजाए उसे जागरूक पर्यवेक्षक, प्रतिक्रिया करने और युक्तिसंगत निर्णय लेने पर बल दिया। अंततः ब्रेख्त का दर्शक अनुभूति के जंगल में फंसा नहीं रहता बल्कि बाहर खड़ा होकर सोचता है। मनुष्य ही उसकी खोज का विषय होता है।

मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि -

पाश्चात्य विद्वान जहाँ 'मन' को अध्ययनातीत मानते हैं वहाँ भारतीय दृष्टि मन के सूक्ष्म विश्लेषण को असम्भव नहीं मानती। फ्रायड अतृप्त दमित इच्छाओं का गुप्त स्थान 'मन' को ही मानता है। यौन प्रेरणाओं से लिप्त विज्ञान को 'यौन मनोविज्ञान' की संज्ञा देते हुये अनेक विचारकों ने इसकी अलग-अलग अपनी तरह की व्याख्याएँ की हैं। उन सबके मूल में 'काम' शब्द ने अपनी महत्ता को बनाए रखा है, जिसकी स्थूल व्याख्याएँ-चुम्बन, आलिंगन, कपोल, स्तन, नितम्ब आदि अंगों से प्राप्त सुख की कामना या कल्पना ही है।

बटोल्ट ब्रेख्त के नाटकों में अनेक ऐसे पात्र मौजूद हैं जो 'इच्छित काम' की तरफ अपना रूझान बनाए रखते हैं। 'खड़िया का घेरा' का अखिरी छोर नृत्य आनन्द में डूबते हुये अनेक यौन इच्छाओं से लिप्त वातावरण भी पेश करता है। 'मदर करेज' की माँ बावर्ची और पादरी के बीच की दूरी में अपनी दमित इच्छाओं को खुला छोड़ने की लालसा रखती है। बावर्ची की पुरानी प्रेमिका फौज के कमाण्डरों में बढ़ती कामेच्छा का पूर्ण तृप्त भाव ढूँढ रही है। 'मैन इक्वल मैन' की विधवा बैगविक अपने सुन्दर शरीर की अतक से फौजी मोर्चों में खुला आरामगृह लगाती है। अपने शरीर की

झलक से उन्हें आकर्षित करती है। 'मालिक पुटिला और उसका नौकर मट्टी' में पार्टी के दौरान ग्रामोफोन के संगीत के साथ नाच जारी रहता है, जहाँ मंत्री जी मिस एवा के साथ और पादरी श्रीमती जी के साथ नाचने की इच्छा रखते हैं। यह मंत्री और पादरी के काम रुझान को इंगित करता है।

यह यौन आर्कषण, ब्रेख्त की विचार शृंखला में- मनोहारी दृश्य उपस्थित करता है। ब्रेख्त स्वयं भी अपने नाटकों में अवचेतन मन का सहारा लेना महत्वपूर्ण समझते थे। वह कहते हैं- 'ऐसे बहुत से लेखक हैं जो अपनी कृतियों की रचना में चेतना की बहुत अधिक मात्रा लगाने में असमर्थ होते हैं। ऐसे लेखकों को अपनी अवचेतन रचनाओं के अलावा, उन कृतियों पर प्रहार करने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिनकी रचना में चेतना की गुंजाइश हो।' यानि स्पष्ट रूप से शिक्षात्मक कृतियाँ। उनका कथन है- 'इस बात की भली-भाँति कल्पना की जा सकती है कि इस तरह से इन लेखकों के अवचेतन को ढाला जा सकता है। उनके मूलतः अवचेतन कृतित्व का भी इस गोण कार्य में लाभ सम्भव है।'

निष्कर्षतः

ब्रेख्त ने यूरोपीय रंगमंच को यथार्थवाद से आगे का रास्ता दिखाया। उन्होंने महसूस किया कि नाटकीय अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने और ग्रहण करने की प्रक्रिया में ठहराव आ गया है। बदलते समाज में रंगमंच को अपनी एक भूमिका सामाजिक जीवन में बनाना चाहिये जिसका ध्येय सिर्फ मनोरंजन नहीं होगा, वह शिक्षा और ज्ञान का भी प्रसार करेगी। ब्रेख्त ने यह भी देखा कि 'देखने' की प्रक्रिया जिसे मनुष्य सहज मान लेता है वस्तुतः एक प्रदत्त स्थिति है जिसमें वह एक विशेष ढंग से देखने के लिये अनुकूलित होता है, अतः इस 'देखने' की प्रक्रिया को भी बदलने की जरूरत है। उनके नाटकों में 'देखने' के इस बदले ढंग को देखा जा सकता है।

वह रंगमंच के अनुरूप नाटक की रचना स्वीकार नहीं करते बल्कि नाटक के अनुरूप मंच व्यवस्था को आवश्यक मानते हैं। महानाट्य के माध्यम से दर्शक मन में अनेक प्रश्न खड़े करते हैं और निवारण उन्हीं पर छोड़ते हैं। वह अपने दर्शक को घटनाओं में डूबने से रोकते हैं और अभिनेता और दर्शक के बीच उपदेशात्मक ढंग अपनाते हैं। मुक्त और चुनौतीपूर्ण यथार्थ अपनाने की सलाह देते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा, जयदेव तनेजा, पृष्ठ - 337

लुकुआ का शहनामा (ब्रेख्त के 'लुकुल्स' नाटक का हिन्दी रूपांतर) रूपांतरकार- कन्हैयालाल नंदन, पृष्ठ - 14

हर शै बदलती है (ब्रेख्त की कविताओं का हिन्दी अनुवाद) अनु० गिराया। राठी, रायनेर लोत्स, पृष्ठ - 112

चीड़ों पर चाँदनी- निर्मल वर्मा, यात्रा वृत्तान्त- 'ब्रेख्त और उदास नगर' पृष्ठ - 19

आज का हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव, डॉ० दशरथ ओझा, पृष्ठ - 39

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक, रामजन्म शर्मा, पृष्ठ - 60

नाट्य प्रस्तुतीकरण: स्वरूप और प्रक्रिया, डॉ० विश्वभावन देवलिया, पृष्ठ - 64

रंगमंच, बलवन्त गार्गी, पृष्ठ - 257

नटरंग (नाट्य पत्रिका) सं० नेमिचन्द्र जैन, आवरण पृष्ठ - 1, अंक - 8

हिन्दी नाटक और रंगमंच, सं० राजमल बोरा, नारायण शर्मा, लेख- डॉ० इन्द्रनाथ चौधुरी। पृष्ठ - 20

जर्मन साहित्य की परम्परा, अनु०- नेमिचन्द्र जैन। पृष्ठ - 226

खड़िया का घेरा, बर्टोल्ट ब्रेख्त, अनुवादक- कमलेश्वर, पृष्ठ - 120



नारीवाद का समाज पर सकारात्मक प्रभाव

डॉ. कुमारी भावना*

सारांश:-

नारीवाद स्त्री और पुरुष समानता की बात करनेवाला आंदोलन है: न कि स्त्रियों का पुरुषों के उपर श्रेष्ठता स्थापित करना। नारीवादियों के अनुसार सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था में स्त्रियों को पुरुषों की तुलना में कम महत्व दिया जाता है और इसी असमानता को दूर करना ही नारीवाद का मुख्य उद्देश्य है।

नारीवादी आंदोलन के कारण नारी रहित व महिला सशक्तिकरण की विचारधारा को बल मिला है। परिवार में महिलाओं की स्थिति अधिक मजबूत होती जा रही है। महिलाओं को भी पुरुषों के समान अधिकार मिलने की बातें होती हैं और मिल भी रहे हैं। महिलाओं का जीवन स्तर में सुधार हो रहा है।

यदि हम ऐतिहासिक रूप से नारीवादी मुद्दों की बात करें तो इनकी मांग है, स्त्रियों के अधिकारों को मानव अधिकारों की सामान्य श्रेणी के रूप में मान्यता दी जाए और सम्पूर्ण सामाजिक जीवन के संदर्भ में स्त्री-पुरुष की समानता स्वीकार की जाए। प्राची या मध्यकाल में स्त्रियों की हीनता के विरुद्ध महिलाओं द्वारा किसी आंदोलन का स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है।

मुख्य शब्द:- नारीवाद, महिला सशक्तिकरण, मानवअधिकार, पूंजीवाद, उपनिवेशवाद, उदारवाद, राष्ट्रीय आंदोलन, लैंगिक विभेद, समाजवाद।

परिचय:-

एक राजनीतिक अवधारणा के रूप में नारीवादी आंदोलन 20वीं शताब्दी की देन है। महिला आंदोलन और उससे जुड़ा स्त्री मुहिम का प्रश्न भी एक आधुनिक परिघटना है। संगठित नारीवादी आंदोलन की शुरुआत फ्रांसीसी क्रांति के दौरान हुई, जब स्त्रियों द्वारा समस्त राजनैतिक एवं सार्वजनिक कार्यवाहियों में खुल कर हिस्सा लिया गया। इसके परिणामस्वरूप स्त्रियों की कानूनी स्थिति में महत्वपूर्ण बदलाव लाए गए, जैसे- 1791 के कानून द्वारा स्त्री शिक्षा प्रावधान 1972 में स्त्रियों को नागरिक अधिकार प्रदान किए गए तथा 1794 के कानून द्वारा तलाक की प्रक्रिया को सरलीकृत किया गया। सन् 1869 में स्त्रियों को वोट देने के अधिकार पे एक राष्ट्रीय एसोसिएशन की स्थापना हुई। सभी देशों से यह मांग उठने लगी की स्त्रियों को वोट देने का अधिकार मिलना चाहिए। पहली सफलता सन् 1893 में न्यूजीलैंड में मिली। आज नारीवाद एक बहुआयामी और प्रभावकारी विचारधारा है, जिसने न सिर्फ अकादमिक जगत में बल्कि व्यवहारिक रूप में सामाजिक परिवर्तन का कार्य किया है।

नारीवादी की मुख्य धाराएं एवं ऐतिहासिक विकास:-

नारीवादी आंदोलन के अन्तर्गत अनेक प्रकार के विचार और कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए हैं। स्त्रियों की असमानता, दमन और अधीनता के कारणों, प्रकारों और समाधानों के बारे में नारीवादियों की अलग-अलग राय है। इसी कारण अलग-अलग धाराएं हैं। मुख्य रूप से नारीवाद को तीन धाराओं में बांटकर देखा जा सकता है- उदारवादी नारीवाद, अमूल परिवर्तनवादी नारीवाद एवं समाजवादी नारीवाद।

1. **उदारवादी नारीवाद:-** उदारवादी नारीवाद, नारीवाद से जुड़ी आरंभिक विचारधारा है जो उदारवाद से जुड़ी मान्यताओं के आधार पर स्त्रियों के अधिकारों की वकालत करती है। यह विचारधारा क्रांति के विपरीत क्रमिक और कानूनी सुधार का समर्थन करती है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जान स्टूअर्ट मिल ने अपनी रचना सब्जेक्शन आफ वीमेन (1869) के अन्तर्गत भी स्त्री अधिकारों का समर्थन किया। स्त्री-पुरुष का संबंध अधिपत्य के बजाय सहचार्य पर आधारित होना चाहिए। उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा, नागरिकता तथा संपत्ति में अधिकार की वकालत की।

* पूर्व शोध छात्रा, समाजशास्त्र, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

2. **आमूल परिवर्तनवादी नारीवाद:-** आमूल परिवर्तनवादी नारीवाद का उदभव नारीवादी विचारधारा की शुरूआत मुख्य रूप से द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् हुई। यह विचारधारा सामाजिक व्यवस्था की यथास्थिति में आमूल परिवर्तन की मांग करती है। यह विचारधारा निजी जीवन में समानता की समर्थक है। इस धारा की प्रमुख विचारक सिमोन द बुआ, शुलामिथ फायरस्टोन, केट मिलेट, वजीनिया, वूल्फ आयरिश मेरियम यंग हैं।
फ्रांसीसी नारीवादी लेखिका सिमोन द बुआ ने अपनी चर्चित कृति “द सेकेंड सेक्स (1949) में कहा कि, स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे ऐसा बना दिया जाता है”। सिमोन ने कहा है कि पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को द्वितीय लिंग का दर्जा जाता है।
3. **समाजवादी नारीवाद:-** समाजवादी नारीवादी विचारधारा समाजवाद से जुड़ी मान्यताओं को आधार बनाकर महिलाओं के उत्थान का समर्थन करती है। समाजवादी नारीवादी यह नहीं मानते कि स्त्रियों की समस्या राजनितिक और कानूनी रूप से समाप्त हो सकती है। स्त्री-पुरुष की असमानता का मूल कारण सामाजिक आर्थिक संरचना है जो सामाजिक क्रांति के द्वारा ही समाप्त की जा सकती है। समाजवादी नारीवादी मुख्य रूप से पूंजीवादी व्यवस्था को स्त्रियों के शोषण का कारण मानते हैं। इस धारा के प्रमुख विचारक चार्ल्स फ्यूरिए, फ्रेडरिक एंगेल्स और शीला रोबाथम हैं। फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपनी पुस्तक “द ओरिजिन आफ द फैमिली प्राइवेट प्रॉपर्टी एवं स्टेट” (1881) में यह तर्क दिया कि समाजवाद के आगमन से निजी सम्पत्ति का अंत हो जाएगा, जिससे स्त्रियों को गृह कार्य के भार से मुक्ति मिल जाएगी और समानता स्थापित होगी। शीला रोबाथम का मानना था कि नारी मुक्ति का संघर्ष वस्तुतः पूंजीवाद विरोधी संघर्ष का हिस्सा है।

भारत में नारीवाद :- विकास के स्वरूप

पुरुष वर्चस्व हर एक समाज की सच्चाई है और भारतीय समाज की इससे अछूता नहीं रहा है। भारतीय समाज के लगभग सभी वर्गों में महिलाओं की स्थिति आरम्भिक समय से ही दोगुना दर्ज की जा रही है। समाज की आधी आबादी होने के बावजूद महिलाएं हमेशा से मूलभूत अधिकारों से वंचित रही हैं। भारत में भी नारीवाद पितृसत्ता के विरोध और समान अधिकारों की लड़ाई से जुड़ा हुआ है। यदि हम भारतीय संदर्भ में नारीवादी आंदोलन को देखें तो इसको तीन काल-खण्डों में बांटा जा सकता है।

1. प्रथम चरण 1850-1915
2. द्वितीय चरण 1915-1947
3. तृतीय चरण 1947- वर्तमान तक

ऐतिहासिक कारण:-

भारतीय सामाजिक संरचना, उपनिवेशवाद और उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के कारण भारत का नारीवादी आन्दोलन 19वीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। भारत में पहला नारीवादी आंदोलन समाज में विद्यमान अंधविश्वासों, रूढ़ परम्पराओं जैसे:- सती प्रथा, बाल विवाह, देवदासी प्रथा आदि को समाप्त करने के उद्देश्य पर केन्द्रित था। राजा राम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द, ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, फातिमा शेख, ताराबाई शिंदे, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पंडिता रामाबाई, सर सैय्यद अहमद खाँ आदि विचारकों और समाज सुधारकों ने महिलाओं से जुड़े हुए प्रश्नों को प्रमुखता दी तथा विभिन्न संगठनों और कानूनी सुधार के माध्यम से स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह और स्त्री अधिकार की दिशा में समर्पित प्रयास किया।

दूसरा चरण महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से जुड़ा हुआ है। इस दौर में महिलाएं स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर श्रमिक आंदोलन में भी शामिल होने लगीं। इस चरण में विभिन्न संगठनों की स्थापना हुई और शारदा एक्ट (1929) जैसे कानूनी सुधार हुए। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी और डॉ॰ अम्बेदकर के महिला उत्थान की दिशा में किए गए प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जहाँ महात्मा गाँधी ने सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, छुआछूत व विधवाओं के शोषण का मुख्य विरोध किया वहीं अम्बेदकर ने कानूनी सुधार व संवैधानिक प्रावधानों (समानता का अधिकार और लैंगिक विभेद का

अंत) के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में व्यावहारिक प्रयास किया। इस दौर में प्रमुख नारीवादियों में कामिनी राय, सरला देवी चैधरानी, दुर्गाबाई की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

भारत में नारीवाद आंदोलन का तीसरा चरण आजादी के बाद सार्वजनिक और निजी जीवन में समानता से जुड़ा हुआ है। यह प्रमुख रूप से सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक समानता, शिक्षा तक पहुंच, संपत्ति में अधिकार तथा लैंगिक विभेद के अंत से जुड़ा हुआ है।

भारत में कन्या भ्रूण हत्या बढ़ती जा रही है, क्योंकि भारत में बेटों की तुलना में बेटियों को कम महत्व दिया जाता है, जिसके कारण यहाँ भ्रूण हत्याएं हो रही हैं। जिससे भारत में लिंगानुपात में कमी आई है। एक और अन्य मुद्दा सभी प्रकार के यौन हिंसा है, जिसे छेड़खानी के नाम से जाना जाता है, यह एक अपमानजनक शब्द है। भारत में यौन हिंसा अपने उच्चतम स्तर पर है। सन् 1990 के बाद 21वीं सदी की शुरुआत में इन्टरनेट क्रांति ने तीसरे चरण को विशेष सफलता दी, जिसमें दुनियाभर की नारी एक दूसरे के संघर्ष में न केवल लिखकर अथवा बोलकर सहयोग दे सकती थीं। इस तरह भेदभाव के खिलाफ एक साथ मिलकर आवाज भी उठाई।

नारीवाद का तीसरा चरण पहले दोनों की अपेक्षा बिखरी और असंगठित था। उन्होंने पहले एवं दूसरे चरण को महत्व दिया। तीसरी लहर में हर क्षेत्र में महिलाओं ने अपने आपको सिद्ध किया।

1990:- पहली बार सन् 1990 के दशक में अटानो “जनरल” राज्य सचिव पद महिलाओं को मिले। जिसमें राजनीतिक, वैधानिक दोनों में महिलाओं की स्वतंत्र भागीदारी रही।

1991:- विमानन क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी।

1992:- महिलाओं का साल कहा जाता है, क्योंकि इस दौरान अमेरिकी सीनेट की कुल महिला संख्या 06 थी।

नारीवाद- आधुनिक परिपेक्ष्य:-

सन् 2010 के बाद नारीवाद का चौथा चरण शुरू हुआ। बहसे और संवाद जारी है। अभी भी जरूरी है कि महिलाएं एक जुट हो और निष्पक्षता की लड़ाई कर इसे उखाड़ फेंकें।

जेरेमी बैथम ने अपनी पुस्तक Introduction to the Principles of Moral and Legislation में स्त्रियों को उनकी कमजोर बुद्धि का बहाना बनाकर अधिकारों से वंचित करने की कई राष्ट्रों की मंशा की आलोचना की।

समाजवादी/मार्क्सवादी नारीवाद:-

पूँजीवाद है महिला-गुलामी की जड़। समाजवादी नारीवादियों ने न केवल महिलाओं की गुलामी के उदय के एंगेल्स के विश्लेषण को अपनाया, बल्कि उन्होंने मार्क्सवादी धारणाओं को लागू कर महिलाओं के शोषण चक्र को भी समझने का प्रयास किया। महिलाओं की रोजमर्रा के जीवन पितृसत्तात्मक ढांचे से प्रभावित होती है।

भारत में समाजवादी नारीवादियों ने घरों से काम करने वाली महिलाओं को एकजुट हो जाना चाहिए। महिला, खेतिहर मजदूरों के लिए खासतौर से जमीन के स्वामित्व की माँग उठाई जानी चाहिए।

समाजवादी नारीवाद की रणनीति की व्याख्या शिकागो वीमेंस लिबरेशन यूनियन के चेप्टर (1972) में की गई। इनके अनुसार की पूँजीवादी वर्ग में महिलाओं का दमन एवं शोषण होता है। नारीवाद की चौथी लहर के बाद पाचवी लहर का नाम “मी टू अभियान” दिया गया है, जो सोशल मीडिया से प्रेरित रही है।

कार्यस्थल पर यौन हिंसा के खिलाफ भारत में एक कानून बना जिसे विशाखा गाईड लाईन (N.G.O.) है। ये कानून 2013 में बना। “मी टू अभियान” के बाद बहुत सारी महिलाएं आयी जो मेरे साथ भी बहुत सारे गलत काम हुए हैं।

निष्कर्ष:-

नारीवादी विचारधारा राजनीतिक सिद्धांत उपज है, जिसने महिलाओं को नैतृत्व करने की क्षमता प्रदान करते हुए पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों के बराबर समान भागीदारी सुनिश्चित करने का एक सार्थक प्रयास किया है। महिलाओं के लिए समान अधिकार, महिला सशक्तिकरण, विभिन्न संगठन, राष्ट्रीय आन्दोलन में सहभागिता, लैंगिक विभेद का अंत, सामाजिक कुर्रतियां, यौन हिंसा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आधुनिक शिक्षा व्यवस्था से जोड़ते हुए कुर्रतियों पर परहार करके राष्ट्रीय एवं

वैश्विक परिदृश्य में अपने को पुरुषों के बराबर लाकर खड़ा करने में सफल हुई। इस प्रकार नारीवादी आन्दोलन सभी क्षेत्रों में महिलाओं के आत्मसम्मान में वृद्धि हुई, जिसे महिला सशक्तिकरण के रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ:-

1. शर्मा, पी०डी०. (2017). महिला सशक्तिकरण और नारीवाद-जयपुर. रावत पब्लिकेशन
2. मेनन, निवेदिता. (2021). नारीवादी निगाह से. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन
3. परमार, शुभा. (2015). नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार. नई दिल्ली. ओरिएंट ब्लैक स्वान.
4. प्रीती, (2023). नारी से नारीवाद तक सफर. श्री नगर. बुक लीफ पब्लिकेशन
5. सिंह, वी०पी० & सिंह जगमोहन. (2012) नारीवाद. नई दिल्ली. रावत पब्लिकेशन
6. चौधरी झा, डा० कीर्ति. (2015). नारीवाद का दार्शनिक विश्लेषण. वाराणसी. कला प्रकाशन



वैदिककालीन समाज एवं संस्कृति: एक अवलोकन

डॉ. सत्यजीत सारंग*

सारांश

वैदिक वाङ्मय भारतीयों का अनुपम और अक्षय धन है। इस वाङ्मय में जिस प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान उपलब्ध होता है, उसी प्रकार आधिभौतिक ज्ञान भी। मानव आदर्श तथा मानवीय जीवन दर्शन ही मानव मूल्य है और इसके विशुद्ध ज्ञान के लिए वैदिक वाङ्मय एक महत्वपूर्ण साधन है। मानवीय मूल्य से हमारे व्यक्तित्व का विकास होता है। मानवीय व्यवहार में मूल्य शब्द का अर्थ सहज जीवन, शुद्ध आचरण, आत्मसंयम, इन्द्रिय निग्रह, आत्मशुद्धि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। प्रेम, अहिंसा, नैतिकता, शील, संतोष, सत्य, लोकमंगल और लोक कल्याण की भावना भी मानवीय गुणों से ही सन्निहित है। इन गुणों से हमें शक्ति प्राप्त होती है। शक्ति का स्रोत होने के कारण हम सभी इन्हें मूल्य कहते हैं। वैदिक वाङ्मय हमारे जीवन-यापन की सर्वोत्तम पद्धति एवं मानवीय मूल्यों की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। हमारे क्रान्तदर्शी ऋषियों की सत्यान्वेषण परक अनुभूतियों के कोष वैदिक वाङ्मय में लोक कल्याण विषयक निर्देश एवं जीवन मूल्य यत्र-तत्र प्रसंगवश वर्णित है, जो हमारे जीवन का मार्गदर्शन करते रहे हैं। वे मूल्य व्यक्ति को वास्तव में मानव बनने का संदेश देते हैं। हमारी वेदवाणी- “सर्वे भवन्तु सुखिनः” का उद्देश्य है कि सभी प्राणी स्वस्थ एवं सुखी हों तथा सबका कल्याण हो। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में वर्णित मानवीय मूल्य सनातन एवं सार्वभौम है, जिसके मौलिक सिद्धान्तों को अपनाकर समाज का तथा व्यक्ति का पूर्ण कल्याण हो सकेगा। प्रस्तुत शोध-पत्र में इसे विस्तृत रूप से प्रतिपादित किया गया है।

विषय संकेत- वेद और मानवीय मूल्य, नैतिक मूल्य।

प्रस्तावना-

वेदों में प्रतिपादित नैतिक एवं मानवीय मूल्य किसी स्थान, काल या देश-धर्म की परिधि में बंधे हुए नहीं हैं अपितु शाश्वत, सार्वभौम तथा सार्वकालिक हैं। यही कारण है कि युगों से मानव मात्रा का मार्गदर्शन करता हुआ यह वैदिक साहित्य आज भी तथा आने वाले युगों पर्यन्त “सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय” कल्याणकारक नीति-नियमों, आदर्शों तथा संस्कारों का दिग्दर्शन तथा उद्घोष करने में समर्थ है। मानवीय मूल्यों या नैतिक गुणों पर यदि विचार करें तो हमें समस्त वैदिक साहित्य मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत मिलेगा। वैदिक साहित्य से लेकर वेदांगों में जहाँ एक ओर सत्यवादिता, श्रेष्ठजनों के प्रति सम्मान, त्याग, सदाचार, सत्संगति, अतिथि-सत्कार, दान-धर्म एवं ‘ईशावास्यमिदं, सर्वं’, ‘भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम’, ‘तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु’ सदृश मंत्रों द्वारा ईश्वर की व्यापकता एवं अनासक्त भाव का सम्पोषण जैसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानवीय मूल्य दृष्टिगोचर होते हैं, वहीं दूसरी ओर पारिवारिक सौमनस्य, विश्वबन्धुत्व की भावना एवं देशानुराग भी भारतीय आर्यों में चरमोत्कर्ष पर था, जो आज समग्र मानव जाति के लिये पथ-प्रदर्शन का कार्य सम्पन्न करता है। यदि हम वैदिक शिक्षाओं एवं सिद्धान्तों को स्थापित करें, तो पुनः प्रेम, दया, परोपकार, सहानुभूति आदि की भावना का विकास करके समाज को दृढ़ बनाया जा सकता है।

वेद मानवमात्र के प्रकाश स्तम्भ हैं और शक्ति व ज्ञान के स्रोत हैं। जहाँ वेदों की ज्योति है वहाँ प्रकाश है सुख है, शान्ति है उन्नति है और सतत् विकास है। वेदों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति समाज राष्ट्र तथा विश्व की उन्नति का साधन है। विश्व बन्धुत्व का प्रेरक है और विश्वधर्म का संस्थापक है। वेद भारतीय दर्शन संस्कृति तथा आर्यधर्म का मूल्य स्रोत है। धर्म के मूलतत्त्व को जानने का एकमात्र माध्यम वेद ही है। वेद मानव मात्र के कर्तव्यबोध का सबसे प्रामाणिक और महत्वपूर्ण धर्मग्रन्थ है जिसमें व्यक्ति के कर्तव्य-अकर्तव्य, गुरु-शिष्य, माता-पिता, पुत्र-पुत्री, व्यष्टि-समष्टि, पाप-पुण्य, दया-परोपकार, सत्कर्म तथा अतिथि-सत्कार आदि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है।

समाज के सभी व्यक्ति सद्भाव, समृद्धि एवं सुखपूर्वक जीवन-यापन कर सकें, इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर शास्त्र और संहिताएँ बनीं जो हमारे सनातन धरोहर हैं। हमारी वेद वाणी सर्वे भवन्तु सुखिनः का उद्देश्य है सभी प्राणी स्वस्थ एवं सुखी हों

* सहायक प्रोफेसर (अतिथि अध्यापक), इतिहास विभाग, रोहतास महिला कॉलेज, सासाराम सम्बद्ध वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

तथा सबका कल्याण हो। जीवन को सुखमय बनाने के लिए शान्ति की परम आवश्यकता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने न केवल मानव की अपितु समस्त प्राणी मात्र हेतु सुख समृद्धि एवं शान्ति की कामना की है।

यास्क ने “मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति मनुष्यः” के रूप में मनुष्य शब्द को परिभाषित किया है। मननपूर्वक कर्मनुष्ठानकर्ता को मनुष्य कहा जाता है वह कर्मों का कर्ता तथा भोक्ता दोनों है। “कुर्वन्नेवेह कर्मणि” इस श्रुति से कर्तव्यशीलता सर्वोपरि है, यह भाव प्रकट होता है। मानवीय मूल्यों का व्यापक स्वरूप वैदिक वाङ्मय में दृष्टिगोचर होता है। वेदों में स्पष्ट निर्देश है कि लौकिक जीवनचर्या को किस प्रकार संयमित करके व्यक्ति स्वयं को भगवत् प्राप्ति के योग्य बना सकता है? व्यक्ति के चित्तवृत्ति में प्रतिपल पवित्र, वरेण्य एवं उर्वर विचारधारा बहती रहे, जिससे उसके अन्तःकरण की सदृष्टियाँ जाग्रत होती रहे।

हमारी प्राचीन परम्पराएं एवं मानवीय मूल्य वैदिक वाङ्मय में परिकथित हैं, जिनके द्वारा ही धर्म का निरूपण होता है। धर्म प्रेरणा का वाचक है, जिसके द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। हमारी प्राचीन परम्पराएं एवं मानवीय मूल्य अधिकार एवं कर्तव्यबोध पर आधारित है, जो सत्य, धर्म, दया एवं दान आदि के प्रति समर्पित है। मातृदेव, पितृदेव, आचार्यदेव, अतिथिदेव आदि भावनाएं शाश्वत हैं जो आधुनिक युग में भी प्रासंगिकतापूर्ण हैं। चेतना के धरातल पर कर्मों के जो चित्र अंकित होते हैं, वे संस्कार कहे जाते हैं।

इस प्रकार संस्कारों एवं मूल्यों से निर्मित सांस्कृतिक परम्परा प्रधान एवं शाश्वत होती है। अपनी शाश्वत परम्पराओं एवं मानवीय मूल्यों से विच्छिन्न मानव वस्तुतः दानव है। शाश्वतता मनुष्यता की सर्वोपरि कसौटी है। मानव जीवन के चार पुरुषार्थों- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए परम्पराओं का समादर किया जाता है। इनकी आधुनिक संगति आवश्यक है। इस युग में प्राचीन मान्यताओं एवं मूल्यों की आधुनिकता आवश्यक है। हमारी आराधना, उपासना की मान्यताएं वैज्ञानिकता से पूर्ण है।

सम्प्रति शिक्षातंत्र के शैथिल्य के कारण मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन दृष्टिगत होता है। प्राचीन मूल्यों के अवमूल्यन के कारण मानवता पीड़ित हो रही है। चारों ओर शोषण की प्रवृत्ति और भ्रष्टाचार व्याप्त है। नेताओं के कालेधन विदेशी बैंकों में जमा हो रहे हैं। पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण किया जा रहा है। जीवन मूल्यों की इस व्यापक अवनति के कारण भारतीयता समाप्त हो रही है। भारतीय प्रजातंत्र की खामियाँ उजागर हो रही हैं। विश्वबन्धुत्व की भावना क्षीण हो रही है। इसके लिए प्राचीन और नवीन शिक्षातंत्र का समन्वय भी आवश्यक है।

भारतीय चिन्तन धारा में वैदिक मान्यताओं एवं परम्पराओं का विशिष्ट स्थान है। धर्मशास्त्रकारों ने वेद को धर्म का मूल कहा है- “वेदा धर्ममूलम्”। वेद भारतीय संस्कृति की आत्मा और मानव के लिए प्रकाशस्तम्भ है। वैदिक वाङ्मय हमेशा से पूरे विश्व को आकर्षित करता रहा है। वह किसी धर्म, समुदाय या वर्ग विशेष का नहीं वरन् सम्पूर्ण मानवता के सुख-शान्ति के लिए कामना करता है। वैदिक प्रार्थना एवं मंत्र सेवा, सम्मान, समर्पण आदि के साथ ही समत्व, ममत्व और विश्वबन्धुत्व आदि भावों को व्यक्त करते हैं। ये हमें मैत्री व अनन्य प्रेम का सन्देश देते रहे हैं। मानव मात्र के लिए वेद में कहा गया है कि सबके हृदय समान हों, सबके मन समान हों और कोई किसी से द्वेष न करें।

वेद में सभी से एकत्व की भावना स्थापित की गयी है, जिससे मोह, शोक और दुःख का अभाव हो जाता है। यह लौकिक जीवन की उत्कृष्टता से सम्बद्ध नैतिक भावनाओं एवं आदर्श सद्गुणों का भी अद्भुत सन्देश देता है जो जन-जन के हृदय में परस्पर स्नेह, प्रेम, मैत्री, सद्भाव तथा समन्वय की भावना को प्रसारित करता है। समन्वय भावना वैदिक मूल्यपरक शिक्षा का प्राण है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा का अंश है और सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है।

वर्तमान वैज्ञानिक एवं भौतिकवादी युग में यद्यपि शिक्षा का प्रसार तेजी से हो रहा है, परन्तु मूल्य आधारित शिक्षा का स्थान सिर्फ रोजगारपरक शिक्षा ने ले लिया है। वैदिक वाङ्मय में मानवीय मूल्यों का वर्णन व्यापक रूप में हुआ है। भारत एक मूल्य प्रधान देश रहा है। यहाँ के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक मूल्य पूरे संसार में प्रसिद्ध रहा है।

वास्तव में मानवीय मूल्यों की स्थापना ही वास्तविक शिक्षा है, जो हमारे लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिए परम आवश्यक है। शिक्षा का मूल उद्देश्य उच्च मानवीय मूल्यों की प्राप्ति है, जो प्राणी मात्र के प्रति दया, करुणा एवं सद्भाव के बिना संभव नहीं है। इन उच्च मूल्यों को अपनाकर व्यक्ति अच्छे कर्मों की आदत द्वारा सुसंस्कृत हो उत्तम चरित्र का निर्माण तथा अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है। सुशिक्षा के माध्यम से ऐसे समाज का निर्माण किया जा सकता है, जिसमें मानवीय

मूल्यों के प्रति लगाव हो तथा जिसमें परोपकार, सहयोग, सहिष्णुता, भ्रातृत्व, विनम्रता, संवेदनशीलता तथा न्यायपूर्णता आदि गुणों को अपने व्यवहारिक जीवन में उतारा जा सके।

वैदिक कालीन समाज अनुशासन, समानता, मर्यादा तथा सामाजिक आदर्श आदि मानदण्डों पर आधारित था। वैदिक मानव मानवीय मूल्यों के प्रति सदैव सजग एवं जागरूक रहा है। उनका जीवन विवेकी सम्मत् बुद्धि द्वारा सुस्थापित एक अनुशासनपूर्ण, संयमित, सत्य संकल्पित था, जीवन में प्रगति का वेग था तथा कल्याणमूलक मनन का चिरस्पन्दन था। हमारा सबसे बड़ा धर्म मानवता है। मानव प्रेम से संघटित होकर रहे और सबके सुख-दुःख आदि समान रूप से जाने तो विश्व का कल्याण अवश्यम्भावी है।

आप परस्पर मिल-जुलकर चलें, परस्पर मिलकर स्नेहपूर्वक वार्तालाप करें। आपके मन समान विचारधारा वाले होकर ज्ञानार्जन करें, जिस प्रकार पूर्वकाल में सज्जनों ने एक साथ मिलकर यज्ञादि कार्यों को करते हुए देवों की उपासना की थी, उसी प्रकार आप भी एकमत हो जाओ। सबके प्रति सम्भाव रखने से शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है। इस सम्भाव का वरणीय स्वरूप वेद में उपलब्ध होता है।

शास्त्रों में नैतिक मर्यादाओं का प्रतिपादन किया गया है, जिनके द्वारा मानवीय मूल्यों का निर्धारण होता है। मूल्यों के तात्पर्य “सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः”, “सत्यं शिवं सुन्दरम्”, “वसुधैव कुटुम्बकम्”, “अयं निजः परोवेन्ति गणना लघुचेतसां” जैसी अवधारणाओं से है। मानव में प्रेम, दया, सौहार्द्र की भावना होने पर ही वह समाज के विकास में सहायक हो सकता है तथा अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ व उन्नत बनाकर राष्ट्रीय परम्पराओं एवं संस्कृति को संरक्षित कर सकता है। यदि हम वैदिक वाङ्मय में निहित मानवीय मूल्यों को स्थापित करें तो मानवीय भावनाओं का विकास होगा तथा समाज भी सुदृढ़ विकास करेगा।

वैदिक जीवन सादगी एवं उच्चता से ओत-प्रोत था। वैदिक वाङ्मय में जहाँ एक ओर धार्मिक स्तुतियाँ हैं वही दूसरी ओर उन स्तुतियों में मानवीय मूल्यों के उदात्त प्रतिमान मणिवत् अनुस्यूत है। वैदिक वाङ्मय में विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान समग्र रूप में विद्यमान है। वैदिक जीवन उपासनामय था। भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच सम्यक् सामंजस्य से समस्त दुःखों का निदान सम्भव है। योग-क्षेमात्मक अभ्युदय तथा पारलौकिक सद्गति सर्वविधि कल्याण का मार्ग धर्म वैदिक वाङ्मय से ज्ञेय है।

वैदिक वाङ्मय में निहित मानवीय मूल्यों का सम्बन्ध किसी युग-विशेष, देश-विशेष या जाति-विशेष से न होकर मानव विकास एवं कल्याण की अन्तश्चेतना से है। पारस्परिक एकता, सहयोग, सद्भाव एवं संगठन आदि के अनेक मूल्य वेद मंत्रों में सुरक्षित है। यद्यपि समय परिवर्तन के साथ-साथ मानव की मान्यताएँ सिद्धान्त, परिवर्तित होते रहे हैं, किन्तु वैदिक वाङ्मय के अधिकांश मानवीय मूल्य आज भी शाश्वत, अपरिवर्तित एवं प्रगति में सहायक है, जिनके अभाव में मानव जीवन अधूरा सा प्रतीत होता है।

उदस्त भावनाओं से भावित वैदिक धर्म विषमता रहित, शोषण मुक्त, मानवीय मूल्यों से युक्त आदर्श समाज की संकल्पना को चरितार्थ कर सकता है। एतदर्थ वैदिक धर्म में वर्णित मानवीय मूल्य सनातन एवं सार्वभौम है, जिसके मौलिक सिद्धान्तों को मनसा, वाचा व कर्मणा अपनाये बिना समाज का पूर्ण कल्याण तथा राष्ट्र का सम्यक् विकास सम्भव नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. मनुस्मृति- 2/3
2. शुक्ल यजुर्वेद- 36/17
3. निरुक्त-यास्क
4. सामवेद-उत्तरार्चिक, अध्याय 13, खण्ड 4
5. बृहदेवता, अध्याय-7
6. गौतम धर्मसूत्र- 1/1
7. ऋग्वेद- 10/191/3
8. यजुर्वेद- 32/8



नई पीढ़ी में सांस्कृतिक पहचान का संकट

सरिता कुमारी*

सारांश

आज की नई पीढ़ी तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभाव के चलते सांस्कृतिक पहचान के गंभीर संकट का सामना कर रही है। सांस्कृतिक पहचान वह महत्वपूर्ण तत्व है, जो व्यक्ति और समाज को उनकी परंपराओं, मूल्यों, भाषा, धर्म और रीति-रिवाजों से जोड़ता है। यह पहचान न केवल व्यक्ति को उसकी जड़ों से जोड़े रखती है, बल्कि उसे एक अद्वितीय पहचान भी प्रदान करती है। हालाँकि, वैश्वीकरण के कारण परंपरागत संस्कृति धीरे-धीरे कमजोर हो रही है और पश्चिमी जीवनशैली को प्राथमिकता दी जा रही है। सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म ने युवाओं के सोचने और जीने के तरीके में आमूलचूल परिवर्तन किया है, जहाँ स्थानीय संस्कृति की जगह वैश्विक प्रवृत्तियों ने ले ली है। इसके अतिरिक्त, शहरीकरण ने ग्रामीण और सामुदायिक जीवनशैली को समाप्त करते हुए पारंपरिक मूल्यों और रीति-रिवाजों को कमजोर कर दिया है। इस संकट के परिणामस्वरूप नई पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूर होती जा रही है। इसके प्रभाव न केवल व्यक्तिगत स्तर पर, जैसे कि मानसिक संघर्ष और पहचान का अभाव, बल्कि सामाजिक और सामुदायिक स्तर पर भी देखे जा सकते हैं। पारंपरिक विरासत के प्रति उदासीनता और सांस्कृतिक एकता में कमी भी इस संकट के महत्वपूर्ण परिणाम हैं। इस समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है कि युवाओं को उनकी संस्कृति के महत्व को समझाया जाए। पारंपरिक कला, साहित्य, और संगीत को बढ़ावा देने के साथ-साथ शिक्षा प्रणाली में सांस्कृतिक पाठ्यक्रमों को शामिल करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। परिवार और समाज को भी अपनी भूमिका निभानी होगी और सांस्कृतिक गतिविधियों को पुनर्जीवित करना होगा। नई पीढ़ी में सांस्कृतिक पहचान का यह संकट न केवल व्यक्तियों की पहचान और आत्मसम्मान पर प्रभाव डालता है, बल्कि समाज और राष्ट्र के समग्र विकास के लिए भी एक चुनौती बन जाता है। इसे सुलझाने के लिए व्यापक और सामूहिक प्रयासों की सख्त आवश्यकता है।

मुख्य शब्द- सांस्कृतिक पहचान, नई पीढ़ी, वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति, शहरीकरण, पारंपरिक मूल्य, सांस्कृतिक संकट, सांस्कृतिक पुनर्जीवन, मानसिक संघर्ष, सांस्कृतिक एकता।

परिचय

सांस्कृतिक पहचान एक समाज और व्यक्ति की अद्वितीयता का प्रतिबिंब है। यह उनकी परंपराओं, मूल्यों, भाषा, धर्म और रीति-रिवाजों का मिश्रण है, जो उन्हें उनकी जड़ों से जोड़ती है। यह पहचान न केवल समाज और व्यक्ति को आत्मसम्मान और विशिष्टता प्रदान करती है, बल्कि उन्हें एक व्यापक सांस्कृतिक समुदाय से भी जोड़ती है। वर्तमान समय में, नई पीढ़ी तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभाव के चलते सांस्कृतिक पहचान के गंभीर संकट का सामना कर रही है।

सांस्कृतिक पहचान का यह संकट युवाओं को अपनी जड़ों और परंपराओं से दूर कर रहा है। इसके कारण वे न केवल मानसिक संघर्ष का अनुभव कर रहे हैं, बल्कि उनकी सामुदायिक और राष्ट्रीय पहचान भी कमजोर हो रही है। यह समस्या केवल व्यक्तिगत स्तर पर ही सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज और राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर और एकता के लिए भी एक चुनौती बन गई है। इस स्थिति को समझने और इसके समाधान के लिए जागरूकता और सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है।

सांस्कृतिक पहचान का महत्व वास्तव में बहुत गहरा और विविध है। यह किसी भी समाज की आत्मा होती है और यह उस समाज की सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक संरचना को आकार देती है। सांस्कृतिक पहचान एक ऐसे धागे की तरह होती है, जो विभिन्न व्यक्तियों, समुदायों और समाजों को जोड़ती है और उन्हें उनके इतिहास, परंपराओं, मान्यताओं और व्यवहारिकता से अवगत कराती है।

* शोध छात्रा, समाजशास्त्र, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सांस्कृतिक पहचान के घटक

1. परंपराएँ और मूल्य- परंपराएँ समाज की नैतिक और व्यवहारिक धारा का निर्धारण करती हैं। ये वे नियम और मान्यताएँ हैं, जिन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया जाता है। परंपराएँ समाज के भीतर व्यक्तिगत और सामूहिक व्यवहार की दिशा तय करती हैं और यह समाज को अपने इतिहास और संस्कारों से जोड़ने का काम करती हैं। उदाहरण स्वरूप, भारतीय समाज में श्रद्धा, सम्मान, और परिवार के प्रति जिम्मेदारी जैसे मूल्य अत्यधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

2. भाषा और साहित्य- भाषा केवल संवाद का एक साधन नहीं है, बल्कि यह समाज की सांस्कृतिक पहचान का अहम हिस्सा है। यह समाज की सोच, दृष्टिकोण और जीवन जीने के तरीके को व्यक्त करने का माध्यम होती है। साहित्य भाषा का माध्यम होते हुए समाज के विचारों, आस्थाओं, और संघर्षों को संरक्षित करता है। भारतीय भाषाओं का साहित्य, जैसे हिंदी, तमिल, पंजाबी आदि, न केवल समाज के ऐतिहासिक पहलुओं को दर्शाता है, बल्कि इसके माध्यम से समाज की सांस्कृतिक विरासत और आदर्शों को भी संरक्षित किया जाता है।

3. धर्म और आध्यात्मिकता- धर्म और आध्यात्मिकता, किसी भी समाज के नैतिक और दार्शनिक दृष्टिकोण को आकार देते हैं। यह समाज के जीवन के उद्देश्य, कर्म, और मूल्यों को परिभाषित करते हैं। समाज की धार्मिक मान्यताएँ और धार्मिक प्रथाएँ लोगों के विचारों और कर्मों में दिशा देने का कार्य करती हैं। उदाहरण स्वरूप, हिंदू धर्म में अहिंसा, सत्य और शांति का महत्व है, जबकि इस्लाम में भी धर्म के प्रति आस्था और नमाज के रूप में प्रार्थना का महत्व है। धर्म व्यक्ति को उसके कर्तव्यों और जिम्मेदारियों से अवगत कराता है।

4. रीति-रिवाज और त्यौहार- रिवाज और त्यौहार एक समाज को एकता और सहयोग के सूत्र में बांधते हैं। यह समाज की सामूहिक पहचान का हिस्सा होते हैं और समाज के भीतर सांस्कृतिक और सामाजिक बंधन को मजबूत करते हैं। त्यौहारों के माध्यम से लोग अपने खुशियों को साझा करते हैं, एक-दूसरे के साथ समय बिताते हैं और परंपराओं का पालन करते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में दीवाली, होली, और ईद जैसे त्यौहार समाज को एकजुट करने का कार्य करते हैं। इन पर्वों और रिवाजों में न केवल धार्मिक भावना होती है, बल्कि यह सामूहिक भावना, प्रेम और भाईचारे का भी प्रतीक होते हैं।

सांस्कृतिक पहचान के ये घटक समाज की सांस्कृतिक नींव को मजबूती प्रदान करते हैं और समाज में सामूहिक भावना और समझ को बढ़ाते हैं। यह किसी भी समाज के अस्तित्व और विकास के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं, क्योंकि यह न केवल व्यक्तिगत पहचान को उजागर करते हैं, बल्कि समाज की धरोहर और विरासत को भी संरक्षित रखते हैं।

सांस्कृतिक पहचान पर संकट के कारण

1. वैश्वीकरण का प्रभाव

वैश्वीकरण ने पूरी दुनिया को एक वैश्विक गांव में बदल दिया है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियाँ आपस में जुड़ी हुई हैं। इस प्रक्रिया ने व्यापार, संचार, और संस्कृति के आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया है। हालांकि, इसका नकारात्मक प्रभाव यह है कि स्थानीय संस्कृतियाँ धीरे-धीरे कमजोर हो रही हैं और पश्चिमी जीवनशैली को अधिक प्राथमिकता दी जा रही है। पश्चिमी फैशन, फास्ट फूड, और मनोरंजन जैसे तत्वों ने भारतीय समाज की पारंपरिक जीवनशैली को प्रभावित किया है। उदाहरण के रूप में, भारतीय युवाओं के बीच पश्चिमी कपड़े पहनने का रुझान बढ़ गया है, जो पहले पारंपरिक भारतीय परिधानों की जगह ले रहे हैं। साथ ही, खाने-पीने की आदतें भी बदल रही हैं, जहाँ परंपरागत भारतीय भोजन को छोड़कर फास्ट फूड जैसे पिज्जा, बर्गर आदि अधिक लोकप्रिय हो गए हैं।

इस प्रभाव से पारंपरिक रीति-रिवाजों और मूल्यों का हास हो रहा है। अब लोग परिवार के साथ समय बिताने की बजाय बाहर की दुनिया में खुद को अधिक व्यस्त रखते हैं, जिससे परिवारों के बीच सम्बन्ध कमजोर हो रहे हैं।

2. सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रभाव

सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म ने युवाओं के सोचने और जीने के तरीके में आमूलचूल परिवर्तन किया है। सोशल मीडिया के माध्यम से वैश्विक विचार और जीवनशैली को अपनाने का एक नया दौर शुरू हुआ है। सोशल मीडिया पर समय बिताने से युवाओं में मानसिक संघर्ष बढ़ रहा है। उदाहरण के लिए, युवाओं का विदेशी संस्कृति की नकल करना, जो

उनकी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से उन्हें दूर कर रहा है, एक आम प्रवृत्ति बन गई है। TikTok और Instagram जैसे प्लेटफॉर्म पर विदेशी ट्रेंड्स और जीवनशैली को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे भारतीय युवा अपनी सांस्कृतिक पहचान को भूलकर बाहरी दुनिया से प्रभावित होते हैं।

यह मानसिक स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है, क्योंकि सोशल मीडिया पर सफलता, सुंदरता, और जीवनशैली के दिखावे से लोग अपनी असल जिंदगी से असंतुष्ट होने लगते हैं। यह 'FOMO' (Fear of Missing Out) की भावना को बढ़ाता है, जो मानसिक तनाव का कारण बनती है।

3. शहरीकरण

शहरीकरण ने ग्रामीण और सामुदायिक जीवनशैली को समाप्त करते हुए पारंपरिक मूल्यों को कमजोर कर दिया है। शहरी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ती जनसंख्या, बढ़ती इमारतों और भीड़-भाड़ ने परिवारों को पहले जैसे सामूहिक रूप से रहने की जगह नहीं दी। शहरीकरण के कारण परिवारों के आकार में कमी आई है, जिससे संयुक्त परिवार की अवधारणा धीरे-धीरे समाप्त हो रही है और छोटे, नाभिकीय परिवारों का उदय हुआ है। इसके साथ ही, सामूहिक गतिविधियों जैसे मेल-मिलाप, त्योहारों की सामूहिक भागीदारी, आदि में कमी आ गई है। यह सामूहिकता की भावना को कमजोर कर रहा है, जो पारंपरिक भारतीय समाज का एक अहम हिस्सा थी।

4. शिक्षा प्रणाली में सांस्कृतिक शिक्षा का अभाव

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सांस्कृतिक पाठ्यक्रमों की कमी के कारण युवा अपनी जड़ों से दूर हो रहे हैं। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में अधिकतर विज्ञान, गणित, और अन्य व्यावसायिक पाठ्यक्रमों पर जोर दिया जाता है, जबकि सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और पारंपरिक शिक्षा को उपेक्षित किया जाता है। युवाओं को उनकी संस्कृति, इतिहास, और परंपराओं के बारे में सीखने का पर्याप्त अवसर नहीं मिलता, जिससे वे अपनी पहचान को खोने लगे हैं। यह प्रवृत्ति युवा पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक धरोहर से अलग कर रही है और वैश्विक प्रभावों से प्रभावित करने में मदद कर रही है।

संकट के परिणाम

1. व्यक्तिगत स्तर पर

संकट व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक स्थिति पर गहरा प्रभाव डालता है। इसका सबसे पहला परिणाम मानसिक संघर्ष के रूप में देखा जाता है, जहाँ व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्य और दिशा को लेकर भ्रमित हो सकता है। यह पहचान का संकट उत्पन्न करता है, क्योंकि व्यक्ति यह नहीं समझ पाता कि उसका स्थान समाज और संस्कृति में क्या है।

साथ ही, आत्मसम्मान में कमी आ सकती है। जब कोई व्यक्ति अपने आस-पास के संकटों या चुनौतियों का सामना करता है, तो उसका आत्मविश्वास कमजोर हो सकता है। इस स्थिति में व्यक्ति का आत्ममूल्य कम हो जाता है, और वह खुद को समाज में असहाय महसूस करने लगता है। आत्मसम्मान का यह संकट व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर दीर्घकालिक असर डाल सकता है, जिससे तनाव और अवसाद जैसी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

2. सामाजिक और सामुदायिक स्तर पर

संकट का सामाजिक और सामुदायिक स्तर पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। जब कोई बड़ा संकट समाज में आता है, तो सांस्कृतिक एकता में कमी हो सकती है। लोग एक दूसरे से दूर हो सकते हैं, और सामूहिक रूप से एकजुट होने के बजाय, उनमें आपसी विवाद और मतभेद बढ़ सकते हैं। यह सांस्कृतिक विविधताओं को बढ़ावा देता है, लेकिन साथ ही यह समाज की एकता को कमजोर भी करता है। संकट के कारण पारंपरिक विरासत और संस्कृतियों के प्रति उदासीनता बढ़ सकती है। जब लोग अपने संघर्षों और कठिनाइयों से निपटने में व्यस्त रहते हैं, तो वे अपने पारंपरिक रीति-रिवाजों, संस्कृति, और समाज के प्राचीन मूल्यों को नजरअंदाज करने लगते हैं। यह संस्कृति के समृद्ध इतिहास और धरोहर के खोने का कारण बन सकता है, और आने वाली पीढ़ियों को इससे दूर कर सकता है।

3. राष्ट्रीय स्तर पर

राष्ट्रीय स्तर पर, संकट के परिणाम कहीं अधिक गंभीर हो सकते हैं। सांस्कृतिक धरोहर की हानि एक महत्वपूर्ण नतीजा है। जब देश की सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान कमजोर होती है, तो यह एक राष्ट्र के रूप में उसकी पहचान को संकट में डाल देता है। यदि पारंपरिक कला, साहित्य, और सांस्कृतिक रीति-रिवाजों का संरक्षण नहीं किया जाता, तो राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर खो सकती है, जो उसकी अनूठी पहचान का हिस्सा है। साथ ही, संकट समाज और राष्ट्र के विकास में बाधाएं उत्पन्न करता है। जब लोग अपने आप में ही उलझे होते हैं और सामाजिक समस्याओं का समाधान नहीं ढूंढ पाते, तो सामूहिक विकास और समृद्धि की राह में रुकावटें आती हैं। इस प्रकार, संकट केवल व्यक्तिगत या सामुदायिक जीवन को ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रगति को भी प्रभावित करता है।

समाधान के उपाय

1. शिक्षा प्रणाली में सुधार

शिक्षा प्रणाली में सांस्कृतिक पाठ्यक्रमों को शामिल करने से विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति, साहित्य, और कला के प्रति जागरूकता बढ़ेगी।

- स्थानीय साहित्य, कला और इतिहास को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना। इसे लेकर पाठ्यक्रम में ऐसी सामग्री जोड़ी जा सकती है, जो विद्यार्थियों को उनके क्षेत्रीय साहित्य, कला, और इतिहास के बारे में सिखाए। इससे न केवल उनका सांस्कृतिक ज्ञान बढ़ेगा, बल्कि वे अपनी जड़ों से भी जुड़ेंगे।
- समाजसेवी संगठनों और विद्वानों के सहयोग से कक्षाएँ और कार्यशालाएँ आयोजित करना। इन कार्यशालाओं में पारंपरिक कला और साहित्य के महत्व को समझाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, हिंदी, संस्कृत, और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करवाना।

2. परंपरागत कला और साहित्य को बढ़ावा

पारंपरिक कला और साहित्य का प्रचार करना अत्यंत आवश्यक है, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ इससे परिचित हो सकें और इसका संरक्षण हो सके।

- लोक नृत्य और नाटकों का आयोजन। लोक कला को लोकप्रिय बनाने के लिए नृत्य, संगीत, और नाटक जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। इसमें विद्यार्थियों और युवाओं को मंच पर लाकर संस्कृति से जोड़ने का अवसर मिल सकता है।
- सांस्कृतिक मेले और प्रदर्शनी। भारतीय कला और साहित्य की प्रदर्शनी आयोजित करने से लोगों को यह जानने का मौका मिलेगा कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर कितनी समृद्ध है। इसमें स्थानीय कारीगरों के उत्पादों को भी प्रदर्शित किया जा सकता है।

3. सांस्कृतिक गतिविधियों का पुनर्जीवन

समाज और परिवारों को इस दिशा में योगदान देने की आवश्यकता है। पारंपरिक त्यौहारों और सांस्कृतिक गतिविधियों का पुनर्जीवित करने से यह संस्कृति को जीवित रखने में मदद मिल सकती है।

- पारंपरिक त्यौहारों का आयोजन। जो पारंपरिक त्यौहार अब धीरे-धीरे कम हो गए हैं, उन्हें फिर से जीवित करना होगा। उदाहरण के लिए, विभिन्न क्षेत्रीय त्यौहारों के आयोजन से सांस्कृतिक विविधता का सम्मान होता है।
- समाज में सांस्कृतिक जागरूकता फैलाना। परिवारों को अपने बच्चों को पारंपरिक खेल, लोक गीत, और कला के बारे में शिक्षित करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

4. मीडिया का सकारात्मक उपयोग

आजकल सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रभाव बहुत बड़ा है। इसका उपयोग सांस्कृतिक धरोहर के प्रचार-प्रसार के लिए किया जा सकता है।

- डिजिटल प्लेटफॉर्म पर सांस्कृतिक सामग्री का प्रसार. YouTube, Instagram, और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर सांस्कृतिक वीडियो, कार्यशालाएँ, और लाइव प्रदर्शनी आयोजित की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, लोक संगीत, कला, और नृत्य के वीडियो अपलोड करने से इनकी पहुँच युवा पीढ़ी तक बढ़ सकती है।
- ऑनलाइन शिक्षा और कोर्स. डिजिटल माध्यम से सांस्कृतिक साहित्य और कला पर ऑनलाइन कोर्स भी चलाए जा सकते हैं, जिससे अधिक लोगों तक जानकारी पहुँच सके।

इन उपायों से हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को सहेजने और बढ़ावा देने में सफल हो सकते हैं, और आने वाली पीढ़ियाँ इस धरोहर से जुड़ी रहेंगी।

निष्कर्ष

नई पीढ़ी में सांस्कृतिक पहचान का यह संकट न केवल व्यक्तियों की पहचान और आत्मसम्मान पर प्रभाव डालता है, बल्कि समाज और राष्ट्र के समग्र विकास के लिए भी एक चुनौती बन जाता है। इसे सुलझाने के लिए व्यापक और सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। सांस्कृतिक पुनर्जीवन और जागरूकता के माध्यम से इस संकट का समाधान संभव है। इस संकट का समाधान केवल शैक्षिक संस्थाओं, सरकार और समाज के विभिन्न वर्गों के सहयोग से ही संभव है। यदि हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने के साथ-साथ उसे नए संदर्भों में प्रस्तुत करें, तो न केवल युवाओं को अपनी जड़ों से जोड़ा जा सकता है, बल्कि समाज में सामूहिक पहचान और गर्व का भी निर्माण होगा। यह प्रक्रिया न केवल समाज के सामाजिक और मानसिक विकास में सहायक होगी, बल्कि राष्ट्र की संस्कृति को मजबूत बनाने का एक प्रमुख कदम साबित होगी।

संदर्भ

1. शर्मा, ए. (2021). वैश्वीकरण और सांस्कृतिक संकट. नई दिल्ली : प्रकाशन मंडला।
2. गुप्ता, पी. (2019). भारत की सांस्कृतिक धरोहर. मुंबई : सांस्कृतिक प्रकाशन।
3. वर्मा, आर. (2020). सोशल मीडिया का युवा पीढ़ी पर प्रभाव. समाज और संस्कृति पत्रिका, 12(3), 45-50।
4. सिंह, एस. (2022). शहरीकरण और सांस्कृतिक बदलाव. पटना : ज्ञानदीप प्रकाशन।



छत्तीसगढ़ का अनुष्ठानिक पर्व “गौरा-गौरी”

डॉ. दीपशिखा पटेल*

छत्तीसगढ़ में देवी देवताओं के आदिम रूप में यहां शिव और पार्वती को ही भिन्न-भिन्न रूपों में पूजन किया जाता है। जिसे छत्तीसगढ़ में अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है। जैसे- बूढ़ा देव, बड़ा देव, डोकरा देव, दूल्हा देव, कंकालिन, हिंगलाजीन, शीतलाबूढ़ी दाई, दन्तेश्वरी, बम्लेश्वरी आदि। छत्तीसगढ़ के मैदानी क्षेत्र में (राजनांदगांव, दुर्ग, रायपुर, धमतरी, बिलासपुर, रायगढ़) शिव और पार्वती को गौरा-गौरी के स्वरूप में पूजा जाता है।

गौरा-गौरी से संबंधित प्रचलित स्थानीय कथाएँ—

“इस अंचल में गौरा पर्व दीपावली के पर्याय के रूप में गोंड या कंवर आदिम जाति के लोग पूरी तन्मयता के साथ मनाते हैं। गौरा पूजा का प्रारंभ मूलतः कार्तिक अमावस्या के 7 दिन पूर्व से होने की मान्यता है किन्तु कहीं-कहीं 5 या 3 दिन पूर्व भी प्रारंभ होने का प्रचलन पाया जाता है। दिनों का यह अन्तर संभवतः सामर्थ्य पर निर्भर करता प्रतीत होता है। छत्तीसगढ़ में शंकर को “गौरा” और पार्वती को “गौरी” कहा जाता है। शिव जी आदिम जातियों के आराध्य देव हैं। उनके धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में शंकर भगवान को “बड़ा देव” की प्रतिष्ठापूर्ण मान्यता प्राप्त है। गोंड समाज में गौरा पूजा की यह प्रथा कैसे चली, इस विषय में एक किवदन्ती है कि “एक समय भगवान (बड़ादेव) ने बैकुण्ठ में “करण सेनी (जंवारा) उत्सव” का आयोजन किया। इस उत्सव में गोंड जाति के मुखियों, मांझियों को नाचने-गाने के लिए आमंत्रित किया। इस उत्सव में नाना प्रकार के व्यंजनों एवं मदिरा पान से इनका भरपूर सत्कार किया गया। अनेक प्रकार के नृत्य नाट्य इनके द्वारा मग्न होकर रात भर किए गए। गोंडों ने इस अवसर पर शंकर-पार्वती का विवाह प्रसंग भी रचाया, जो अत्यधिक सराहा गया। प्रातः भगवान ने इन्हें ससम्मान बिदा किया। गौरा पूजा वास्तव में शंकर पार्वती के विवाह का प्रसंग है। गौरा बैठाने की पृष्ठभूमि में कोई न कोई मनौती या मानता होती है।”¹

“दीपावली के अवसर पर किये जाने वाले गौरा अथवा गौरी या पार्वती और महादेव के पूजन अवसर पर नारियों द्वारा गौरा गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में देवी-देवताओं का आवाहन, बढ़ई से गौरा एवं ईसर (ईश्वर महादेव) बना देने की प्रार्थना, महादेव की बारात आदि का वर्णन होता है। इस अवसर पर मोहरी, सिंगबाजा, गुदुम, दफड़ा, टिमकी, झांझ, मंजीरा, ढोलक, मांदर आदि वाद्यों का उपयोग किया जाता है।”²

गौरा-गौरी का अनुष्ठानिक रस्म—

प्रायः सभी गावों में “गउरा गुडी” होता है। जो गाँव का सार्वजनिक स्थान होता है। जहाँ पर गौरा-गौरी की मूर्ति को पूजा-अर्चना के करने लिये स्थापित किया जाता है। गौरा-गौरी की पूजा एक अनुष्ठानिक पर्व है जिसमें पूजा पाठ करते समय महिलाओं के द्वारा गीत गाये जाते हैं और रीति रिवाज के अनुसार अलग-अलग चरणों में सम्पन्न होता है जो निम्नानुसार है—

1. फूल कूचरना एवं करसा परधाना—

कार्तिक अमावस्या के दो दिन पूर्व गांव में स्थित गौरा गुडी अर्थात् गउरा चौरा या चबूतरा में जाकर महिलायें जिन्हें सात सुवासिन कहते हैं और साथ में बैगा के द्वारा हल्दी, सुपाड़ी, मुर्गी का अण्डा और सात प्रकार के फूल को उल्टा मूसल से छः बार स्पर्श करवा कर सातवें बार में उसे कूचल देते हैं। जिसे फूल कूचरना कहते हैं। फिर उसे गौरा चौरा में ही मिट्टी में दबा दिया जाता है। रात में गाँव की महिलायें सबसे पहले गाँव के मुखिया के घर करसा परधाने के लिये जाती हैं। उसके पश्चात् गाँव के सभी घरों में

* सहायक प्राध्यापक, लोकसंगीत एवं कला संकाय, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़

जा-जाकर पूजा की सामग्री एकत्र करती हैं। दीपावली जिसे 'सुरहोती' कहते हैं रात्रि को गौरा एवं गौरी की स्थापना करने के लिये अपने-अपने घरों से चावल, हल्दी और लोक विधि से सजाकर कलसा को गौरा गुड़ी में रखते हैं।

“गाँव में नेताम और मरकाम के घरों से विवाह सम्पन्न करने के लिये चुलमाटी जाते हैं। चुलमाटी गाँव के बाहर किसी पवित्र स्थान जो शीतला मंदिर या गौठान हो सकता है। जिस जगह पर कभी हल ना चलाया गया हो इस स्थान को कुंवारी भूमि के नाम से जाना जाता है।”³

चुलमाटी के समय बांस से बने परा टोकनी, साबल लेकर सुवांसा तथा सुवांसिने जाते हैं। सिंग बाजा, दफड़ा, टिमकी, मोहरी लोकवाद्य बजाया जाता है। सामान्यतः विवाह संस्कार के अंतर्गत चुलमाटी में मिट्टी खोदते समय जो गीत गाये जाते हैं उसी गीत को महिलायें गाती हैं। चुलमाटी से खोदी गई मिट्टी लाकर गौरा-गौरी की मूर्ति का निर्माण करते हैं। इस अवसर पर भी गीत गाने की परम्परा है।

जोहार गीत

“जोहर-जोहर मोर गउरा-गउरी हो, सेवरी लागंव मैं तोर
गउरी गउरा के मड़वा छवाएँव ओ, झूले ओ परेवना के हंसा
हंसा चरथे मोर मूंगा अउ मोती फोले चना के दार”⁴

करसा परधाने का गीत

“उठव उठव बहिनी मोर अंगना बटोरव, ओ अंगना बटोरव
साते संगी आये लेनहारे ओ बहिनी,
करसा सिंगारो बहिनी रिगबिग रिगबिग, ओ रिगबिग रिगबिग
बहिनी सिंगारो दीदी, गोमची बरन के
करसा सिंगारत दीदी, एक दिन लगथे ओ, एक दिन लगथे
बहिनी सिंगारत दीदी, महिना दिन लगथे”⁵

2. गौरा जगाना –

चुलमाटी से लायी गई मिट्टी के द्वारा गौरा-गौरी की मूर्ति बनाकर परघाते हुये गौरा चौरा तक लाया जाता है प्रतिमाओं को गौरा पाटा में बिठाया जाता है जो लकड़ी से बना रहता है। गौरा के लिये अलग पाटा एवं गौरी के लिये अलग पाटा या पीढ़ा होता है। गौरा एवं गौरी को चमकीले कागज चिपका कर सजाया एवं संवारा जाता है। चमकीले कागज को सोनपान कहते हैं। गौरा-गौरी जगाने से संबंधित गीत महिलायें गाती हैं। गौरा-गौरी व अन्य ग्राम देवी देवताओं तथा ग्राम के बैगा मुखिया को गीतों के माध्यम से जागृत कर आह्वान किया जाता है।

गौरा जगाने का गीत

“गौरा जागे मोर गौरी जागे, जागे ओ शहर कई लोग
बाजा जागे मोर जागे ओ बजनिया, जागे ओ गवइया लोग
बैगा जागे मोर बैगिन जागे, जागे ओ शहर कई लोग
झाई झुई झूले झरे, सेजरी बिछाये, जागो जागो मोर गांव के गौटिया,
जागे ओ शहर कई लोग”⁶

3. चावल चढ़ाना :-

लोक जीवन में मिट्टी का बहुत महत्व है। मेहनतकस किसान मिट्टी में मिट्टी की तरह मिलकर मेहनत करके धरती से सोना उपजाता है। अपनी मेहनत से मिट्टी को मनचाहा स्वरूप देता है। लोक का हंसना, रोना, गाना, जीवन-मृत्यु, सुख-दुख सब मिट्टी में ही केन्द्रित है। उनके देवी और देवता तथा आस्था और विश्वास गौरी-गौरा की पूजा अर्चना पर समर्पित है। गौरी-गौरा के पूजा अर्चना के लिये

फूल-पत्री व चावल चढ़ाये जाते हैं। चावल चढ़ाते समय एक से सात पत्री चढ़ाते तक संबोधन करके गीत गाने की परम्परा है।

चावल चढ़ाने का गीत

“एक पतरी रैनी भैनी, राय रतन हो दुर्गा देवी।

तोरे शीतल छांव माय, चार चौकी चंदन पिढुली।

गौरी के होथय मान तुम्हारे, जइसे गौरी के ओ मान तुम्हारे।

तइसे करव असनान, कोरवन असन डोहरी, परवा छछल गये डार”⁷

4. देवता चढ़ाना —

गौरा पूजा के समय सींगबाजा, दफड़ा, मोहरी के साथ गाये जाने वाले गीत से मन तथा प्राण में उमंग तथा उल्लास के भाव का संचार होता है। शरीर संगीत से आवेशित हो कांपने लगता है। गौरा परधौनी जितना उल्लास भरा होता है। उतना ही भावपूर्ण और रोमांचक होता है। इसे देव चढ़ाना या देवता चढ़ना या देव आना कहा जाता है। देवी-देवताओं की भावात्मक रूप महिला या पुरुष पर आती है। जिस महिला को देव आता है। बैगा द्वारा उसे माई करसा या मुख्य करसा अर्थात् कलश को दिया जाता है। फिर वह महिला भाव विभोर होकर माई करसा को लेकर गौरा चौरा का भ्रमण करती है। यह भावात्मक छाया जिस पर आती है। लोग उससे प्रश्न पूछकर अपनी समस्याओं के निराकरण का उपाय पूछते हैं। इस अनुष्ठान में सांट का विशेष महत्व रहता है सांट गमछा कांशी अर्थात् कुश के घास आदि को बट कर बनाया जाता है। इसे देवता चढ़ा आदमी पकड़कर अपने शरीर को पीटता है। ऐसी मान्यता है सांट पीटते समय पीड़ा नहीं होती। पुरुष अपने हाथों में जलते हुए बत्ती जो तेल से भीगा रहता है उस जलते हुये तेल की बूंद को हथेली में गिराता है उसे बोड़ा लेना कहते हैं।

देवता चढ़ाने का गीत

“लाले लाले परसा लाले हे खम्हार

लाले हे ईसर राजा, घोड़वा सवार

घोड़वा कुदावत ईसर पड़या ओ लरकिगे

गिर परे माथा ढेला फूले हो ना

गिरे बर गिरेंव भइया गिरन झनि देबे गा

झोंकि लेबे अचरा लमाये हो ना

बरे बिहई ईसर सब दिन सब दिन

तुम हम डुमरी के फूले हो ना”⁸

5. डड़ैया झूपना —

सभी भक्त जनों के द्वारा ग्राम के सभी देवताओं को निमंत्रण देकर बुलाया जाता है। देवता चढ़े व्यक्ति के रूप में उनकी शोभा अति मनोहारी लग रही है इस समय जोशिला गीत गाया जाता है। जिसे सुनकर देवता चढ़ा हुआ व्यक्ति झूम-झूम कर नाचने लगता है। इसे डड़ैया चढ़ना कहा जाता है। यह क्रिया गौरा-गौरी को मौर सौंपने के समय निर्मित होता है। हर्ष एवं उल्लास वातावरण रहता है। होम धूप से देवता चढ़े डड़ैया को शांत किया जाता है। इस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गाँव के सभी देवी-देवता गण अलग-अलग स्वरूपों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर आसन ग्रहण किये हुये सभी लोगों को अपना आशीर्वाद दे रहें हैं।

डड़ैया झूपने का गीत

“बारे डड़ैया मोर बड़ा रंगरेला, चढ़े ओ लिमुन कई डार

लिमुवा के डारा टूटी-फूटी जइहैं, तिरनी गये छरियाय

कौन सकेले मोर नव मन तिरनी, कौन सकेले लमकेस

भइया सकेले नव मन तिरनी, भौजी सकेले लमकेस”⁹

6. गौरा सुताना –

कार्तिक अमावस्या की रात्रि को सारा गांव लोक आस्था से परिपूरित रहता है। गाँव के सभी नर-नारियों में लोक में रचे बसे इस उत्सव का आनन्द का दुर्लभ दर्शन देखने को मिलता है। गाँव के प्रत्येक नारी पुरुष ईसर-गौरा के लोक रूप में आनन्द विभोर हैं। सभी के मन में आनन्द है तो दूसरी ओर मन के किसी कोने में ईसर-गौरा बिछुड़ने का दुख भी व्याप्त है। देव उतर जाने के पश्चात् रात्रि में सभी गाँव के लोग अपने-अपने घरों की ओर प्रस्थान करते हैं। अपने-अपने घर जाने से पूर्व ईसर गौरा को सुलाने का भाव पूर्ण गीत गाया जाता है। जिसे गौरा सुताना कहते हैं।

गौरा सुलाने का गीत

“गौरा सुतय मोर गौरी सुतय, सुतय शहर कई लोग
बाजा सुतय वो मोर सुतय ओ बजनिया
सुतय ओ गवइया लोग
बैगा सुतय मोर बैगिन सुतय, सुतय शहर कई लोग”¹⁰

7. विसर्जन :-

गौरा-गौरी पूजा का यह पर्व छत्तीसगढ़ के आनुष्ठानिक पर्व का वार्षिक आयोजन है इसमें लोक संस्कृति के साथ लोक परम्परा का गहरा जुड़ाव है। लोकसंस्कृति एवं लोक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने व लोक आस्था खण्डित ना होने पाये इस दृष्टि से गाँव के सभी जन प्रातः काल गौरा गुड़ी के समीप एकत्र होते हैं। पूजा के बाद विसर्जन का भव्य जूलुस गौरा चौरा से प्रारंभ होकर नदी और तालाब की ओर चल पड़ते हैं। यह समय ऐसा प्रतीत होता है कि पूरा गाँव अपने आराध्य देव को विदा करने के लिये उमड़ पड़ा है। जूलुस के आगे समूह में कतारबद्ध महिलायें अपने सिरों पर करसा लिये बैगा के निर्देश में शोभायमान व सुंदर प्रतीत होती हैं। रास्ते भर देवता चढ़े पुरुष व महिलाओं को झूमते हुये देखकर तथा अपने-अपने कलाइयों में सांट पीटते हुये देवता चढ़े पुरुषों को देखकर लोक पर्व में जन तांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिये सभी के मन को प्रेरित करता है। इस समय लोक वातावरण में पार्वती व शिव के रूपों का बखान करते हुये विसर्जन के गीत गाये जाते हैं।

विसर्जन का गीत

“एक पतरी चढ़ायेन गौरी खड़े हो बेलवासी
आमा च आमा पूजेन गौरी मांझे चौरासी
रौनिया के भौनिया रंग परे पतुरिया
आगू आगू राम चले, पीछू म भौजइया”¹¹

8. अंतिम पूजा –

तालाब या नदी के तट पहुंच कर ईसर गौरा को अंतिम बिदाई देते हुये सभी की आंखे नम हो जाती है। नारी का मन कोमल भावनाओं से ओत प्रोत है इसीलिये उनकी आंखों से अश्रु की धारा प्रवाहित होती है और वे सिसकियां लेते हुये नजर आती हैं। अंतिम पूजा के पश्चात ईसर गौरा की मूर्तियों को जलाषय की गहरे पानी में ले जाकर पूर्ण श्रद्धा के साथ विसर्जित कर देते हैं। सभी जन प्रसाद पा कर अपने-अपने घरों को मन में यह दृढ़ विश्वास लेकर लौटते हैं कि लोक का यह भव्य स्वरूप इसी तरह युगों-युगों तक पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहे। अंतिम पूजा के समय गाये जाने वाले गीत बरबस ही कंटो से फूट पड़ते हैं।

अंतिम पूजा का गीत

“धीरे धीरे रेंगबे गौरी, गोटी गड़ी जाही
गोटी गड़ी जाही गौरी ओ, खड़ा होई जइबे
जाये बर जाबे गौरी ओ, फूल टोरि लाबे”¹²

छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति में जितने भी तीज त्यौहार, धार्मिक उत्सव व अनुष्ठानिक पर्व मनाये जाते हैं उन सभी पर्वों में गहरी आस्था के भाव दृष्टिगोचर होते हैं। आधुनिकता के इस दौर में भी यह परम्परा इसी तरह पीढ़ी दर पीढ़ी निर्बाध रूप से गतिमान रहे। सभी समाजों एवं वर्गों को एक सूत्र में पिरोने वाले गौरा-गौरी लोक पर्व की रक्षा हेतु तथा संवर्धन एवं संरक्षण के लिये हम सब को प्रेरित करता है कि हम अपनी पारम्परिक पर्वों की रक्षा कर सकें। जिससे लोक की यह वृहद परम्परा आने वाली नई पीढ़ी के लिये युगों-युगों तक जीवित रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मध्यप्रदेश का लोक संगीत, प्रो. शरीफ मोहम्मद, पृ. 428
2. छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का लोकतात्विक तथा मनोवैज्ञानिक अनुशीलन, डॉ. हनुमन्त नायडु, पृ. 72
3. साक्षात्कार, श्री सोनउ राम धुर्वे, प्रदेश अध्यक्ष, छत्तीसगढ़ गोंडवाना संघ, नवागांव, खैरागढ़, छत्तीसगढ़
4. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और पर्व, डॉ. पीसी लाल यादव, पृ. 70
5. मध्यप्रदेश का लोक संगीत, प्रो. शरीफ मोहम्मद, पृ. 429
6. मध्यप्रदेश का लोक संगीत, प्रो. शरीफ मोहम्मद, पृ. 429
7. छत्तीसगढ़ का लोकसंगीत, पं. रामकृष्ण तिवारी, पृ. 97
8. साक्षात्कार, डॉ. नत्थू तोड़े, लोक संगीत विभाग, इ.क.सं.वि.वि. खैरागढ़
9. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और पर्व, डॉ. पीसी लाल यादव, पृ. 69
10. मध्यप्रदेश का लोक संगीत, प्रो. शरीफ मोहम्मद, पृ. 432
11. छत्तीसगढ़ का लोकसंगीत, पं. रामकृष्ण तिवारी, पृ. 99
12. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और पर्व, डॉ. पीसी लाल यादव, पृ. 75



बाल मनोविज्ञान का शैक्षिक क्षेत्र में महत्त्व

डॉ. अमन मुर्मू*

सारांश

बाल मनोविज्ञान का शैक्षिक क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह बच्चों के सीखने की प्रक्रिया, उनकी मानसिक प्रवृत्तियों और व्यवहार को समझने में सहायता करता है। प्रत्येक बालक की सीखने की क्षमता, रुचियाँ, बौद्धिक स्तर, और भावनात्मक अवस्था अलग-अलग होती है। बाल मनोविज्ञान इन विविधताओं को समझने और उसके अनुरूप शिक्षण रणनीतियाँ तैयार करने में सहायक सिद्ध होता है।

शिक्षक यदि बालकों की मानसिक अवस्था और उनकी आवश्यकताओं को समझे, तो वह अधिक प्रभावी ढंग से शिक्षण कर सकता है। उदाहरणस्वरूप, कोई बच्चा यदि पढ़ाई में पिछड़ रहा है, तो यह जरूरी नहीं कि वह अकुशल हो, हो सकता है उसके पीछे कोई मानसिक या सामाजिक कारण हो। बाल मनोविज्ञान इन कारणों की पहचान कर उन्हें सुधारने के उपाय बताता है।

इसके अलावा, यह विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (जैसे मंदबुद्धि, अति-सक्रिय या ऑटिज्म से पीड़ित बच्चों) की पहचान और उन्हें उपयुक्त सहायता प्रदान करने के लिए आवश्यक ज्ञान देता है। बाल मनोविज्ञान बच्चों में आत्मविश्वास, रचनात्मकता और नैतिक मूल्यों के विकास को प्रोत्साहित करने में भी सहायक होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में बाल मनोविज्ञान यह भी स्पष्ट करता है कि बच्चों को दंड या कठोरता से नहीं, बल्कि प्रेम, प्रोत्साहन और मार्गदर्शन से अधिक सीखने को मिलता है। इससे शिक्षकों और अभिभावकों के बीच बेहतर समन्वय स्थापित होता है और बालकों का सर्वांगीण विकास संभव होता है।

इस प्रकार, बाल मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में न केवल बच्चों की बेहतर समझ प्रदान करता है, बल्कि शिक्षण की गुणवत्ता और प्रभावशीलता को भी बढ़ाता है।

शब्द कुंजी — बाल मनोविज्ञान, शिक्षा, शिक्षक, बच्चों, विकास इत्यादि

प्रस्तावना

बाल मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो बच्चों के मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक और बौद्धिक विकास का अध्ययन करती है। शिक्षा केवल पाठ्यक्रम का ज्ञान नहीं, बल्कि बालक के संपूर्ण विकास की प्रक्रिया है। ऐसे में बाल मनोविज्ञान शिक्षकों, अभिभावकों तथा नीति निर्माताओं के लिए एक मार्गदर्शक का कार्य करता है। इस शोध पत्र में बाल मनोविज्ञान के शैक्षिक क्षेत्र में योगदान और उसके प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

बाल मनोविज्ञान की परिभाषा

बाल मनोविज्ञान वह अध्ययन है जो शैशवावस्था से लेकर किशोरावस्था तक के मानसिक, शारीरिक, और सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करता है। यह बच्चों के सोचने, सीखने, बोलने, खेलने, और भावनाओं को व्यक्त करने के तरीकों को समझने में सहायक होता है।

शिक्षा में बाल मनोविज्ञान का महत्त्व

- व्यक्तिगत अंतर को समझना

प्रत्येक बच्चा अलग होता है — उसकी रुचियाँ, समझने की गति, सोचने का तरीका और भावनात्मक स्तर भिन्न हो सकता है। बाल मनोविज्ञान इन भिन्नताओं को समझने में सहायक होता है, जिससे शिक्षक प्रत्येक बालक को उसकी आवश्यकता के अनुसार शिक्षा दे सकता है।

* एसोसिएट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, रोहतास महिला कॉलेज, सासाराम

- **प्रभावी शिक्षण विधियाँ**

बाल मनोविज्ञान शिक्षकों को यह जानने में मदद करता है कि बालक किस प्रकार सबसे अच्छे से सीखते हैं — खेल के माध्यम से, गतिविधियों से, दृश्य सामग्रियों से या प्रयोगों के द्वारा। इससे शिक्षण अधिक रोचक और प्रभावी बनता है।

- **शिक्षा में प्रेरणा और प्रोत्साहन**

बाल मनोविज्ञान यह समझाने में मदद करता है कि सकारात्मक प्रोत्साहन और प्रशंसा, बच्चों के आत्मविश्वास और सीखने की प्रेरणा को बढ़ाते हैं। दंड और आलोचना बच्चों के मानसिक विकास पर विपरीत प्रभाव डाल सकते हैं।

- **मानसिक समस्याओं की पहचान**

बाल मनोविज्ञान के अध्ययन से शिक्षक और अभिभावक यह पहचान सकते हैं कि कोई बच्चा मानसिक तनाव, डर, या अवसाद जैसी स्थिति में है या नहीं। समय पर पहचान होने से उचित परामर्श और उपचार संभव हो पाता है।

- **विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा**

मानसिक या शारीरिक रूप से भिन्न बच्चों को समझना और उन्हें उपयुक्त शिक्षा देना बाल मनोविज्ञान के माध्यम से संभव होता है। इसके लिए विशेष शिक्षा विधियाँ और संसाधन विकसित किए गए हैं।

- **शिक्षण प्रक्रिया को बालक-केंद्रित बनाना**

बाल मनोविज्ञान यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा केवल शिक्षक-केंद्रित न होकर बालक-केंद्रित होनी चाहिए। बालकों की मानसिक अवस्था और अधिगम क्षमताओं को समझ कर ही शिक्षण की विधियाँ तय की जानी चाहिए। इससे बालक शिक्षा में रुचि लेता है और उसका अधिगम प्रभावी होता है।

- **पाठ्यक्रम निर्माण में सहायक**

बाल मनोविज्ञान यह सुझाव देता है कि पाठ्यक्रम का निर्माण बालकों की आयु, मानसिक विकास, सामाजिक पृष्ठभूमि तथा रुचियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। जैसे—प्राथमिक स्तर पर सरल भाषा, चित्र, कहानियाँ तथा गतिविधि आधारित शिक्षण उपयुक्त होता है।

- **प्रेरणा एवं अभिप्रेरणा (Motivation)**

अध्ययनशीलता में प्रेरणा की अत्यधिक भूमिका होती है। बाल मनोविज्ञान यह बताता है कि कैसे बाह्य (प्रशंसा, पुरस्कार) और आंतरिक (स्व-रुचि, आत्म-संतोष) प्रेरणाओं के माध्यम से बालकों को सीखने के लिए उत्साहित किया जा सकता है।

- **व्यक्तिगत भिन्नताओं की समझ**

प्रत्येक बालक भिन्न होता है — उसकी समझ, रुझान, सीखने की गति, और अभिरुचियाँ। बाल मनोविज्ञान शिक्षक को यह ज्ञान प्रदान करता है कि इन भिन्नताओं को समझकर शिक्षण में विविधता लाई जाए ताकि हर विद्यार्थी लाभान्वित हो सके।

- **अनुशासन की समस्याओं का समाधान**

कई बार बालक कक्षा में अनुशासनहीनता दिखाते हैं। इन समस्याओं के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं — जैसे ध्यान आकर्षण की इच्छा, आत्मसम्मान की कमी या पारिवारिक समस्याएँ। बाल मनोविज्ञान शिक्षक को इन कारणों को समझने एवं यथोचित व्यवहार अपनाने की दृष्टि प्रदान करता है।

- **मूल्यांकन प्रक्रिया में सुधार**

बाल मनोविज्ञान यह सिखाता है कि मूल्यांकन केवल अकादमिक ज्ञान का नहीं, बल्कि समग्र व्यक्तित्व का होना चाहिए — जिसमें रचनात्मकता, सामाजिकता, भावनात्मक परिपक्वता आदि शामिल हों।

बाल मनोविज्ञान का शैक्षिक क्षेत्र में महत्त्व केवल सिद्धांतों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके व्यावहारिक उदाहरणों से यह अधिक स्पष्ट होता है कि कैसे यह शैक्षिक प्रक्रिया को अधिक प्रभावी और उद्देश्यपूर्ण बना सकता है। यहां कुछ प्रमुख व्यावहारिक उदाहरण दिए जा रहे हैं:

1. प्राथमिक कक्षा में प्रेरणा देना

स्थिति: एक शिक्षक पहली कक्षा में बच्चों को गणित के गुणा को सिखा रहे हैं। बच्चों में से कुछ को संख्या समझने में कठिनाई हो रही है।

बाल मनोविज्ञान का प्रयोग:

बाल मनोविज्ञान के अनुसार, बच्चों को प्रेरित करने के लिए उनकी पसंदीदा गतिविधियों का उपयोग करना प्रभावी होता है। शिक्षक गणित के गुणा को एक खेल के रूप में प्रस्तुत करता है, जैसे "गुणा का खेल" जिसमें बच्चों को सही उत्तर देने पर पुरस्कार दिया जाता है।

परिणाम:

बच्चे अधिक उत्साहित होकर गुणा सीखने में रुचि दिखाते हैं, क्योंकि खेल के रूप में प्रस्तुत किया गया शिक्षण उन्हें आनंददायक लगता है।

2. व्यक्तिगत भिन्नताओं का सम्मान

स्थिति: कक्षा में दो बच्चे हैं – एक बच्चा जल्दी सीखता है जबकि दूसरा धीमे-धीमे सीखता है।

बाल मनोविज्ञान का प्रयोग:

बाल मनोविज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार, शिक्षक इन दोनों बच्चों की व्यक्तिगत भिन्नताओं को समझता है। तेज सीखने वाले बच्चे के लिए अतिरिक्त चुनौतियाँ प्रस्तुत की जाती हैं, जैसे अधिक कठिन सवाल, जबकि धीमे-धीमे सीखने वाले बच्चे के लिए शिक्षक अतिरिक्त समय देता है और अधिक स्पष्ट तरीके से सिखाता है।

परिणाम:

दोनों बच्चों को उनकी क्षमता के अनुसार उपयुक्त सहायता मिलती है, जिससे दोनों की सीखने की प्रक्रिया में सुधार होता है।

3. ध्यान केंद्रित करने में समस्या

स्थिति: एक बच्चा कक्षा में ध्यान केंद्रित नहीं कर पा रहा है और अक्सर चिड़चिड़ा रहता है।

बाल मनोविज्ञान का प्रयोग:

बाल मनोविज्ञान के सिद्धांत के अनुसार, बच्चों में ध्यान केंद्रित करने की समस्या उनके मानसिक विकास, शारीरिक ऊर्जा या भावनात्मक असंतुलन के कारण हो सकती है। शिक्षक उस बच्चे के लिए एक शांत कोने में बैठने का विकल्प प्रदान करता है या उसे कुछ शारीरिक गतिविधियाँ करने के लिए कहता है, जैसे कुछ देर तक चलना या कुछ हलके-फूलके खेल खेलना।

परिणाम:

इस प्रक्रिया के बाद बच्चा मानसिक रूप से शांति महसूस करता है और कक्षा में ध्यान केंद्रित करने में सक्षम होता है।

4. भावना का प्रबंधन और सामाजिक संबंध

स्थिति: एक बच्चा कक्षा में अक्सर गुस्से में आ जाता है और अपने सहपाठियों से लड़ता है।

बाल मनोविज्ञान का प्रयोग:

बाल मनोविज्ञान के अनुसार, बच्चों में गुस्सा आने का कारण भावनात्मक असंतुलन हो सकता है, जैसे घर में तनाव या आत्मविश्वास की कमी। शिक्षक उस बच्चे को भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है और सहपाठियों के साथ संवाद करने की कला सिखाता है। शिक्षक बच्चे को आत्मसाक्षात्कार के लिए कुछ प्रासंगिक गतिविधियाँ जैसे कहानी सुनाना या रंग भरने की प्रक्रिया में शामिल करता है।

परिणाम:

बच्चा अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम होता है और सहपाठियों के साथ बेहतर संबंध स्थापित करता है। इससे उसकी सामाजिक स्थिति में सुधार होता है और कक्षा में शांति बनी रहती है।

5. बच्चों की सामाजिक भावना को बढ़ावा देना

स्थिति: कक्षा में बच्चे समूह कार्य कर रहे हैं, लेकिन एक बच्चा दूसरों से संपर्क नहीं करता और अकेला रहता है।

बाल मनोविज्ञान का प्रयोग:

बाल मनोविज्ञान के अनुसार, बच्चे सामाजिक विकास के विभिन्न चरणों से गुजरते हैं और उन्हें अन्य बच्चों के साथ सहकार्य की आवश्यकता होती है। शिक्षक उस बच्चे को धीरे-धीरे छोटे समूहों में शामिल करता है और उसे एक 'मित्र' नियुक्त करता है, जिससे वह सहज महसूस कर सके।

परिणाम:

बच्चा धीरे-धीरे समूह में आत्मविश्वास के साथ शामिल होता है, और उसकी सामाजिक भावना को बढ़ावा मिलता है। वह अब अन्य बच्चों के साथ अधिक जुड़ाव महसूस करता है।

6. ध्यान और स्मृति के विकास में सहायता

स्थिति: एक बच्चा कक्षा में पढ़ाई के दौरान ध्यान केंद्रित नहीं कर पाता और सामग्री को याद रखने में कठिनाई महसूस करता है।

बाल मनोविज्ञान का प्रयोग:

बाल मनोविज्ञान के अनुसार, बच्चे विभिन्न प्रकार से सीखते हैं और उनका ध्यान और स्मृति विकास आयु के साथ बदलता है। शिक्षक उस बच्चे को दृश्य विधियों, जैसे चार्ट, चित्र, और शैक्षिक वीडियो के माध्यम से पढ़ाई का समावेश करता है। इसके साथ-साथ, वह बच्चों को कुछ प्रमुख बिंदुओं को याद रखने के लिए गीत और कविताओं का सहारा भी देता है।

परिणाम:

बच्चा अब अधिक ध्यान से पढ़ाई करता है और स्मृति में वृद्धि पाता है। जब जानकारी को दृश्य और श्रव्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो उसका सीखने का अनुभव अधिक प्रभावी होता है।

शिक्षक की भूमिका में परिवर्तन

बाल मनोविज्ञान के प्रभाव से शिक्षक अब केवल ज्ञान देने वाला नहीं रह गया है, बल्कि एक मार्गदर्शक, प्रेरक और परामर्शदाता की भूमिका निभाने लगा है। शिक्षक अब यह जानने की कोशिश करता है कि बालक को क्या सीखना है, कैसे सीखना है और क्यों सीखना है। पहले जहाँ शिक्षक केवल ज्ञान के स्रोत माने जाते थे, वहीं आज वे बच्चों के मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक और भावनात्मक विकास में सक्रिय भूमिका निभाने वाले मार्गदर्शक, प्रेरक और सहायक के रूप में सामने आए हैं। यह परिवर्तन बाल मनोविज्ञान की समझ के कारण ही संभव हुआ है।

1. ज्ञान देने वाले से मार्गदर्शक की ओर

पूर्व में शिक्षक का कार्य केवल विषय-वस्तु को कक्षा में पढ़ाना और परीक्षाओं की तैयारी करवाना होता था। लेकिन आज वह छात्रों के मानसिक स्तर, सीखने की गति और उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत मार्गदर्शन प्रदान करता है।

2. अनुशासनकर्ता से सहायक की भूमिका तक

पहले शिक्षा में अनुशासन को कठोरता और दंड के माध्यम से लागू किया जाता था। परंतु बाल मनोविज्ञान यह स्पष्ट करता है कि बच्चों को भय नहीं, बल्कि प्रोत्साहन, सहयोग और समझ की आवश्यकता होती है। अब शिक्षक एक ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास करता है जिसमें बच्चा स्वतंत्र रूप से सीख सके।

3. केवल पाठ्यक्रम केंद्रित से संपूर्ण विकास की दिशा में

आज का शिक्षक केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं रहता, बल्कि बच्चों के भावनात्मक विकास, नैतिक मूल्यों और सामाजिक कौशल के विकास पर भी ध्यान देता है। वह खेल, संगीत, कला, परियोजनाओं आदि के माध्यम से समग्र शिक्षा को बढ़ावा देता है।

4. समस्या पहचानने वाला और परामर्शदाता

बाल मनोविज्ञान की समझ के कारण शिक्षक अब बच्चों की व्यावहारिक समस्याओं, मानसिक तनाव, डर, अकेलापन या असुरक्षा की भावना को पहचान सकता है और समय रहते उचित परामर्श या मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान कर सकता है।

5. समान शिक्षा नहीं, व्यक्तिगत शिक्षा की ओर

हर बच्चा अलग होता है — यह विचार बाल मनोविज्ञान की देन है। अब शिक्षक एक जैसी शिक्षा देने की जगह बच्चे की जरूरतों के अनुसार पढ़ाने की प्रवृत्ति को अपनाता है। यह समावेशी (Inclusive) शिक्षा की ओर एक बड़ा कदम है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बाल मनोविज्ञान ने शिक्षा क्षेत्र में शिक्षक की पारंपरिक भूमिका को बदलकर उसे एक संवेदनशील, सजग, और शिशु-केंद्रित शिक्षक में परिवर्तित कर दिया है। शिक्षक अब केवल शिक्षा देने वाला नहीं, बल्कि एक समझदार गाइड, दोस्त, और सहायक के रूप में विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में सहायक बन गया है। यह परिवर्तन आधुनिक शिक्षा पद्धति की सफलता की आधारशिला है।

निष्कर्ष

बालक किसी भी राष्ट्र की आधारशिला होता है। उसका समुचित विकास, विशेष रूप से मानसिक और बौद्धिक विकास, राष्ट्र के भविष्य को निर्धारित करता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि बालक के व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु बाल मनोविज्ञान का शैक्षिक क्षेत्र में अत्यंत महत्त्व है। बालकों की आयु, रुचियाँ, क्षमताएँ, मानसिक स्तर, सामाजिक व्यवहार, और सीखने की प्रवृत्तियों की जानकारी के बिना शिक्षक शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

बाल मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में एक अत्यंत प्रभावशाली उपकरण है। यह बालकों की मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक आवश्यकताओं को समझने, उन्हें अनुकूल शिक्षण वातावरण प्रदान करने और उनके समग्र विकास को सुनिश्चित करने में सहायक होता है। आज की आधुनिक शिक्षा प्रणाली में बाल मनोविज्ञान का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसके बिना प्रभावी शिक्षण संभव नहीं है।

संदर्भ सूची :

- चौहान, एस. एस. (2020), आधुनिक शैक्षिक मनोविज्ञान, दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाऊस।
 मिश्र, बी. एन. (2017), मनोविज्ञान के सिद्धांत और प्रयोग, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
 शर्मा, आर. ए. (2018), शैक्षिक मनोविज्ञान, मेरठ: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
 पाठक, अर्चना. (2021), बाल विकास और मनोविज्ञान, भोपाल: मप्र हिंदी ग्रंथ अकादमी।
 शर्मा, रामनाथ (2020), बाल मनोविज्ञान, मेरठ: लोकेन्द्र प्रकाशन।
 शुक्ल, लालजी राम (2006), बाल मनोविज्ञान, वाराणसी: टाइम टेबल प्रेस।
 लाल, डी.आई. (1969), आधुनिक बाल मनोविज्ञान, दिल्ली: राजपाल एंड संस प्रकाशन।



वक्रोक्ति सम्प्रदाय का उद्भव एवं विकास

विपुल शिवसागर*

भारतीय काव्यशास्त्र में भिन्न-भिन्न आचार्यों के द्वारा काव्यात्मोन्मेष के लिए विभिन्न तत्त्वों पर विचार-विमर्श किया गया है। इन सौन्दर्यवर्द्धक काव्यतत्त्वों की व्याख्या आचार्यों ने विशद रूप में की है। इन्हीं आचार्यों में कुन्तक के द्वारा काव्य के सौन्दर्यवर्धन प्रतिमान के लिए वक्रोक्ति रूपी अन्तश्चमत्कारिणी अलङ्कार को काव्यात्मा के रूप में देखा। उन्होंने वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र में शब्द तथा अर्थ के प्रसिद्ध कथन के विपरीत किसी अपूर्व चमत्कारोत्पादक विषयक विशिष्ट भाव भंगिमा से युक्त शब्द व्यापार को उत्पन्न करने वाले विशिष्ट साधक भूत पद्धति के लिए किया है।

वक्रोक्ति वास्तव में काव्य कला का पर्याय है जो कवि की प्रतिभाजन्यता के कारण काव्य सौन्दर्य का हेतु बनता है। इस वक्रोक्ति का जनक कवि प्रतिभा होती है, जिसके कारण यह सहृदय को सदैव आह्लादित करती हुई नित्य नवीन सौन्दर्य की सर्जना करती है। कुन्तक मतानुसार वक्रोक्ति के कारणजन्य इस सौन्दर्यानुभूति या काव्यानन्द में काव्य के बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के सौन्दर्य का अन्तर्निवेश किया जा सकता है।

वक्रोक्ति का स्वरूप

कुन्तक से पूर्ववर्ती आलङ्कारिक आचार्यों ने वक्रोक्ति तथा अतिशयोक्ति को अलङ्कारों के मूल में स्वीकारा। परवर्ती आलङ्कारिकों में भोज ने भी वक्रोक्ति को वाङ्मय के तीन रूपों में एक अलङ्कार प्रधान प्रकृति के रूप में स्वीकार किया। भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा में वक्रोक्ति 3 स्वरूपों में दिखायी देता है-

- (क) वक्रोक्ति सभी काव्यालंकारों के मूलाधार के रूप में।
- (ख) व्यापक काव्य तत्त्व या काव्यात्मा के रूप में।
- (ग) संकुचित रूप में मात्र एक शब्दालंकार या अर्थालंकार के रूप में।

अलङ्कार रूप में कुन्तक के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती आने वाले अधिकांशतः आचार्य- मम्मट, विश्वनाथ, रुद्रट , जगन्नाथ आदि स्वीकार करते हैं जबकि व्यापक काव्य तत्त्व के रूप में आचार्य कुन्तक के पूर्ववर्ती आचार्यों दण्डी, उद्भट तथा भामह स्वीकार करते हैं। वक्रोक्ति को अलङ्कार के रूप में प्रस्तुत करने वाले सर्वप्रथम आचार्य वामन हैं। वामन के पश्चात् यह परम्परा जगन्नाथ तक लगातार बनी रही। कुन्तक वक्रोक्ति को कवि कौशल का एक प्रकृष्टतम रूप मानते हैं। उनके अनुसार वक्रोक्ति से अभिप्राय उस लक्षण या सुंदर उक्ति से है जो कवि प्रतिभा प्रसूत हो, पाठक के अन्तःकरण में नित्य नवीन अपूर्व आह्लाद को प्रस्फुटित करने वाली तथा सामान्य कथन से भिन्न हो।

कुन्तक के द्वारा वक्रोक्ति के समानार्थी प्रयुक्त शब्द

- (क) वक्रोक्ति भंगी भणितिः।
- (ख) विचित्रैवभिधा वक्रोक्तिः।
- (ग) वक्रत्वं वक्रभावः प्रसिद्ध प्रस्थानतिरेकिणा वैचिन्त्येणोनिषस्वः।
- (घ) वक्रोक्तिः सकलालंकार सामान्यम्।

विभिन्न आचार्यों के अभिमत में वक्रोक्ति का विकास क्रम

ग्यारहवीं शताब्दी संस्कृत काव्यशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त अभिनव तथा उर्वर समयकाल माना जा सकता है। इसी शताब्दी में संस्कृत काव्यशास्त्र के तीन बृहत्त्रयी आचार्य अभिनवगुप्त, कुन्तक तथा भोज का अवतरण हुआ। इन्होंने अपने ज्ञान कौशल से संस्कृत काव्यशास्त्र को नवीन प्रतिमान दिए। इसमें से आचार्य कुन्तक का स्थान अत्यन्त विशेष महत्त्व का है। कुन्तक के आगमन तक संस्कृत काव्यशास्त्र में रस एवं ध्वनि की सत्ता को आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त तथा राजशेखर आदि

* शोध छात्र (संस्कृत), नानक चंद एंग्लो संस्कृत कॉलेज, मेरठ

आचार्यों में स्थापित कर दिया था। कुन्तक ने भामह प्रतिपादित वक्रोक्ति विषयक चिंतन परम्परा को एक सम्प्रदाय के रूप में स्थापित किया।

भारतीय काव्यशास्त्र के मूर्धन्य आचार्य कुन्तक ने जिस मौलिक प्रतिभा, प्रखर मेधा से इस वक्रोक्ति सम्प्रदाय रूपी भवन को खड़ा किया उसका इतिवृत्त हमें अथर्ववेद, अमररुक शतक, सुबन्धु, मेघदूत तथा बाणभट्ट की साहित्यिक रचनाओं में प्राप्त होता है। अथर्ववेद में यह कुटिल अर्थ में, मेघदूत में टेढ़ा मार्ग तथा अवन्तिसुन्दरी कथा में वैदग्ध्य अर्थ में मिलता है। अन्य सिद्धान्तों के विपरीत वक्रोक्ति सम्प्रदाय संस्कृत काव्यशास्त्र में कोई आकस्मिक घटना न होकर एक परम्परा का वैचारिक विकास था।¹

अवन्तिसुन्दरी कथा - विदग्ध भंगी भणिति निवेद्यं रूप न नियतस्वभावम्²

अथर्ववेद- अयं यो वको विरूपणर्यगो मुखानि वका वृजिना कृणोषि³

मेघदूत- वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां

सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।

विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गानानां

लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोसि॥ पूर्व मेघ 24

सुबन्धु- सुबन्धु ने वासवदत्ता में स्पष्ट रूप से वक्रोक्ति का उल्लेख कई स्थलों पर किया है।

सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः।

प्रत्यक्षर-श्लेषमयप्रबन्धं विन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्॥⁴

अमररुक- अमररुक ने अमररुकशतक में वक्रोक्ति का वर्णन क्रीडालाप या परिहासजल्पित प्रसंग के अर्थ में करते हैं-

सा पत्युः प्रथमापराधसमये संख्योपदेशं विना।

नो जानाति सविभ्रमांगवलनावक्रोक्तिसंसूचनम्॥⁵

बाणभट्ट-

बाणभट्ट ने वक्रोक्ति का प्रयोग अपने काव्यों में अत्यन्त व्यापक अर्थ में किया है। प्रथमतः वक्रोक्ति का उल्लेख कादम्बरी में उज्जयिनी वर्णन प्रसंग के अवसर पर वहाँ के नागरिकों को वक्रोक्ति निपुण कहकर किया।

शिक्षित शिषदेश भाषेण वक्रोक्ति निपुणेन आख्यायिकाख्यान परिचय चतुरेणा⁶

वक्ष्यमाणोक्तविषयस्तत्राक्षेपो द्विधा मनः ।

एकरूपतया शेषा निर्देक्ष्यन्ते यथाक्रमम् ॥६७॥

प्रतिषेध इवेष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया ।

आक्षेप इति तं सन्तः शंसन्ति द्विविधं यथा ॥ ६८ ॥⁷

वामन- वामन ने वक्रोक्ति का वर्णन ओज, कांति, श्लेष तथा उदारता आदि गुणों के रूप में किया है। उक्ति वैचित्र्य रूपी अर्थगुण तथा माधुर्य गुण आदि को चमत्कारिक अर्थ प्रस्फुटन करने की साम्यता के आधार पर एक प्रकार से वक्रता का ही एक रूप मान सकते हैं। भामह तथा दण्डी द्वारा प्रतिपादित वक्रोक्ति के स्वरूप के विपरीत वामन वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग नितान्त भिन्न

¹ भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका , नगेन्द्र, पृ0 139

² काव्य मीमांसापृ0 114 ,

³ अथर्ववेद-7/58/14

⁴ वासवदत्ता 1/13

⁵ अमररुक शतक , लेखक - किशोरी लाल गुप्ता ,पृष्ठ -66

⁶ कादम्बरी पूर्व भाग पृष्ठ संख्या 158

⁷ काव्यालंकार 3/65-68

स्वरूप के प्रतिपादन के लिए किया। वह वक्रोक्ति को शब्दालंकार के अन्तर्गत न स्वीकार करके अर्थालंकार के अन्तर्गत रखते हैं। वक्रोक्ति का लक्षण देते हुए वह कहते हैं कि-

सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः।⁸

अर्थात् सादृश्य पर आधारित लक्षणा को वक्रोक्ति कहते हैं। वह लक्षणा के दो भेदों में से एक (1. शुद्धा 2. गौणी) गौणी को वक्रोक्ति के केन्द्र बिन्दु के रूप में स्वीकार करते हैं। जहाँ सादृश्येतर सामीप्यादि संबंध में शुद्ध होती है, वही सादृश्य में भी लक्षणा होती है। वह इस लक्षण को और अधिक विस्तृत करते हुए कहते हैं -

बहूनि हि निबन्धनानि लक्षणायाम्। तत्र सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिरसाविति।⁹

वामन के पद संरचना तथा गुणों के विभाजन का आधार चमत्कार ही है। वामन इस चमत्कारिक अर्थ के लिए वक्रोक्ति या वक्रता शब्द का प्रयोग नहीं करते। अतः कह सकते हैं कि वामन स्पष्ट रूप से वक्रोक्ति या वक्रता काव्य के सर्वस्वभूत प्राणधर्मा के रूप में न स्वीकार करके केवल साधारण अलङ्कार रूप में वक्रोक्ति शब्द की चर्चा की है।

रुद्रट - रुद्रट ने कुन्तक द्वारा प्रतिपादित वक्रोक्ति के स्वरूप को अत्यन्त सीमित कर दिया। ये प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने वक्रोक्ति को शब्दालंकार की श्रेणी में समाहित किया। वे इसके दो भेद स्वीकार करते हैं- 1. श्लेष वक्रोक्ति 2. काकु वक्रोक्ति। रुद्रट प्रतिपादित वक्रोक्ति के इसी स्वरूप को परवर्ती आचार्यों ने स्वीकार किया तथा इसको मात्र एक शब्दालंकार एक रूप में आज सर्वमान्य स्वीकारा जाता है।

वक्ता तदन्ययोक्तं व्याचष्टे चान्यथा तदुत्तरदः।

वचनं यत्पदभंगैर्ज्ञेया सा श्लेषवक्रोक्तिः।¹⁰

आचार्य दण्डी - आचार्य दण्डी ने अतिशयोक्ति को वक्रोक्ति का प्राणरूप ग्रहण करते हुये इसकी सर्वातिशयता को प्रतिपादित किया है। आचार्य वामन के समान रुद्रट भी वक्रोक्ति को एक विशिष्ट अलङ्कार मानते हुए कहते हैं कि वक्रोक्ति के द्वारा काव्य में अर्थगत चमत्कार उत्पन्न करती है जबकि वक्रोक्ति शब्दों को चमत्कृत करती है।

वक्रोक्तिरनुप्रासोयमकम् श्लेषस्तथा परंचित्रम्।

शब्दास्यालङ्काराः श्लेषोऽर्थस्यापि सोऽन्यस्तु। काव्यालङ्कार-2/ 13

महिमभट्टः ध्वनि विरोधी प्रमुख आचार्यों में महिमभट्ट का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका प्रमुख काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ व्यक्तिविवेक है। वह मूलतः अनुमानवादी आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने ध्वनि तथा वक्रोक्ति दोनों सम्प्रदायों की मान्यता का पुरजोर खण्डन प्रथम विमर्श में किया है। वह वक्रोक्ति को ध्वनि का विशिष्ट प्रभेद मानते हैं। वे कहते हैं-

अभेदे बहुता न स्यादुक्तेर्मार्गान्तराग्रहात्।

तेन ध्वनिवदेषापि वक्रोक्तिरनुमा न किम्।¹¹

अर्थात् अभेद होने पर भी वस्तुतः ध्वनि और वक्रोक्ति में कोई दूसरा भेद नहीं देखा जाता है, अतः ध्वनि के समान ही वक्रोक्ति का भी अनुमान में ही अन्तर्भाव क्यों नहीं स्वीकार किया जाए। महिमभट्ट वक्रोक्ति का लक्षण देते हुए कहते हैं-

प्रसिद्धं मार्गमुत्सृज्य यत्र वैचित्र्यसिद्धये।

अन्यथैवोच्यते सोऽर्थः सा वक्रोक्तिरुदाहृता।¹²

अर्थात्, जहाँ वह विचित्र अर्थ को व्यक्त करने के लिए अपने प्रसिद्ध मार्ग को छोड़कर अपने इच्छित प्रकार से प्रतिपादित अर्थ को प्रदर्शित करें वह वक्रोक्ति कहा जाता है। महिमभट्ट का मानना है कि कुन्तक के द्वारा वक्रोक्ति के जो यह भेद

⁸ काव्यालंकार सूत्रवृत्ति- 4/3/8

⁹ काव्यालंकार सूत्रवृत्ति 8/3/4 - की वृत्ति

¹⁰ काव्यालंकार-2/14

¹¹ व्यक्ति विवेक 1/73

¹² व्यक्ति विवेक 1/69

प्रभेद किए गये है वह वस्तुतः ध्वनि के समान ही है। अतः ध्वनि से अलग वक्रोक्ति की विशिष्ट सत्ता स्वीकरणीय नहीं हैं। डॉ० विजयेन्द्र नारायण सिंह इस संबंध में लिखते हैं कि-"महिमभट्ट ने अनुमान में ही वक्रोक्ति का अन्तर्भूत कर प्रत्याख्यान किया है। मम्मट- काव्यप्रकाशकार रुद्रट के मतानुसार वक्रोक्ति को मात्र शब्दालंकार के रूप में देखते हैं। मम्मट शब्दालंकार प्रकरण में वक्रोक्ति के श्लेष वक्रोक्ति तथा काकु वक्रोक्ति नामक दो भेदों का उल्लेख किया। वक्रोक्ति का लक्षण देते हुए वह कहते हैं-

यदुक्तमन्यथा वाक्यमन्यथान्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा।
तथेति श्लेषवक्रोक्तिः काकुवक्रोक्तिश्च ॥¹³

अर्थात् जहाँ पर एक वक्ता के द्वारा अन्य प्रकार से कहा हुआ वाक्य दूसरे वक्ता के द्वारा श्लेष अथवा काकु प्रकार से उसी अर्थ को विशिष्ट प्रकार से लिया जाता है। वहाँ पर वक्रोक्ति नामक शब्दालंकार कहा जाता है।

राजा भोज- वक्रोक्ति के विकास क्रम में राजा भोज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार ध्वनि सम्प्रदाय को पुनः स्थापित करने में मम्मट की अतुलनीय महत्ता थी वही स्थान वक्रोक्ति सम्प्रदाय में राजा भोज की है। राजा भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगार प्रकाश ग्रंथों में वक्रोक्ति के स्वरूप पर विस्तृत चर्चा की है। राजा भोज भी कुन्तक के समान वक्रोक्ति के तात्कालिक उपासक तथा अलङ्कार मार्ग की पुनः प्रतिष्ठा स्थापित कराने के लिए प्रयासरत थे। राजा भोज के अनुसार लौकिक वचन और कवि वचन में तात्पर्य एवं ध्वनि में वक्रता- का प्रभाव या सद्भाव ही कारण होता है।

क पुनरनयो. काव्यवचसोः ध्वनितात्पर्ययोः विशेषः?
उच्यते यदवक्रं वचः शास्त्रे लोके च वच एव तत् ।
चक्रं यदर्थवादादौ तस्य काव्यमिति स्मृतिः ॥¹⁴

उन्होंने वाणी की विविध भंगिमा से उत्पन्न चमत्कार से युक्त वक्रोक्ति को काव्य का विधायक तत्व माना जबकि वक्रता विहीन वचन को लोक और शास्त्र में 'वचन'। वक्रता विहीन काव्य को सुन्दरता पूर्वक कहने का कोई आग्रह नहीं होने के कारण इसमें सरल अभिव्यक्ति इसकी अपनी विशिष्टता है। किन्तु जब किसी की निन्दा या प्रशंसा के प्रसङ्ग में वचन का आयोजन अतिशयोक्ति पूर्ण किया जाता है तो यह अतिशयपूर्ण भंगिमा युक्त कथन ही काव्य का मूल आधार होता है।

तात्पर्यम्-यस्य काव्येषु ध्वनिरिति प्रसिद्धः ।
तदुक्तम्-तात्पर्यमेव वचसि ध्वनिरेव काव्य ॥¹⁵
कः पुनरनयोः काव्यवचसोः ध्वनि - तात्पर्ययोर्विशेषः
उच्यते यदवक्रं वचः शास्त्रे लोके च वच एव तत् ।
वक्रं यदर्थवादादौ तस्य काव्यमिति स्मृतिः ॥

अतः काव्य में अलङ्कारों का संनिवेश करते समय वक्रोक्तिमुलक अलङ्कारों पर विचार करना चाहिए। क्योंकि इनके रहने पर ही वक्रता मूलक काव्य उत्कृष्ट होता है।

तात्पर्यं यस्य काव्येषु ध्वनिरिति प्रसिद्धिः ।
“ तदुक्तं तात्पर्यमेव वचसि ध्वनिरेव काव्ये ॥”
इत्येतदपि सर्वालङ्कारसाधारणं लक्षणमनुसर्वव्यम् । अस्मिन् सति सर्वालङ्कार जातयो । वक्रोक्त्याभिधानवाच्याभवन्ति ।
भामहः अपिकथ्यते वक्रत्वमेव काव्यानां पराभूषेति ॥¹⁶

« »

¹³ काव्यप्रकाश 9/78

¹⁴ शृङ्गारप्रकाश

¹⁵ शृङ्गारप्रकाश

¹⁶ शृङ्गार प्रकाश 9/60

किन्नर समुदाय विधिक एवं उत्थान

कमलेश कुमार*
प्रो. रमोद कुमार मौर्य**

सारांश

किन्नर समुदाय भारतीय इतिहास और संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा रहा है। उनकी ऐतिहासिक भूमिका केवल धार्मिक या सामाजिक स्तर तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी उनका योगदान उल्लेखनीय रहा है। महाभारत में शिखंडी और बृहन्नला (अर्जुन का रूपांतरण) जैसे पात्र किन्नर अस्मिता को सशक्त बनाते हैं। मौर्य और गुप्त काल में भी किन्नर दरबारों और शाही परिवारों में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाते थे। मुगलकाल में विशेष रूप से अकबर और औरंगजेब के दरबार में किन्नर राजकीय गुप्तचर, महलों के रक्षक तथा विश्वसनीय सेवक माने जाते थे। इस प्रकार किन्नर समुदाय की ऐतिहासिक भूमिका सम्मानजनक, सशक्त और बहुआयामी रही है, जो आज के समाज को समावेश और समानता की प्रेरणा देती है।

मुख्य बिंदु : किन्नर समुदाय, थर्ड जेंडर, ऐतिहासिक भूमिका, सामाजिक स्थिति, वेद और पुराण, धार्मिक महत्व

1.0 परिचय:

भारतीय सभ्यता में विविधताओं का सजीव चित्र सदियों से देखने को मिलता है। इस विविधता में एक अनूठा स्थान किन्नर समुदाय का है, जिसे प्राचीन काल से ही समाज में एक विशेष दर्जा प्राप्त रहा है। किन्नर समुदाय जिसे आधुनिक भाषा में थर्ड जेंडर के नाम से भी जाना जाता है, लिंग की पारंपरिक द्वैतवादी धारणा (पुरुष और स्त्री) से परे एक तीसरी पहचान के रूप में उपस्थित है। यह समुदाय जैविक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से विशिष्ट रहा है। भारतीय समाज में यद्यपि समय के साथ उनके प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आता रहा, किंतु उनकी ऐतिहासिक भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

ग्रंथ/ग्रंथांश	उल्लेख/भूमिका	महत्व
रामायण	श्रीराम को वनवास देते समय किन्नरों का समर्पण	भक्ति व सामाजिक मान्यता
महाभारत	शिखंडी व बृहन्नला (अर्जुन का रूप)	युद्ध में निर्णायक भूमिका
पुराण	किन्नर – देवताओं के गायक व सेवक	सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यता
नाट्यशास्त्र	मंचीय प्रदर्शन में भूमिका	कला व संस्कृति में भागीदारी

प्राचीन भारतीय ग्रंथों और धर्मशास्त्रों में किन्नर समुदाय का उल्लेख अत्यंत श्रद्धा और सम्मान के साथ मिलता है। महाभारत में शिखंडी जैसे पात्र ने निर्णायक युद्ध में भूमिका निभाई, वहीं अर्जुन का बृहन्नला रूप किन्नर के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। रामायण में जब श्रीराम वनवास के लिए जा रहे थे, तब अयोध्या के कुछ नागरिकों के साथ किन्नर भी उनके पीछे-पीछे गए। राम ने उन्हें लौट जाने को कहा, किंतु वे रुक गए, क्योंकि वह आदेश केवल 'पुरुषों और स्त्रियों' के लिए था, और वे स्वयं को किसी भी वर्ग में नहीं पाते थे। इस प्रसंग में उनकी समर्पण भावना और भक्ति को रेखांकित किया गया है। इसके अतिरिक्त वेदों और पुराणों में किन्नरों को

* शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, औराई, भदोही, उ०प्र० संबद्ध महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

** प्रोफेसर (शोध निर्देशक), समाजशास्त्र विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, औराई, भदोही (उ०प्र०)

गायक, नर्तक, और देवताओं के सेवक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। नाट्यशास्त्र जैसे ग्रंथों में भी किन्नरों की सांस्कृतिक भूमिका का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन भारत में किन्नरों की सामाजिक भूमिका केवल धार्मिक और सांस्कृतिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं थी। वे समाज में शुभ कार्य जैसे शिशु जन्म, विवाह, गृह प्रवेश में मंगलगान और आशीर्वाद देने के लिए आमंत्रित किए जाते थे। समाज उन्हें शुभ मानता था और उनके आशीर्वाद को विशेष प्रभावी समझता था। उस काल में वे दरबारों के नृत्य-संगीत में सहभागी होते थे, साथ ही शाही परिवारों के भीतर उनकी भूमिका एक संरक्षक और विश्वस्त व्यक्ति के रूप में होती थी। इस प्रकार समाज में उनकी स्वीकार्यता और सम्मानजनक स्थिति बनी रही। मध्यकालीन भारत विशेषतः मुगल काल में किन्नर समुदाय का प्रभाव राजनीतिक, सामाजिक और प्रशासनिक स्तर पर स्पष्ट दिखाई देता है। मुगलों के दरबार में किन्नरों की नियुक्ति राजपरिवारों के अंतरंग मामलों में की जाती थी। वे राजमहलों की सुरक्षा, रानियों की सेवा, और कभी-कभी राजनीतिक गुप्तचरी जैसे कार्यों में संलग्न होते थे। इतिहासकारों के अनुसार ख्वाजा सरा जैसे शीर्ष पदों पर किन्नर समुदाय के सदस्यों को नियुक्त किया जाता था जो राजदरबार के सबसे विश्वस्त लोगों में गिने जाते थे।

युग	भूमिका	क्षेत्र	महत्व
दिल्ली सल्तनत	महल सुरक्षा, गुप्तचर	दरबार	विश्वासपात्र वर्ग
मुगल काल	ख्वाजा सरा पद, प्रशासनिक भूमिका	शासन व्यवस्था	सामाजिक सम्मान व सत्ता भागीदारी
राजपूत राज्य	नृत्य-संगीत व उत्सवों में भागीदारी	राजदरबार	सांस्कृतिक प्रतीक

अकबर, जहांगीर और औरंगज़ेब जैसे सम्राटों के दरबार में किन्नरों की उपस्थिति और भूमिका ने यह सिद्ध कर दिया कि यह समुदाय केवल एक सांस्कृतिक प्रतीक नहीं, अपितु शासन व्यवस्था का एक सशक्त हिस्सा था। किन्नरों के इस उत्कर्ष काल के पश्चात् अंग्रेजी शासन के आगमन के साथ ही उनकी सामाजिक स्थिति में गिरावट आने लगी। ब्रिटिश शासन ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था के विविध पहलुओं को यूरोपीय दृष्टिकोण से परखा और पारंपरिक भूमिकाओं को हेय दृष्टि से देखा।

तालिका 3: ब्रिटिश काल में किन्नरों की स्थिति

वर्ष	नैति/कानून	प्रभाव
1871	Criminal Tribes Act	समुदाय को अपराधी घोषित किया गया
20वीं सदी	औपनिवेशिक नैतिकता थोपना	सामाजिक बहिष्कार, पहचान विहीनता
औपनिवेशिक शासन	धार्मिक परंपराओं को हतोत्साहित करना	परंपरागत भूमिका समाप्त

स्वतंत्र भारत के संविधान में समानता, स्वतंत्रता और सम्मान के अधिकार की बात की गई, परंतु किन्नर समुदाय को प्रारंभिक दशकों में इस संवैधानिक संरक्षण का वास्तविक लाभ नहीं मिल सका। ना तो उन्हें पुरुष माना गया, ना स्त्री, जिससे वे कानूनी दृष्टिकोण से पहचानविहीन बन गए। सामाजिक कलंक, शिक्षा और स्वास्थ्य से वंचितता, रोजगार में भेदभाव, तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व की कमी, यह सब उनकी मुख्य समस्याएं बनी रहीं। अनेक दशकों तक यह समुदाय समाज के हाशिए पर जीवन यापन करता रहा और भीख मांगना, यौन-कार्य करना या पारंपरिक मंगलगान जैसे सीमित कार्यों में ही संलग्न रहा।

तालिका 4: स्वतंत्र भारत में किन्नर समुदाय की कानूनी स्थिति

वर्ष	निर्णय/कानून	विवरण
1950	भारतीय संविधान	समानता का अधिकार, परंतु व्यावहारिक लाभ नहीं
2014	NALSA फैसला (SC)	थर्ड जेंडर को संवैधानिक मान्यता
2019	ट्रांसजेंडर पर्सन्स (राइट्स प्रोटेक्शन) अधिनियम	पहचान, अधिकार, सुरक्षा का कानूनी आधार

परंतु 21वीं सदी में किन्नर समुदाय के संघर्षों ने एक निर्णायक मोड़ लिया। 2014 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने “नेशनल लीगल सर्विसेस अथॉरिटी बनाम भारत सरकार” (NALSA केस) में ऐतिहासिक निर्णय दिया। इस निर्णय में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को ‘थर्ड जेंडर’ के रूप में मान्यता प्रदान की गई, जिससे उन्हें शिक्षा, रोजगार, चिकित्सा और कानूनी संरक्षण जैसे बुनियादी अधिकारों का लाभ मिलने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस फैसले ने न केवल उनके सामाजिक दर्जे को पुनर्स्थापित किया, बल्कि उन्हें संवैधानिक पहचान भी प्रदान की। 2019 में ‘किन्नर सुरक्षा अधि.’ पारित कर केंद्र सरकार ने उनकी सुरक्षा, कल्याण और अधिकारों को कानूनी रूप दिया। आज किन्नर समुदाय के कुछ सदस्य शिक्षा, राजनीति, कला, और सामाजिक कार्य जैसे क्षेत्रों में सक्रिय हो चुके हैं। शबनम मौसी भारत की पहली ट्रांसजेंडर विधायक बनीं, लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी ने संयुक्त राष्ट्र में भारत का प्रतिनिधित्व किया और कई सामाजिक आंदोलनों का नेतृत्व किया। भारत के कई नगर निगमों में किन्नर पार्षद निर्वाचित हुए हैं जो स्थानीय शासन का हिस्सा बनकर अपनी भूमिका निभा रहे हैं। इसके अतिरिक्त अनेक राज्य सरकारें उन्हें पहचान पत्र, सामाजिक सुरक्षा योजना, एवं आरक्षण जैसे कदमों के ज़रिए सशक्त बनाने का प्रयास कर रही हैं। कई विश्वविद्यालयों में ‘थर्ड जेंडर’ के लिए विशेष प्रवेश श्रेणियाँ बनाई गई हैं, जिससे उच्च शिक्षा में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो सके। किन्नर समुदाय का सांस्कृतिक योगदान भी महत्वपूर्ण है। उनकी वेशभूषा, बोली, गीत-संगीत की शैली, और समूह संरचना एक विशिष्ट लोक-संस्कृति को जन्म देती है। देश के अनेक अंचलों में उनकी उपस्थिति विशिष्ट लोक परंपराओं से जुड़ी है, जैसे गुजरात की हिजड़ा संस्कृति, बंगाल की नटुआ परंपरा, तमिलनाडु के अरावानी महोत्सव आदि। ये सभी सांस्कृतिक रूप से किन्नरों के धार्मिक और सामाजिक जुड़ाव को दर्शाते हैं। हालांकि सामाजिक मानसिकता में बदलाव की प्रक्रिया धीमी है, परंतु जनचेतना, शिक्षा, और मीडिया के माध्यम से किन्नर समुदाय के प्रति सम्मान और स्वीकृति का भाव बढ़ रहा है। अनेक फिल्मों, नाटकों और साहित्यिक कृतियों में किन्नरों के जीवन, संघर्ष और गरिमा को चित्रित किया गया है। ऐसे प्रयास न केवल समाज में जागरूकता फैलाते हैं, बल्कि संवेदनशीलता और समावेशिता को भी बल देते हैं। निस्संदेह, किन्नर समुदाय का ऐतिहासिक महत्व केवल बीते समय की घटना नहीं है, बल्कि वर्तमान में भी उनकी भूमिका बहुआयामी और प्रभावशाली बनी हुई है। समाज को यह समझना होगा कि किन्नर केवल किसी लिंग श्रेणी का नाम नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक चेतना, एक ऐतिहासिक परंपरा, और एक मानवीय गरिमा का नाम है। उनका सम्मान करना, उन्हें बराबरी का अवसर देना और उनके अस्तित्व को पूरी गरिमा के साथ स्वीकार करना एक प्रगतिशील, मानवीय और न्यायपूर्ण समाज की दिशा में अनिवार्य कदम है।

तालिका 7: किन्नर समुदाय की प्रमुख समस्याएँ व समाधान

समस्या	विवरण	समाधान (प्रस्तावित/सरकारी)
पहचान की कमी	जन्म प्रमाणपत्र, दस्तावेज़ में जेंडर स्पष्ट नहीं	‘थर्ड जेंडर’ के लिए प्रमाणपत्र
शिक्षा में बाधा	भेदभाव, स्कूल से वंचन	आरक्षण, समावेशी पाठ्यक्रम
स्वास्थ्य सेवाएँ	मानसिक स्वास्थ्य उपेक्षित	ट्रांसजेंडर हेल्थ क्लिनिक
रोजगार में भेदभाव	सरकारी व निजी क्षेत्र में अवसर सीमित	नियोजन में आरक्षण, कौशल विकास योजना

इस ऐतिहासिक और सामाजिक यात्रा से यह स्पष्ट होता है कि किन्नर समुदाय सदियों से भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा रहा है। समय के उतार-चढ़ावों में जहां उन्हें सम्मान मिला, वहीं उन्हें अपमान और भेदभाव का शिकार भी होना पड़ा। परंतु आज की चेतनशील दुनिया में उनका पुनः स्थान स्थापित हो रहा है, शिक्षा, न्याय और समानता के माध्यम से। यह एक नए युग की शुरुआत है, जहां किन्नर समुदाय को एक नागरिक, एक व्यक्ति और एक गरिमामयी सदस्य के रूप में देखा जा रहा है, एक ऐसा दृष्टिकोण जो न केवल

लोकतांत्रिक मूल्यों को बल देता है, बल्कि भारतीय समाज की वास्तविक विविधता और समरसता को भी दर्शाता है।

2. प्रमुख साहित्यिक सर्वेक्षण

➤ मेरे बारे में सच्चाई - लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी (2015)

यह आत्मकथा भारत की पहली ट्रांसजेंडर सामाजिक कार्यकर्ता लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी द्वारा लिखी गई है। यह न केवल उनकी व्यक्तिगत यात्रा को दर्शाती है, बल्कि भारतीय किन्नर समुदाय के ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य को भी उजागर करती है। प्राचीन भारत में किन्नर समुदाय को धार्मिक और सांस्कृतिक सम्मान प्राप्त था। उन्हें विवाह, संतानोत्पत्ति, और अन्य अनुष्ठानों में शुभ माना जाता था। लेकिन औपनिवेशिक काल में ब्रिटिश कानूनों द्वारा उन्हें "आपराधिक जनजाति" घोषित कर दिया गया, जिससे उनका सामाजिक स्थान गिर गया। यह आत्मकथा न केवल व्यक्तिगत संघर्षों को प्रस्तुत करती है, बल्कि एक पूरे समुदाय के ऐतिहासिक उपेक्षा और पुनरुत्थान की गाथा भी है। सुप्रीम कोर्ट के 2014 के NALSA फैसले से पहले और बाद के सामाजिक परिवर्तनों को भी इसमें शामिल किया गया है। यह पुस्तक ऐतिहासिक दस्तावेज की तरह कार्य करती है और किन्नर समुदाय की गरिमा बहाली की दिशा में एक प्रेरणादायक प्रयास है।

➤ न तो पुरुष न ही महिला - सेरेना नंदा (1990)

यह पुस्तक एक अमेरिकी मानवशास्त्री द्वारा लिखी गई है जो भारतीय हिजड़ा समुदाय पर केंद्रित है। लेखक ने भारत में किन्नरों की सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक भूमिका को विस्तार से प्रस्तुत किया है। विशेष रूप से यह दर्शाया गया है कि कैसे धार्मिक अनुष्ठानों में, जैसे बच्चे के जन्म या विवाह के समय किन्नरों की उपस्थिति को शुभ माना जाता है। साथ ही यह भी बताया गया है कि ऐतिहासिक रूप से किन्नरों को शाही दरबारों में विशेष दर्जा प्राप्त था, मुगल दरबारों में वे संरक्षक और महत्वपूर्ण अधिकारी भी होते थे। हालांकि, औपनिवेशिक शासनकाल में उनके सामाजिक अधिकारों का ह्रास हुआ और वे हाशिए पर चले गए। यह कृति विशेष रूप से ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विश्लेषण के माध्यम से किन्नर समुदाय के महत्व को उजागर करती है। यह पुस्तक भारत में किन्नरों के इतिहास को समझने के लिए एक मानक ग्रंथ मानी जाती है।

➤ हिजड़ा: द थर्ड जेंडर - रवि कन्हैल (2005)

यह पुस्तक भारत में किन्नर समुदाय की ऐतिहासिक और धार्मिक स्थिति पर गहन अध्ययन प्रस्तुत करती है। लेखक ने भारतीय ग्रंथों, पौराणिक कथाओं, और ऐतिहासिक साक्ष्यों के माध्यम से यह दर्शाया है कि किन्नर समुदाय को 'तीसरे लिंग' के रूप में हमेशा एक मान्यता प्राप्त स्थान मिला है। विशेष रूप से महाभारत, रामायण, और अन्य धर्मग्रंथों में किन्नरों की भूमिका को दर्शाया गया है। उदाहरणस्वरूप, अर्जुन का ब्रह्मन्ला रूप या शिखंडी की भूमिका महाभारत में उल्लेखनीय है। लेखक ने मुगलकालीन भारत में किन्नरों की दरबारी भूमिका पर भी प्रकाश डाला है, जहाँ उन्हें राजनीतिक संरक्षक और संप्रेषक माना जाता था। आधुनिक काल में उनके अधिकारों की बहाली और पहचान के संघर्ष को भी पुस्तक में स्थान दिया गया है। इस कृति में धार्मिक सम्मान से लेकर सामाजिक बहिष्कार तक की ऐतिहासिक यात्रा को दर्शाया गया है, जिससे यह पुस्तक किन्नर समुदाय के ऐतिहासिक महत्व को समझने का एक महत्वपूर्ण साधन बनती है।

➤ **किन्नर: एक सांस्कृतिक यात्रा – मनीषा वर्मा (2016)**

यह पुस्तक हिंदी में लिखी गई एक समकालीन सांस्कृतिक अध्ययन है जो किन्नर समुदाय की सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक विश्वासों और ऐतिहासिक भूमिका को उजागर करती है। लेखिका ने दर्शाया है कि भारतीय समाज में किन्नरों को आध्यात्मिक माध्यम, देवी के प्रतिनिधि और लोकसंस्कृति के संरक्षक के रूप में देखा जाता रहा है। गाँवों में उनके आशीर्वाद की महत्ता, विवाह व यज्ञों में उनकी उपस्थिति, तथा लोकगीतों में उनका उल्लेख उनके सांस्कृतिक महत्व को दर्शाता है। यह कृति सांस्कृतिक इतिहास के माध्यम से किन्नर समुदाय की गरिमा और योगदान को पुनःस्थापित करने का प्रयास करती है।

➤ **भारत में ट्रांसजेंडर - अरविंद नारायण और विनय चंद्रन (2005)**

यह पुस्तक भारत में ट्रांसजेंडर समुदाय की सामाजिक और ऐतिहासिक स्थिति पर आधारित है। इसमें विशेष रूप से किन्नर समुदाय के इतिहास को कानूनी और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। लेखकों ने दिखाया है कि किस प्रकार किन्नरों को औपनिवेशिक काल में "क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट, 1871" के तहत अपराधी घोषित किया गया, जबकि इससे पहले वे समाज में एक विशिष्ट स्थान रखते थे। वैदिक और पौराणिक काल में उनकी उपस्थिति न केवल सम्मानजनक थी, बल्कि धार्मिक कार्यों में अनिवार्य भी मानी जाती थी। यह पुस्तक किन्नर समुदाय के ऐतिहासिक महत्व, उपेक्षा और पुनःस्थापन की यात्रा को कानूनी और सामाजिक दोनों दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करती है।

➤ **अमारा दास विल्हेम - तृतीया-प्रकृति: तीसरे लिंग के लोग (2004)**

यह पुस्तक भारतीय संस्कृति में तीसरे लिंग की ऐतिहासिक स्थिति को धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से प्रस्तुत करती है। लेखक ने वेदों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण और अन्य शास्त्रों का अध्ययन कर यह दिखाया है कि "तृतीय प्रकृति" के लोग जिन्हें आज हम किन्नर या ट्रांसजेंडर कहते हैं हमेशा से भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा रहे हैं। विशेष रूप से महाभारत में शिखंडी और ब्रह्मन्ना जैसे पात्रों का उदाहरण देते हुए लेखक ने यह दर्शाया है कि समाज में उनके योगदान को स्वीकार किया जाता था। वैदिक काल में उन्हें यज्ञों में भाग लेने की अनुमति थी और राजाओं के दरबार में उन्हें अधिकार प्राप्त होते थे। पुस्तक का मुख्य संदेश यह है कि किन्नरों को हाशिए पर रखना भारतीय परंपरा नहीं, बल्कि औपनिवेशिक और पितृसत्तात्मक सोच का परिणाम है। यह कृति भारतीय समाज में किन्नरों की ऐतिहासिक गरिमा को समझने में सहायक सिद्ध होती है।

➤ **लिंग पुनर्लेखन: समकालीन भारतीय साहित्य का वाचन – निवेदिता मेनन (2006)**

यह पुस्तक भारतीय साहित्य और समाज में लिंग की पुनर्परिभाषा की प्रक्रिया को उजागर करती है। इसमें किन्नर समुदाय को भी एक वैकल्पिक लैंगिक पहचान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने आधुनिक हिंदी, उर्दू और अंग्रेज़ी साहित्य में किन्नर पात्रों के चित्रण का विश्लेषण करते हुए दिखाया है कि कैसे समकालीन लेखकों ने किन्नरों की ऐतिहासिक और सामाजिक स्थिति पर फिर से विचार करना शुरू किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से पुस्तक यह भी दर्शाती है कि किन्नर समुदाय को पौराणिक और मध्यकालीन साहित्य में भी अनेक बार उल्लेखनीय भूमिका में प्रस्तुत किया गया है। लेखक यह भी रेखांकित करती हैं कि साहित्य के माध्यम से किन्नरों की छवि को केवल दया या उपहास का पात्र मानने की बजाय एक स्वतंत्र, गरिमामयी और ऐतिहासिक रूप से समृद्ध समुदाय के

रूप में स्थापित किया जा सकता है। यह कृति सामाजिक और साहित्यिक दृष्टिकोण से किन्नरों की ऐतिहासिक उपस्थिति को रेखांकित करती है।

➤ **हिजड़ा भारत में रहता है – गायत्री रेड्डी (2005)**

यह एक समाजशास्त्रीय अध्ययन है जिसमें लेखक ने भारत के दक्षिणी भागों में रहने वाले हिजड़ा समुदाय की जीवनशैली, सामाजिक संरचना और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया है। पुस्तक में यह विश्लेषण किया गया है कि कैसे हिजड़ा समुदाय अपने पारंपरिक कार्यों – जैसे बधाई देना, मांगलिक अवसरों पर गीत गाना आदि, के माध्यम से समाज में अपनी विशिष्ट भूमिका निभाता रहा है। ऐतिहासिक रूप से मुगल काल और दक्षिण भारत के विभिन्न राजघरानों में उन्हें धार्मिक और सांस्कृतिक संरक्षक माना गया। लेखक ने किन्नरों के गुरु-शिष्य परंपरा, संस्कारों और जातीय पहचान को भी ऐतिहासिक संदर्भ में देखा है।

3. सुप्रीम कोर्ट द्वारा 'थर्ड जेंडर' की मान्यता:

15 अप्रैल 2014 को भारत के सुप्रीम कोर्ट ने NALSA बनाम यूनियन ऑफ इंडिया केस में ऐतिहासिक निर्णय देते हुए किन्नर समुदाय को "थर्ड जेंडर" के रूप में संवैधानिक मान्यता प्रदान की। यह निर्णय दो न्यायमूर्तियों, न्यायमूर्ति के.एस. राधाकृष्णन और न्यायमूर्ति ए.के. सीकरी की पीठ द्वारा सुनाया गया। इस फैसले में कहा गया कि प्रत्येक नागरिक को उसकी लिंग पहचान के अनुसार जीने का अधिकार है और यह अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 (समानता), 15-16 (भेदभाव निषेध) और 21 (जीवन व स्वतंत्रता) के अंतर्गत संरक्षित है। इस निर्णय ने आत्म-पहचान को प्राथमिकता दी और सरकार को निर्देशित किया कि वह किन्नरों को शिक्षा, रोजगार और सामाजिक योजनाओं में आरक्षण प्रदान करे। इस फैसले ने न केवल कानूनी मान्यता प्रदान की, बल्कि सदियों से बहिष्कृत समुदाय को सम्मान और गरिमा का अधिकार भी दिया।

4. भारत सरकार द्वारा उठाए गए प्रमुख कदम:

सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद केंद्र सरकार ने किन्नर समुदाय की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने हेतु कई योजनाएँ लागू कीं। सबसे पहले, 2019 में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों (अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम पारित किया गया, जिसने ट्रांसजेंडरों के साथ भेदभाव को दंडनीय अपराध घोषित किया। इसके तहत हर राज्य को ट्रांसजेंडर पर्सन प्रोटेक्शन बोर्ड बनाने जैसे आश्रय गृह स्थापित करने के निर्देश दिए गए। 2022 में केंद्र सरकार ने SMILE योजना की शुरुआत की, जिसका उद्देश्य ट्रांसजेंडर व्यक्तियों और भिक्षावृत्ति में संलग्न लोगों का पुनर्वास करना, उन्हें शिक्षा और आजीविका उपलब्ध कराना था। इस योजना के अंतर्गत मानसिक स्वास्थ्य परामर्श, पुनर्वास केंद्र, चिकित्सा सुविधा, और स्किल डेवलपमेंट कार्यक्रम शामिल हैं। इसके साथ ही राष्ट्रीय ट्रांसजेंडर पोर्टल की शुरुआत की गई, जिसके माध्यम से ट्रांसजेंडर व्यक्ति ऑनलाइन पहचान पत्र, योजनाओं का लाभ, शिकायत पंजीकरण आदि कर सकते हैं।

5. राज्य सरकारों की भूमिका:

भारत के विभिन्न राज्यों ने भी किन्नर समुदाय के लिए अनेक प्रगतिशील कदम उठाए। तमिलनाडु पहला राज्य था जिसने 2008 में ट्रांसजेंडर वेलफेयर बोर्ड का गठन किया, जिसने मुफ्त सर्जरी, स्कॉलरशिप, राशन कार्ड और नौकरी के अवसर जैसी योजनाएं शुरू कीं। केरल ने 2015 में एक समावेशी ट्रांसजेंडर नीति लागू की, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया गया। महाराष्ट्र और दिल्ली जैसे राज्यों ने किन्नरों के लिए पहचान पत्र जारी करने, आरक्षण देने और उन्हें सरकारी योजनाओं से जोड़ने की पहल की। पश्चिम बंगाल सरकार ने वृद्ध किन्नरों के लिए मासिक पेंशन योजना भी लागू की। इन कानूनी और नीतिगत पहलों के बाद किन्नर समुदाय की सामाजिक स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन आया है। पहले जहां यह समुदाय

केवल मांगने या पारंपरिक धार्मिक रस्मों तक सीमित था, अब वे शिक्षा, प्रशासन, स्वास्थ्य, मीडिया और निजी क्षेत्र में भी अपने अधिकारों के लिए आगे बढ़ रहे हैं। सरकारी योजनाओं ने न केवल उन्हें एक पहचान दी, बल्कि आत्मनिर्भरता की दिशा में भी प्रेरित किया है। हालांकि अभी भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं, लेकिन इन पहलुओं ने एक मजबूत सामाजिक और संवैधानिक नींव तैयार की है, जिस पर आगे बदलाव की इमारत खड़ी की जा सकती है।

6. निष्कर्ष:

किन्नर समुदाय का ऐतिहासिक महत्व भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह समुदाय न केवल सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रहा है, बल्कि समाज में इसके विशेष स्थान और भूमिका ने उसे एक अलग पहचान दिलाई है। इस प्रकार, किन्नर समुदाय का ऐतिहासिक महत्व सिर्फ एक सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान से आगे बढ़कर अब एक सामाजिक और कानूनी अस्तित्व की दिशा में भी उभर चुका है। यह बदलाव भारतीय समाज में समावेशिता और समानता के लिए एक प्रेरणा बन चुका है, जो भविष्य में और अधिक सामाजिक न्याय और भेदभाव समाप्ति की ओर अग्रसर हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

- गुप्ता, रामेश्वर "भारतीय समाज में किन्नरों की भूमिका", प्रकाशक: भारतीय सांस्कृतिक प्रतिष्ठान, 2011, पृष्ठ संख्या: 45-67
- शर्मा, देवकीनंदन "किन्नर: एक सामाजिक और सांस्कृतिक विश्लेषण", प्रकाशक: सामाजिक विज्ञान प्रकाशन, 2015, पृष्ठ संख्या: 120-135
- कुमार, नरेश "आधुनिक भारत में किन्नर समुदाय", प्रकाशक: नई दिशा पब्लिकेशन, 2018, पृष्ठ संख्या: 55-79
- सिंह, अरुण "किन्नर समुदाय: ऐतिहासिक संदर्भ और सामाजिक स्थिति", प्रकाशक: राजकमल पब्लिशर्स, 2016, पृष्ठ संख्या: 89-102
- देव, महेश "किन्नर और उनके अधिकार: एक कानूनी दृष्टिकोण", प्रकाशक: भारतीय विधि पुस्तकालय, 2017, पृष्ठ संख्या: 215-230
- ठाकुर, सुनील "भारतीय संस्कृति में किन्नरों का योगदान", प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, 2012, पृष्ठ संख्या: 68-90
- सिंह, संजीव "भारत में किन्नरों का सामाजिक इतिहास", प्रकाशक: सांस्कृतिक शोध प्रकाशन, 2013, पृष्ठ संख्या: 34-56
- खान, गुलजार "किन्नर और भारतीय समाज", प्रकाशक: समृद्धि पब्लिकेशंस, 2014, पृष्ठ संख्या: 75-95
- पांडे, श्वेता "किन्नर समुदाय: उत्पत्ति और विकास", प्रकाशक: साहित्य संगम, 2020, पृष्ठ संख्या: 40-60
- कश्यप, पवन "किन्नर समुदाय के सामाजिक अधिकार: एक विश्लेषण", प्रकाशक: लोकशक्ति प्रकाशन, 2018, पृष्ठ संख्या: 123-145
- शुक्ला, रजनीश "किन्नरों का ऐतिहासिक महत्व और समाज में उनका स्थान", प्रकाशक: काव्य प्रकाशन, 2019, पृष्ठ संख्या: 55-72
- बासु, प्रिया "किन्नरों की समृद्ध परंपरा", प्रकाशक: प्रगति पब्लिकेशन, 2015, पृष्ठ संख्या: 120-140
- शर्मा, सरिता "भारतीय समाज में किन्नरों की सामाजिक भूमिका", प्रकाशक: जैन पब्लिशर्स, 2016, पृष्ठ संख्या: 98-112
- रावत, देवेंद्र "किन्नर: भारतीय समाज में एक चुनौती", प्रकाशक: आदर्श पुस्तकालय, 2017, पृष्ठ संख्या: 67-89
- कुमार, शैलेंद्र, "किन्नर समुदाय की ऐतिहासिक यात्रा", प्रकाशक: साहित्य भवन, 2021, पृष्ठ संख्या: 33-50

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की आर्थिक नीति

डॉ सुनील कुमार पांडेय*

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के विद्यार्थी जीवन से ही गणित के संदर्भ में प्रतिभा के विषय में हम जानते हैं। लेकिन वह उच्च शिक्षा में साहित्य के छात्र थे। जब वह राजनीतिक दल के कार्यकर्ता बने तब उन्होंने महसूस किया कि स्वतंत्र अर्थ नीति के बिना कोई स्वतंत्र समाज अपना समुचित विकास नहीं कर सकता। वह कोई बना बनाया आर्थिक राजनीतिक ढांचा स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। जनसंघ पर यह आरोप रहा है कि उसके पास आर्थिक नीति का भाव था, लेकिन पंडित दीनदयाल उपाध्याय के साहित्य के अध्ययन के बाद लगता है शायद उनका दल तथा कार्यकर्ता समाज तक दल की आर्थिक नीति को पहुंचा नहीं सके। वास्तव में दीनदयाल उपाध्याय ने क्रमबद्ध लेखन केवल आर्थिक विषयों पर ही किया है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा क्रमबद्ध रूप से लिखी गई तीन पुस्तकें उपलब्ध है -

- १- दो योजनाएं: वायदे, अनुपालन, आसार
- २- भारतीय अर्थनीति: विकास की एक दिशा
- ३- अवमूल्यन- एक महान क्षति

समतावादी आर्थिक दृष्टि

दीनदयाल उपाध्याय ने अपना आर्थिक लेख "भारतीय जनसंघ की अर्थनीति" शीर्षक से उत्तर प्रदेश के प्रादेशिक सम्मेलन, 1953 के अवसर पर कार्यकर्ता शिविर के लिए लिखा था लेकिन उसके पहले भी ऐसी कुछ घटनाएं घटित हुईं जिनमें उनकी मूलभूत आर्थिक दृष्टि जो "समाजवादी" है, का परिचय मिलता है। अपने दार्शनिक चिंतन व उसके विकास के परिणामस्वरूप कालांतर में समाजवाद को तकनीकी अर्थ में उन्होंने अस्वीकार कर दिया था; लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने अपनी मूलभूत समाजवादी दृष्टि को छोड़ दिया था। इस दृष्टि के संकेत तभी से उपलब्ध हैं जब वह जनसंघ में नहीं आए थे, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तर प्रदेश के प्रचारक थे संघ पर पूंजीवादी होने के आक्षेप का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था, "संघ पूंजीपति एवं जमींदारों को बनाए रखने के लिए देश के लाखों सुशिक्षित नौजवान रात-दिन सबकुछ त्यागकर करेंगे?"

जनसंघ की स्थापना के बाद राम राज्य परिषद तथा जनसंघ के विलय की बहुत कोशिश से हुई थी, जो असफल रही। उस समय दीनदयाल उपाध्याय ने रामराज्य परिषद की आलोचना की थी, वह भी इसी दृष्टि से उल्लेखनीय है -

रामराज्य परिषद ने अपने को संयुक्त मोर्चे से अलग रखकर यह सिद्ध कर दिया है कि वह प्रतिक्रिया और पुण्य पूंजीवादी तत्वों का भी प्रतिनिधित्व करती है और उसके सूत्र करपात्रीजी की कुटिया से नहीं जमींदारों, और मारवाड़ियों के महलों से खींचे जाते हैं। विधिवत आर्थिक समीक्षा से पूर्व तीन घटनाओं की यहाँ चर्चा करेंगे जिससे उनकी मूल आर्थिक दृष्टिपरी पोषण होता है -

१- कानपुर के सूती मिल में मजदूरों ने बिक्री बढ़ाने वाले यंत्रों के अभिनवीकरण के खिलाफ हड़ताल की। इस हड़ताल का समर्थन करते हुए उपाध्याय ने पूंजीवाद तथा अभिनवीकरण के संबंधों की व्याख्या करते हुए कहा -

"अभिनवीकरण का प्रश्न जटिल है तथा केवल मजदूर तक सीमित नहीं है। अपितु अखिल भारतीय है। वास्तव में तो बड़े उद्योगों की स्थापना एवं पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का आधार ही अभिनवीकरण है। आज का विज्ञान निरंतर प्रयास कर रहा है ऐसे यंत्रों का निर्माण करने का, जिनके द्वारा मनुष्यों का काम से कम उपयोग हो। जहाँ जनसंख्या कम है तथा उत्पादन के लिए पर्याप्त बाजार हैं वहाँ यह नए यंत्र वरदान सिद्ध होते हैं। हमारे यहाँ नया यंत्र बेकरी लेकर आता है।

२- दिल्ली में दुकानहीन विक्रेताओं की समस्याओं पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एक सर्वेक्षणत्मक निबंध लिखा जिसमें उन्होंने यह मत व्यक्त किया था:

"शायद जितने दुकानदार हैं, उनसे बहुत ज्यादा संख्या ऐसे लोगों की है जो बिना किसी दुकान के रेहड़ी तथा ढेलों के सहारे अपनी जीविका चलाते हैं। दिल्ली नगर पालिका के उपनियमों के अनुसार इन लोगों को पटरियों पर बैठकर सामान बेचने की इजाजत नहीं है। दिल्ली के अधिकारियों के सामने ट्रैफिक की ज्यादा समस्या है, क्योंकि इन पटरीवालों के कारण सड़क पर इतनी भीड़ हो जाती है कि मोटर आदि तो निकालना मुश्किल हो जाता है। फिर दुकानदारों को भी शिकायत है। सामने पटरी पर बैठे व्यापारियों के कारण उनकी दुकानदारी में बाधा पहुंचती है। नगर के सौंदर्य का भी प्रश्न है। टूटे-फूटे ठेलो और गंदे खोमचों से राजधानी की सड़कों का सौंदर्य मर जाता है। इसलिए दिल्ली सरकार ने पटरीवालों के खिलाफ जोरदार भी छेड़ दी है। उपाध्याय ने गरीब खुमचेवालों व पुलिस के व्यवहार, उनके हीन ग्रंथियों व तज्जनित मनोविज्ञान का सजीव वर्णन अपने इस निबंध में अंत में लिखा है, आज देश में जिस प्रकार भूमिहीन किसानों की समस्या है, वैसे ही दुकानहीन व्यापारियों की समस्या है। हमें उनका हल ढूंढना होगा।

३- विंध्यप्रदेश में हीरा खदानों का स्वतंत्र नियम बनाते हुए खदान मालिकों से खाने छीन ली जाएं तथा मुआवजा न दिया जाय। इस आशा का प्रस्ताव जनसंघ कार्य समिति ने पारित किया, "कार्य समिति ने पन्ना हीरा खदान जांच समिति की रिपोर्ट पर संतोष व्यक्त किया। समिति ने कहा, जनसंघ उक्त जांच समिति द्वारा सुझाव दिए गए इस सुझाव से कि सरकार और जनता दोनों के सहयोग से एक स्वतंत्र कार्पोरेशन बनाया जाए, के पक्ष में है। कार्य समिति ने हीरा खदानों के पट्टा धारकों को मुआवजा देने का विरोध किया और कहा कि उन पट्टा धारकों ने मिनरल कंसेशन रूल की धारा 48 व 51 का उल्लंघन किया है। अतः धारा 53 के अनुसार उनकी लीज जब्त होनी चाहिए।

दक्षिणपंथी पूंजीवादी विचारधारा के समर्थक होने की धारणा लोगों में बनी हुई है, उपाध्याय के साहित्य से इस धारणा की पुष्टि नहीं होती। उनके चिंतन की मूल प्रवृत्ति अर्थिक क्षमता तथा समष्टिवाद का पोषण करने वाली है।

* सहायक आचार्य, सत्य भामा कालेज ऑफ एजुकेशन, बनी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

Mobile:- 9792500500, Email- splko2616@gmail.com

सहकारी खेती

पंडित दीनदयाल उपाध्याय मानते थे कि अभी तक भूमिसुधारो का उद्देश्य खेतिहर किसान को भूमि पर अधिकार देना रहा है। सहकारी खेती की कल्पना खेतिहर किसान को भूमि से वंचित करने वाली है अतः हमारे लक्ष्यों के प्रतिकूल है। "कृषक स्वामित्व" के आधार पर बनी भूमि व्यवस्था प्रजातांत्रिक सिद्धांतों के अनुकूल है तथा आर्थिक दृष्टि से फलदाई है।

खाद्यान्न व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण

कांग्रेस के प्रस्ताव में सहकारी खेती, उत्पादन एवं वितरण पर नियंत्रण तथा इसके लिए खाद्यान्न व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण का सुझाव दिया गया था। उपाध्याय इसे अव्यावहारिक मानते थे। इस संदर्भ में उन्होंने निम्न सुझाव रखे थे-

1. गल्ले के थोक व्यापारियों को तुरंत लाइसेंस देना चाहिए।
2. काफी संख्या में सस्ते गल्ले की दुकान सभी नगरों तथा अभावग्रस्त क्षेत्रों में खोलने चाहिए। इस काम में पुराने थोक और परचून व्यापारियों की सेवाएं ही काम में ली जाएं। नए तथा अनुभवहीन लोगों को काम में लगाकर अव्यवस्था पैदा नहीं करनी चाहिए।
3. प्रत्येक स्तर पर गल्ले के वितरण की व्यवस्था की देखरेख करने के लिए सर्वदलीय समितियां बनानी चाहिए।

पी एल 480

चीनी आक्रमण के दौरान न केवल हमारे सैनिक एवं विदेश नीतियां ही निरावृत्त हुईं बल्कि खाद्यान्न के क्षेत्र में भी इतनी भयानक अभावग्रस्तता का सामना करना पड़ा कि हमें विदेशी सहायता लेनी पड़ी। आर्थिक नियोजन में भारी उद्योगों को प्राथमिकता तथा खेती की उपेक्षा का यह परिणाम था। अतः 1960 में एक ओर हम अपनी तीसरी पंचवर्षीय योजना का प्रारूप निर्माण कर रहे थे तो दूसरी ओर हमने अमेरिकी सार्वजनिक कानून 480 के अंतर्गत संयुक्त राज्य अमेरिका से 6 अरब, 7 करोड़ रुपए के गेहूं रन के लिए समझौता किया।

हमारी पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाएं

जुलाई 1951 में योजना आयोग द्वारा पहली पंचवर्षीय योजना का "आयोजना प्रारूप" प्रथम महानिर्वाचन के एकदम पूर्व घोषित किया गया। 7 दिसंबर, 1952 को वह भारत सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। 8 दिसंबर, 1952 को लोकसभा में बहस हुई तथा वह प्रारूप स्वीकृत हो गया। यह स्वीकृत योजना का कालखंड अप्रैल 1951 से मार्च 1956 था। इन तिथियों का वर्णन यहां इसलिए किया गया है कि योजना निर्माण के पहले कोई विशेष राष्ट्रीय विमर्श हो पाए इसकी स्थितियां नहीं थी। योजना का कार्यकाल उसकी स्वीकृत तिथियों से पूर्व प्रारम्भ हो गया था।

यह वह कल था जब भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई थी। उपाध्याय का राजनीति में प्रवेश सन 1951 में ही हुआ था। अतः उस समय इस सन्दर्भ में कोई समीक्षात्मक लेखन प्रस्तुत नहीं कर सके, जो उन्होंने बाद के कल में बहुत विस्तार एवं पूरे अध्ययन के बाद प्रस्तुत किया। "आयोजना प्रारूप" को संसद के समक्ष प्रस्तुत करने के एक सप्ताह पहले संपन्न भारतीय जनसंघ के प्रथम कानपुर अधिवेशन में उन्होंने प्रस्ताव के माध्यम से प्रथम पंचवर्षीय योजना पर अपनी तात्कालिक प्रतिक्रिया व्यक्त की। इस सम्बन्ध में उन्होंने सात मुद्दे उठाये -

- 1- बेकारी दूर करने एवं जीवनस्तर को उन्नत करने के लिए ऐसा ध्यान देना चाहिए था, नहीं दिया गया।
- 2- यह योजना अमेरिकी कृषिपद्धति पर आधारित है। जिसका आधार ही यंत्रीकरण है। स्वदेशी उपकरणों के विकास की उपेक्षा करके योजना निर्माताओं ने भयंकर भूल की है।
- 3- कृष के साथ-साथ घरेलू उद्योगों का गांव में विकास होने से ग्रामीण बेरोजगारी दूर हो सकती है लेकिन 2000 करोड़ की योजना में 15 करोड़ रुपए का ब्याह 5 लाख गांव में उद्योगों की स्थापना के लिए हंसने वाला है।
- 4- रक्षा संबंधी और आधारभूत बड़े उद्योगों के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया।
- 5- इस योजना के अनुसार देश के आर्थिक जीवन के सभी अंगों पर शासन का नियंत्रण रहेगा। हमारी आज की स्थिति में नियंत्रण जितना काम हो उतना ही समाज और शान दोनों के लिए हितकर है।
- 6- साक्षरता प्रसार को, जिसके बिना लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार निरर्थक रहते हैं - इस योजना में एक बारगी भुला दिया गया है।
- 7- जन स्वास्थ्य की भी उपेक्षा की गई है, विशेषकर अपनी स्वदेशी आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धत की।

यह एक तात्कालिक एवं औपचारिक प्रतिक्रिया थी। वास्तव में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिंतन सन 1953 से ही हमें लेखबद्ध रूप से प्राप्त होता है। जब उन्होंने उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर के लिए "जनसंघ की अर्थनीति" नाम का एक प्रारूप प्रस्तुत किया था।

अर्थ नीति का भारतीयकरण

अर्थ नीति से संबंध वक्तव्यों तथा लेखों में समय-समय पर लिखे गए सरकारी निर्णयों पर पंडित दीनदयाल अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे। वह कहते थे कि हमारी व पाश्चात्य परिस्थितियों में बहुत फर्क है अतः हमें अपनी अर्थ नीति का भारतीयकरण करना होगा। अपने इस मंतव्य को विवेचन करते हुए उपाध्याय ने लिखा है- देश का दरिद्र दूर होना चाहिए इसमें दो मत नहीं। लेकिन प्रश्न यह है कि गरीबी कैसे दूर होगी, हम अमेरिका के मार्ग पर चलें, या रूस के मार्ग को अपनाएं या यूरोपीय देशों का अनुकरण करें। हमें इस बात को समझना होगा कि इन देशों की अर्थव्यवस्था में अन्य कितने भी भेद क्यों ना हो लेकिन इनमें एक मौलिक समानता है। सभी ने मशीनों को ही आर्थिक प्रगति का साधन माना है। मशीन का सर्वप्रधान गुण है - कम मनुष्यों द्वारा अधिकतम उत्पादन करवाना परिणाम यह होता है इन देशों को स्वदेश में बढ़ती हुई उत्पादन को बेचने के लिए विदेशों के बाजार ढूंढने पड़ते हैं। साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद इसी का स्वाभाविक परिणाम बना है। इस राज्य विस्तार का स्वरूप चाहे भिन्न-भिन्न हो लेकिन क्या रूस को, क्या अमेरिका को तथा क्या इंग्लैंड को, सभी को इस मार्ग का अवलंबन करना पड़ा। हमें स्वीकार करना होगा कि भारत के आर्थिक प्रगति का रास्ता मशीन का रास्ता नहीं है। उपाध्याय जी बड़े उद्योगों के आधार पर रचित अर्थव्यवस्था को भारतीय परिस्थिति में उचित नहीं समझते थे। कृषि के क्षेत्र में छोटे तथा स्वामित्ववान खेती के हिमायती थे। सन 1959 में कांग्रेस अधिवेशन में साम्यवादी चीन की, कृषि योजना की नकल पर सहकारी खेती का प्रस्ताव पारित किया

गया था। उपाध्याय जी ने उसे अव्यवहारिक तथा अवांछनीय मानते हुए उसका विरोध किया था। वह देश में घटित होने वाली हर आर्थिक घटना पर अपनी टिप्पणी करते थे।

दीनदयाल उपाध्याय हमारे पंचवर्षीय योजनाओं की नियमित समीक्षा थे। दीनदयाल उपाध्याय ने 1958 में दोनों पंचवर्षीय योजनाओं पर एक शोध पूर्ण अंग्रेजी पुस्तक "दो योजनाएं: वायदे, अनुपालन, आसार" का सृजन किया, जो एक अर्थशास्त्री राजनेता द्वारा अनुसंधानपूर्वक की गई विवेचना है। निश्चय ही इस पुस्तक का अर्थशास्त्री एक प्रति पक्षी राजनेता है अतः विवेचन व व्याख्या में सत्ता पक्ष पर राजनीतिक प्रहार वाली भाषा का प्रयोग किया गया है।

चौथी पंचवर्षीय योजना के निर्माणकाल में ही प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का देहांत हो गया। स्वाभाविक रूप से भारत की पंचवर्षीय योजनाओं पर यदि किसी एक आदमी का सर्वाधिक प्रभाव है, तो वह नेहरू जी का ही है। आर्थिक प्रगति की उनकी महत्वाकांक्षी चेतना का प्रभाव इन योजनाओं में दिखाई देता है। जवाहरलाल नेहरू गति से भारत का आर्थिक विकास करके दुनिया की प्रगति की दौड़ में देश को शामिल करना चाहते थे। दीनदयाल सहज गति के पक्षधर थे। वह क्रमिक विकास को अधिक टिकाऊ और कम समस्याएं पैदा करने वाला मानते थे। दुनिया की प्रगति की दौड़ में जहां हमारा राष्ट्रीय व्यक्तित्व आगे दिखाई देना चाहिए। वही राष्ट्र का ब्यक्ति - ब्यक्ति इसमें सहभागी हो इसकी भी चिंता करनी चाहिए।

भारतीय संस्कृति में अर्थ

दीनदयाल जी केवल आर्थिक समीक्षक ही नहीं बल्कि आर्थिक चिंतक भी थे। जनसंघ में वह एक क्रियाशील दार्शनिक थे। समग्रतावादी दार्शनिक होने के कारण पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी उन लोगों से हर विषय पर असहमत रहते थे, जो जीवन के किसी विशिष्ट आयाम को जीवन की समग्रता का नियामक मान बैठते हैं या एक ही पहलू की ऐसी अतिरेकी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं जिसमें जीवन के अन्य विविध पहलुओं की उपेक्षा हो जाती है।

स्वयंसेवी क्षेत्र का विकास

देश के आम शिल्पी व कारीगर की उपेक्षा करने वाला औद्योगिकरण अलोकतांत्रिक है। पूंजीवाद और समाजवाद के निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के विवाद को उपाध्याय जी गलत मानते हैं। इन दोनों ने ही स्वयंसेवी क्षेत्र का गला घोटा है। आर्थिक लोकतंत्र के लिए आवश्यक है। स्वयंसेवी क्षेत्र का विकास करना इसके लिए विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था जरूरी है।

केंद्रीय बैंक को अधिकार

मुद्रा कोष में वृद्धि मुख्यता सरकार में आर्थिक अनुशासन के अभाव के कारण उत्पन्न होती है। राज्य सरकारों को केंद्र से मिलने वाली ओवर ड्राफ्ट की सुविधा के कारण भी यह आर्थिक निरंकुशता दूर-दूर तक फैल जाती है तथा मुद्रा वृद्धि का सबसे महत्वपूर्ण कारण है, केंद्र सरकार द्वारा रिजर्व बैंक से लिया गया ऋण है अर्थात् घाटे का बजट। रिजर्व बैंक के पास कागजी मुद्रा की संख्या पर नियंत्रण रखने के लिए आवश्यक अधिकार नहीं है। सरकार ने बैंक में अपने रूप के ऋण पत्रों को जमा कर दिया कि बैंक सरकार को ऋण देने के लिए विवश होता है। यह ऋण क्योंकि नोटों के रूप में होता है मुद्रा वृद्धि अपने आप हो जाती है। रिजर्व बैंक में रखे अपने ऋण पत्रों का संचय सरकार किसी भी समय बढ़ा सकती है क्योंकि आवश्यकता के अनुसार ऋण पत्र का निर्माण करने के सारे अधिकार सरकार के हाथों में होते हैं। घाटे की वजह से होने वाली धन की आपूर्ति के संदर्भ में एक बात विशेष रूप से ध्यान में आती है कि सरकार के पास इस रीति से धन की आपूर्ति करने की कोई कोई भी ठोस तथा दीर्घकालिक नीति नहीं है। यह बात गंभीर है। कारण, एक तो यह नगदी पैसा होता है और इसीलिए घाटे का बजट बनाने से उससे कहीं अधिक मुद्रा खर्च होती रहती है।

अनाज का आयात

पंडित दीनदयाल जी जिस समय राजनीति में आए तब स्थिति यह थी कि हमारे देश की आर्थिक नीतियां जनता का भला करने के लिए कितनी और दलीय राजनीति के लिए कितनी, इसका लेखा-जोखा बताना कठिन होने लगा था। अधिकारी तंत्र उसे पश्चिमी गुट के साथ जोड़ने में लगा था। तो कम्युनिस्ट और उनके उस काल के सहयात्री उसे रूस के अधीन बनाना चाहते थे। स्वयं नेहरू अत्र 'न अत्र न परत्र' वाला मार्ग अपनाए हुए थे। जिस जिसका बल बढ़ता उसके साथ हो लेना और निरंतर जनहित की दुआएं देते रहना उन्होंने अपना नियम सा बना लिया था। दीनदयाल जी को स्वदेश हित सर्वोपरि प्रिय था। उनका नजरिया था की देश का देश का किसान अपने पांव पर खड़ा होना चाहिए। खेती की उपज बढ़कर देश में समृद्धि तथा स्थिरता बढ़नी चाहिए। देश की प्रगति के साथ ही बेकारी नहीं बढ़नी चाहिए और देश के औद्योगिक विकास के साथ बेकारी नहीं बढ़नी चाहिए।

दीनदयाल जी का अधिकतम बल इस बात पर था कि देश शीघ्र से शीघ्र आत्मनिर्भर हो जाए। कभी इस देश में अंग्रेजों की भेजी हुई सेना थी अब अमेरिका का भेजा हुआ अनाज आ गया। इन सब बातों का दुष्परिणाम देश पर होना अपरिहार्य था। उत्तर प्रदेश तथा बिहार में नलकूप चलाने के लिए हमने रूस से डीजल मंगाया और उसके बदले में रूस को गेहूं दिया। मंगवाए गए डीजल से अपने कुएं चलाकर हमने अनाज का उत्पादन बढ़ाया फिर भी अनाज का आयात चालू ही था। सारा क्रम ही उल्टा हो गया था क्योंकि हमारी योजना देश की तो थी लेकिन स्वदेशी नहीं थी, जनता के लिए थी लेकिन जनता की नहीं थी। जन संघ के विविध प्रस्तावों द्वारा दीनदयाल जी जनता का कल्याण न देखने वाली इस योजना के बारे में देश को चेतावनी देते रहे लेकिन सत्तारूढ़ कांग्रेस हर बात की ओर दलीय नजर से ही देख रही थी। सरकार ने देश के विकास के लिए सारा समय देने वाली एक संस्था स्थापित की जिसका नाम "भारत सेवक समाज" था।

स्वर्ण नियंत्रण के दुष्परिणाम

आधुनिक राज्य संकल्पना में आर्थिक नीतियों को अनन्य व असाधारण महत्व प्राप्त है। जैसे-जैसे राजसत्ता सर्वोपरि होती गई उसने अर्थ संस्था के नियंत्रण को महत्व दिया और अर्थ सत्ता एवं राज्यसत्ता दोनों एक ही दल या सरकार के हाथों में केंद्रित होने लगी। सामुदायिक खेती, राज व्यापार निगम, विविध सरकारी प्रतिष्ठान आदि के कारण सरकार ही किसान, उत्पादक तथा व्यापार बनने लगी। यह स्थिति जनता की स्वतंत्रता के लिए बाधक होने लगी थी। रूस, चीन कम्युनिस्ट देशों में उत्पादन के साधनों तथा वितरण पर सरकार का संपूर्ण स्वामित्व होने के कारण वहां कम्युनिस्ट दल की तानाशाही आ गई है। दीनदयाल जी किसी राजनीतिक दल के अधिकार पर आपत्ति उठाते थे। 1950 से एक फैशन सा चल पड़ा था कि किसी उद्योग में घाटा होने लगे और श्रमिकों में बेकारी बढ़ने लगे तो उसे सरकार अपने अधिकार में कर लेती थी।

दीनदयाल जी ने इस त्रुटि पर अचूक अंगुली रखी थी। ऐसे समय जबकि राष्ट्रीयकरण के विरोध का अर्थ पूंजीवाद का समर्थन और पूंजीवाद के समर्थन का अर्थ श्रमिकों के शोषण का समर्थन वाला समीकरण प्रस्तुत किया जाता था। दीनदयाल जी ने दलीय राजनीति के लिए ऐसी देशघाती का डटकर विरोध किया। उन्होंने प्रतिपादन प्रारंभ किया कि तथाकथित राष्ट्रीयकरण और कुछ ना होकर सरकारी पूंजीवाद ही है।

विदेशी उद्योगों का एकाधिकार

दीनदयाल जी की विचारधारा विशुद्ध देशभक्त के ढांचे में डाली थी। इस बात को ध्यान में लेने पर आकलन हो जाएगा कि उनके अर्थशास्त्री ज्ञान को 'परतत्व' का स्पर्श क्यों और कैसे हुआ था। हनुमान को राम विहीन मोतियों का हार ब्यर्थ प्रतीत हुआ था। उसी प्रकार दीनदयाल जी को भी देश के लिए घातक होने वाला कोई भी लाभ अंततः त्यागी ही लगता था। अनेक लोगों की धारणा थी कि जनसंघ कम्युनिज्म का विरोधी है। अमेरिका परस्त होगा, लेकिन रूस या अमेरिका परस्ती से सर्वथा भिन्न प्रेम भी देश भक्तों के मन में हो सकते हैं। यह कल्पना ही स्वराज में जंहा अस्त होती जा रही थी वही दीनदयाल जी की राजनीति कल्पना भी इसी प्रकार सर्वथा भिन्न थी। लोग मानते थे कि राजनीति का अर्थ किसी ना किसी गुट के साथ अपने आप को जोड़ लेना, किसी मुद्रित वाद को स्वीकार करना है लेकिन दीनदयाल जी ऐसा नहीं मानते थे राजनीति का अर्थ सत्ता प्राप्त करने के लिए दौड़-धूप करना मात्र हो यह उन्हें अभिप्रेत नहीं था।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी की आर्थिक नीतियाँ भारतीय मूल्यों और आवश्यकताओं के अनुरूप थीं। वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जहाँ सभी का विकास हो और किसी का शोषण न हो।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी की आर्थिक नीतियों की प्रासंगिकता आज के परिवेश में और भी बढ़ गई है। उनके विचारों में राष्ट्र की सांस्कृतिक मूल्यों, परंपराओं, और आवश्यकताओं को महत्व दिया गया है। उन्होंने एक ऐसे आर्थिक मॉडल की परिकल्पना की थी जो 'अन्योदय' यानी समाज के सबसे गरीब और वंचित वर्ग के उत्थान को सुनिश्चित करे।

आज के समय में, जब देश आर्थिक और सामाजिक चुनौतियों का सामना कर रहा है, दीनदयाल जी के विचार हमें मार्गदर्शन दे सकते हैं। उनकी स्वदेशी और आत्मनिर्भरता की नीति आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि यह देश को विदेशी निर्भरता से मुक्त करने और स्थानीय उद्योगों को बढ़ावा देने में मदद कर सकती है। इसके अलावा, उनकी विकेंद्रीकरण की नीति से स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाने और उन्हें विकास प्रक्रिया में भागीदार बनाने में मदद मिल सकती है।

दीनदयाल जी ने श्रमिकों के कल्याण और कृषि एवं ग्रामीण विकास को भी महत्व दिया था। आज भी, जब श्रमिक अधिकारों का हनन हो रहा है और कृषि क्षेत्र संकट का सामना कर रहा है, उनके विचार हमें इन समस्याओं का समाधान ढूँढने में मदद कर सकते हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी की आर्थिक नीतियाँ भारतीय मूल्यों और आवश्यकताओं के अनुरूप थीं। वे एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जहाँ सभी का विकास हो और किसी का शोषण न हो। आज के समय में, जब देश में आर्थिक असमानता बढ़ रही है और सामाजिक तनाव बढ़ रहा है, उनके विचार हमें एक समतापूर्ण और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करने में मदद कर सकते हैं।

इसलिए, यह कहना गलत नहीं होगा कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी की आर्थिक नीतियों की प्रासंगिकता आज के परिवेश में और भी बढ़ गई है। उनके विचार हमें एक ऐसे आर्थिक मॉडल की ओर ले जा सकते हैं जो समावेशी, टिकाऊ, और न्यायपूर्ण हो।

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. डॉ महेश चंद्र शर्मा, पंडित दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार, आई.एस.बी.एन.- 9001.2008, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
2. दीनदयाल उपाध्याय, एकात्म मानववाद, तत्व मीमांसा सिद्धांत विवेचन, प्रभात प्रकाशन, आई.एस.बी.एन.- 978-935256-014-3, नई दिल्ली
3. दीनदयाल उपाध्याय, एकात्म मानव-दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवाला, आई.एस.बी.एन.- 81-89622-70-6, नई दिल्ली - 110055
4. पंडित दीनदयाल उपाध्याय, राष्ट्र चिंतन, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ
5. डॉ महेश चंद्र शर्मा, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, प्रभात प्रकाशन, आई.एस.बी.एन.- 978-93-86231-77-2, नई दिल्ली
6. पंडित दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन तत्व मीमांसा, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवाला, आई.एस.बी.एन.- 978-93-81500-69-9, नई दिल्ली
7. पंडित दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन एकात्म मानव-दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवाला, आई.एस.बी.एन.- 978-93-81500-70-5, नई दिल्ली
8. पंडित दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन राजनीतिक चिंतन, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवाला, आई.एस.बी.एन.- 978-93-81500-71-2, नई दिल्ली
9. पंडित दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन एकात्म अर्थनीति, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवाला, आई.एस.बी.एन.- 978-93-81500-72-9, नई दिल्ली
10. पंडित दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन, राजनीति राष्ट्र के लिए, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवाला, आई.एस.बी.एन.- 978-93-81500-74-3, नई दिल्ली
11. पंडित दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन व्यक्ती-दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवाला, आई.एस.बी.एन.- 978-93-81500-75-11, नई दिल्ली

शिक्षा एवं मानसिक-स्वास्थ्य

कृ. मृणालिनी गुप्ता*

आज समाज में शिक्षा का प्रसार जितनी तेजी से बढ़ रहा है उतनी तेजी से मानव मूल्यों का ह्रास देखने को मिल रहा है। जबकि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में मानवीय मूल्यों का विकास करना होता है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में कहीं-न-कहीं कुछ कमी अवश्य है। शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में शिक्षक की भूमिका तो है ही, लेकिन शिक्षा के विकास में विद्यार्थियों के माता-पिता और अभिभावकों के सहयोग का प्रमुख स्थान है। शिक्षा शास्त्रियों के द्वारा यह अनुभव किया गया कि जब तक शिक्षक और अभिभावक में समन्वय और सहयोग न हो तब तक बालक की शिक्षा समुचित रूप से नहीं हो सकती है। इसलिए शिक्षक-अभिभावक संस्था के गठन की ओर ध्यान दिया गया और आज ऐसी संस्थाओं की शिक्षा व्यवस्था में इनकी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

शिक्षा मानव-जीवन का सबसे आवश्यक संस्कार, सामाजिक परिवर्तन का आधार और आर्थिक उन्नति का एक मजबूत साधन है। यह एक नवीन, श्रेष्ठ और योग्य मानव बनाती है। भारतीय मनीषा में 'असतो माँ ज्योतिर्गमय' की जो कामना की गयी है वह अशिक्षा के अंधकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाश में तर्क और बौद्धिक विकास के मार्ग खोलती है।

स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में "हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।"

रविन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार— "सर्वोत्तम शिक्षा वह है जो हमें केवल सूचना ही नहीं देती वरन् सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।

राधा कृष्णन के अनुसार— "शिक्षा मानव तथा समाज हेतु निर्माणकारी होना चाहिए।"

शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का प्रमुख साधन है। शिक्षित व्यक्ति की राष्ट्र की आर्थिक प्रगति को वास्तविक गति प्रदान कर सकते हैं। प्राचीन शिक्षा की पद्धति गुरुकुल प्रणाली में निहित थी। कालान्तर में मंदिरों, मठों एवं मस्जिदों में शिक्षा का विकास कार्यक्रम चलता रहा। भारत की आजादी के पूर्व ब्रिटिश शासकों ने सन् 1885 ई० में सेन्ट्रल कालेज, इलाहाबाद के अन्तर्गत शिक्षा की व्यवस्था प्रारम्भ की जिसमें प्राथमिक स्तर के विद्यालयों की शिक्षा का संचालन करने का अधिकार था।

मानसिक स्वास्थ्य का सरल शब्दों में अर्थ उस स्वास्थ्य से है जिसका सम्बन्ध मानस अथवा मन से होता है। शारीरिक स्वास्थ्य जहाँ शरीर के स्वास्थ्य से अपना सम्बन्ध रखता है और इस रूप में शरीर के अंग-प्रत्यंगों की उचित वृद्धि विकास और उनके ठीक प्रकार से संचालन, देखभाल और स्वस्थ रहने की बात करता है। उसी सन्दर्भ में मानसिक स्वास्थ्य भी मानसिक शक्तियों के उचित विकास तथा मन को स्वस्थ एवं सुखी बनाने के लिए आवश्यक सभी तरह की देखभाल, उपायों एवं उसी रूप में व्यवहार करने की बात करता है। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ **गुड कार्टर, वी०** द्वारा सम्पादित शिक्षा शब्दकोश में "मन की स्वस्थता, पूर्णता या समग्रता" के रूप में दिया गया है और इस अर्थ में मानसिक स्वास्थ्य का प्रयोजन मन को इस प्रकार से स्वस्थ एवं पूर्ण बनाना है कि व्यक्ति मानसिक क्लेशों से दूर रहकर सुखी और आनन्दमय जीवन जी सके। मानसिक स्वास्थ्य क्या है और इसका क्या लक्ष्य है? इस सम्बन्ध में और अधिक जानकारी के लिए विद्वानों द्वारा दी गयी कुछ प्रसिद्ध परिभाषाओं को उल्लेख करना भी यहाँ उचित रहेगा।

1. **वालिन, जे० ई० डब्ल्यू**—"मानसिक स्वास्थ्य को सम्बन्ध सभी तरह से पूर्ण एवं संतुलित व्यक्तित्व के विकास से है, एक ऐसा व्यक्ति जो मात्र अपनी सुविधा और आराम के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं करता रहता जैसे रविवार को ईमानदारी का परिचय दे तो सोमवार को बेईमान नजर आये, आज उदार रहे तो कल अनुदार बन जाये, किसी समय समझदारी एवं तर्कपूर्ण व्यवहार करे और किसी समय बेहद उलझा हुआ एवं विचलित दिखाई दे।"

* शोधार्थी (शिक्षा शास्त्र), दी.द.उ.गो.वि.वि., गोरखपुर

2. **जे० ए० हैडफील्ड**—“मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य है कि व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अपने पूर्णरूप से अच्छी तरह तालमेल बिठाते हुए कार्य करते रहना।”
3. **पी०बी० ल्यूकन**— “मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है जो स्वयं खु” रहे, अपने पड़ोसियों के साथ शांति से रहता हो, अपने बालकों को स्वस्थ नागरिक के रूप में ढाल सके और इस प्रकार से अपने मूल कर्तव्यों का निर्वाह करने के प”चात भी उसमें इतनी शक्ति बची रहे कि वह समाज के लिए भी कुछ उचित योगदान दे सके।”

मानसिक स्वास्थ्य—

मानसिक स्वास्थ्य का सरल शब्दों में अर्थ उस स्वास्थ्य से है जिसका सम्बन्ध मानस अथवा मन से होता है। शारीरिक स्वास्थ्य जहाँ शरीर के स्वास्थ्य से अपना सम्बन्ध रखता है और इस रूप में शरीर के अंग-प्रत्यंगों की उचित वृद्धि विकास और उनके ठीक प्रकार से संचालन, देखभाल और स्वस्थ रहने की बात करता है। उसी सन्दर्भ में मानसिक स्वास्थ्य भी मानसिक शक्तियों के उचित विकास तथा मन को स्वस्थ एवं सुखी बनाने के लिए आवश्यक सभी तरह की देखभाल, उपायों एवं उसी रूप में व्यवहार करने की बात करता है। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ **गुड कार्टर, वी.** द्वारा सम्पादित “शिक्षा शब्दको” में “मन की स्वस्थता, पूर्णता या समग्रता” के रूप में दिया गया है और इस अर्थ में मानसिक स्वास्थ्य का प्रयोजन मन को इस प्रकार से स्वस्थ एवं पूर्ण बनाना है कि व्यक्ति मानसिक क्लेशों से दूर रहकर सुखी और आनन्दमय जीवन जी सके। मानसिक स्वास्थ्य क्या है और इसका क्या लक्ष्य है? इस सम्बन्ध में और अधिक जानकारी के लिए विद्वानों द्वारा दी गयी कुछ प्रसिद्ध परिभाषाओं को उल्लेख करना भी यहाँ उचित रहेगा।

4. **पी.बी. ल्यूकन**— “मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वह है जो स्वयं खु” रहे, अपने पड़ोसियों के साथ शांति से रहता हो, अपने बालकों को स्वस्थ नागरिक के रूप में
5. **वालिन, जे.ई. डब्ल्यू**—“मानसिक स्वास्थ्य को सम्बन्ध सभी तरह से पूर्ण एवं संतुलित व्यक्तित्व के विकास से है, एक ऐसा व्यक्ति जो मात्र अपनी सुविधा और आराम के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं करता रहता जैसे रविवार को ईमानदारी का परिचय दे तो सोमवार को बेईमान नजर आये, आज उदार रहे तो कल अनुदार बन जाये, किसी समय समझदारी एवं तर्कपूर्ण व्यवहार करे और किसी समय बेहद उलझा हुआ एवं विचलित दिखाई दे।” (1951 एच.41)
6. **जे.ए. हैडफील्ड**—“मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य है कि व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अपने पूर्णरूप से अच्छी तरह तालमेल बिठाते हुए कार्य करते रहना।”
7. में ढाल सके और इस प्रकार से अपने मूल कर्तव्यों का निर्वाह करने के प”चात भी उसमें इतनी शक्ति बची रहे कि वह समाज के लिए भी कुछ उचित योगदान दे सके।”
8. **के.ए. मिनिंगर**— “मानसिक स्वास्थ्य को मानव मात्र के एक दूसरे तथा दुनिया के साथ अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण एवं आनन्ददायक समायोजन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह एक ऐसी योग्यता है कि जिससे व्यक्ति को अपना स्वभाव सहज बनाने, बुद्धि को सचेत रखने, सामाजिक रूप से उचित व्यवहार करने तथा अपने आपको पसन्नचित रखने में सहायता मिलती है।”
9. **कट्स एवं मोसले**— “मानसिक स्वास्थ्य वह योग्यता है जो हमें अपने जीवन की कठिन परिस्थितियों में समायोजन करने में सहायक होती है।”

इस दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति के मन की उस स्वस्थ अवस्था से है जो उसे एक सम्पूर्ण एवं समग्र व्यक्तित्व के रूप में संतुलित एवं संयमित व्यवहार कर अपने आप से तथा अपने वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण समायोजन करने में सहायता करती है।

शिक्षा में मानसिक स्वास्थ्य—

शिक्षा में मानसिक स्वास्थ्य वह प्रभाव है जो मानसिक स्वास्थ्य (भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कल्याण सहित) का शैक्षिक प्रदर्शन पर पड़ता है। मानसिक स्वास्थ्य को अक्सर एक वयस्क मुद्दे के रूप में देखा जाता है, लेकिन वास्तव में, संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग आधे किशोर मानसिक विकारों से प्रभावित हैं, और इनमें से लगभग 20 प्रतिशत को “गंभीर” के रूप में वर्गीकृत किया गया है। मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं स्कूल में शैक्षणिक और सामाजिक सफलता के मामले में छात्रों के लिए एक बड़ी समस्या पैदा कर सकती हैं। दुनिया भर में शिक्षा प्रणालियाँ इस विषय को अलग-अलग तरीके से व्यवहार करती हैं, प्रत्यक्ष रूप से आधिकारिक नीतियों के माध्यम से और अप्रत्यक्ष रूप से मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण पर सांस्कृतिक विचारों के माध्यम से। ये पाठ्यक्रम मानसिक स्वास्थ्य विकारों की प्रभावी ढंग से

पहचान करने और चिकित्सा, दवा, या राहत के अन्य उपकरणों का उपयोग करके इसका इलाज करने के लिए मौजूद हैं।

किशोरों में मानसिक स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं की व्यापकता—

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ के अनुसार 13–18 आयु वर्ग के लगभग 46 प्रतिशत अमेरिकी किशोर किसी न किसी प्रकार के मानसिक विकार से पीड़ित होंगे। लगभग 21 प्रतिशत एक ऐसे विकार से पीड़ित होंगे जिसे “गंभीर” के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जिसका अर्थ है कि विकार उनके दैनिक कामकाज को बाधित करता है, लेकिन इनमें से लगभग दो-तिहाई किशोरों को औपचारिक मानसिक स्वास्थ्य सहायता नहीं मिलेगी। एन.आई.एम.एच. द्वारा रिपोर्ट किए गए किशोरों में सबसे आम प्रकार के विकार चिंता विकार हैं, जिनका जीवनकाल लगभग 25 प्रतिशत है। 13–18 आयु वर्ग के युवाओं में और उनमें से 6 प्रतिशत मामलों को गंभीर श्रेणी में रखा गया है। इसके बाद मनोदशा सम्बन्धी विकार है, जिसका जीवनकाल में प्रसार 14 प्रतिशत और किशोरों में गंभीर मामलों में 4–7 प्रतिशत है। इसी तरह का एक सामान्य विकार अटेंशन डेफिसिट हाइपरएक्टिविटी डिसऑर्डर (एडीएचडी) है, जिसे बचपन के विकार के रूप में वर्गीकृत किया गया है, लेकिन कई बार यह किशोरावस्था और वयस्कता में भी जारी रहता है। अमेरिकी किशोरों में एडीएचडी की व्यापकता 9% है, और गंभीर मामलों में 1–8 प्रतिशत है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि एडीएचडी न केवल बच्चों में बल्कि वयस्कों में भी एक गंभीर समस्या है। जब बच्चों में एडीएचडी होता है तो इससे कई मानसिक बीमारियाँ उत्पन्न हो सकती हैं जो उनकी शिक्षा को प्रभावित कर सकती हैं और उन्हें सफल होने से रोक सकती हैं।

मेंटल हेल्थ अमेरिका के अनुसार, 10 प्रतिशत से अधिक युवाओं में अवसाद के लक्षण इतने प्रबल होते हैं कि स्कूल, घर पर या रिश्तों को संभालने के दौरान उनकी कार्य करने की क्षमता गंभीर रूप से कमजोर हो जाती है।

ए.पी.ए. के अनुसार, हाल के वर्षों में कॉलेज मानसिक स्वास्थ्य परामर्श के लिए जाने वाले छात्रों का प्रतिशत बढ़ रहा है, रिपोर्ट के अनुसार सबसे आम कारक के रूप में चिंता, दूसरे के रूप में अवसाद, तीसरे के रूप में तनाव, चौथे के रूप में पारिवारिक मुद्दे और शैक्षणिक मुद्दे हैं। प्रदर्शन और रिश्ते की समस्याएं पांचवें और छठे स्थान पर हैं।

शिक्षाविदों और स्कूली जीवन पर सामान्य विकार का प्रभाव—

मानसिक विकार कक्षा में सीखने को प्रभावित कर सकते हैं, जैसे कम उपस्थिति, शैक्षणिक प्रदर्शन में कठिनाइयाँ, खराब सामाजिक एकीकरण, स्कूल में समायोजन में परेशानी, व्यवहार विनियमन के साथ समस्याएं, और ध्यान और एकाग्रता के मुद्दे, ये सभी सफलता के लिए महत्वपूर्ण हैं। विद्यार्थी। हाई स्कूल के छात्र जो मनोसामाजिक शिथिलता के लिए सकारात्मक परीक्षण करते हैं, वे उन छात्रों की तुलना में तीन गुना अधिक अनुपस्थित और विलंबित दिनों की रिपोर्ट करते हैं जो शिथिलता की पहचान नहीं करते हैं। इससे स्कूल छोड़ने की दर बहुत अधिक हो जाती है और समग्र शैक्षणिक उपलब्धि कम हो जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, भावनात्मक, व्यवहारिक और मानसिक स्वास्थ्य विकारों वाले केवल 40 प्रतिशत छात्र हाई स्कूल से स्नातक होते हैं, जबकि राष्ट्रीय औसत 76 प्रतिशत है।

चिंता—

सांख्यिकीय रूप से, चिंता विकार वाले छात्रों के कॉलेज जाने की संभावना उन लोगों की तुलना में कम होती है, जो सामाजिक भय से पीड़ित होते हैं, और सामाजिक भय वाले छात्रों के एक ग्रेड में असफल होने या हाई स्कूल की पढ़ाई पूरी न कर पाने की संभावना उन छात्रों की तुलना में दोगुनी होती है, जिन्हें कभी यह स्थिति नहीं हुई है। ए.डी.एच.डी. जैसे विघटनकारी व्यवहार विकारों की तुलना में चिंता विकारों को पहचानना आम तौर पर अधिक कठिन होता है क्योंकि लक्षण आंतरिक होते हैं। चिंता रोजमर्रा की जिंदगी के नियमित हिस्सों, गतिविधियों, स्कूल या सामाजिक संपर्कों से बचने के बारे में आवर्ती भय और चिंताओं के रूप में प्रकट हो सकती है और यह ध्यान केंद्रित करने और सीखने की क्षमता में हस्तक्षेप कर सकती है।

इसके अतिरिक्त, चिंता विकार छात्रों को सामाजिक संबंध बनाने या बनाने से रोक सकते हैं, जो छात्रों की अपनेपन की भावना को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है और बदले में उनके स्कूल के अनुभव और शैक्षणिक प्रदर्शन को प्रभावित करता है। छात्र सामाजिक चिंता से पीड़ित हो सकते हैं, जो उन्हें बाहर जाने और नए लोगों के साथ नए रिश्ते बनाने या किसी भी सामाजिक प्रतिक्रिया से रोक सकता है।

एक विशिष्ट चरित्र होता है जिसे चिंता से ग्रस्त लोग अक्सर अनुभव करते हैं। चिंता से ग्रस्त लोग रोजमर्रा की स्थितियों के बारे में बार-बार चिंता और भय का अनुभव करते हैं। चिंता को तीव्र भय या आतंक की अचानक भावना के रूप में भी पहचाना जा सकता है जो कुछ ही मिनटों में चरम पर पहुंच सकती है। ये चिंता लक्षण आमतौर पर बचपन या किशोरावस्था के दौरान विकसित होते हैं और वयस्कता तक जारी रह सकते हैं। लक्षणों के कुछ उदाहरणों में शामिल हैं: घबराहट, बेचौनी या तनाव महसूस करना, आसन्न खतरे, घबराहट या विनाश की भावना होना, हृदय गति का बढ़ना, तेजी से सांस लेना, पसीना आना, कांपना, कमजोर या थका हुआ महसूस करना, ध्यान केंद्रित करने या किसी अन्य चीज के बारे में सोचने में परेशानी होना। वर्तमान चिंता की तुलना में, सोने में परेशानी होना, गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल समस्याओं का अनुभव करना, चिंता को नियंत्रित करने में कठिनाई होना, या चिंता पैदा करने वाली चीजों से बचने की इच्छा होना। इसके अलावा, कई अलग-अलग प्रकार के चिंता विकार हैं जो एगोराफोबिया, एक चिकित्सा स्थिति के कारण चिंता विकार, सामान्यीकृत चिंता विकार, आतंक विकार, चयनात्मक उत्परिवर्तन, पृथक्करण चिंता विकार, सामाजिक चिंता विकार, विशिष्ट भय, पदार्थ-प्रेरित चिंता विकार आदि हैं।

अवसाद—

अवसाद के कारण छात्रों को कक्षा में अपना काम पूरा करने से लेकर यहाँ तक कि कक्षा में उपस्थित होने तक में समस्याएँ हो सकती हैं। 2020 में, 12 से 17 वर्ष की आयु के लगभग 13 प्रतिशत युवाओं को पिछले वर्ष में एक प्रमुख अवसादग्रस्तता प्रकरण (एम.डी.ई.) हुआ है, जिसमें से 70 प्रतिशत का उपचार नहीं किया गया। कोलंबिया विश्वविद्यालय के नेशनल सेंटर फॉर मेंटल हेल्थ चेकअप के अनुसार, “उच्च अवसाद स्कोर कम शैक्षणिक उपलब्धि, उच्च शैक्षिक चिंता, स्कूल निलंबन में वृद्धि, और होमवर्क पूरा करने, ध्यान केंद्रित करने और कक्षाओं में भाग लेने की क्षमता या इच्छा में कमी से जुड़े हुए हैं।” अवसाद के लक्षण छात्रों के लिए पाठ्यक्रम के भार को बनाए रखना या यहां तक कि पूरे स्कूल के दिन को पूरा करने के लिए ऊर्जा ढूँढना चुनौतीपूर्ण बना सकते हैं।

अवसाद को एक चिकित्सीय बीमारी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो आपके महसूस करने, सोचने और कार्य करने के तरीके को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। अच्छा पक्ष यह है कि अवसाद का इलाज संभव है। अवसाद तब होता है जब आपको उदासी की भावना आती है या उन गतिविधियों में रुचि कम हो जाती है जिनका आप पहले आनंद लेते थे। इससे बाद में कई तरह की भावनात्मक और शारीरिक समस्याएँ हो सकती हैं। साथ ही, इससे अंदर और बाहर कार्य करने की क्षमता भी कम हो सकती है। अवसाद के लक्षणों के कुछ उदाहरण उदास महसूस करना, रुचि में कमी, भूख में बदलाव, सोने में परेशानी, ऊर्जा की हानि, उद्देश्यहीन शारीरिक गतिविधि में वृद्धि, बेकार महसूस करना, सोचने, ध्यान केंद्रित करने या निर्णय लेने में कठिनाई और मृत्यु या आत्महत्या के विचार हैं। ये लक्षण आम तौर पर दो सप्ताह तक बने रहने चाहिए और अवसाद के निदान के लिए कामकाज में बदलाव का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।

ध्यान अभाव सक्रियता विकार—

ध्यान संबंधी विकार शैक्षणिक उपलब्धि में कमी के प्रमुख भविष्यवक्ता हैं। एडीएचडी वाले छात्रों को संयुक्त राज्य अमेरिका में सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली द्वारा मांगे गए व्यवहार और प्रथाओं में महारत हासिल करने में परेशानी होती है, जैसे चुपचाप बैठने की क्षमता या विस्तारित अवधि के लिए एक केंद्रित कार्य पर खुद को लागू करने की क्षमता। ए.डी.एच.डी. का मतलब यह हो सकता है कि छात्रों को एकाग्रता, ध्यान भटकाने वाली बाहरी उत्तेजनाओं को छानने और बड़े कार्यों को पूरा होते देखने में समस्या हो रही है। ये छात्र समय प्रबंधन और संगठन के साथ भी संघर्ष कर सकते हैं।

ए.डी.एच.डी. का मतलब ध्यान-अभाव/अतिसक्रियता विकार है। इसे बच्चों के लिए सबसे आम मानसिक विकारों में से एक माना जाता है, हालांकि यह कई वयस्कों को भी प्रभावित करता है। लक्षणों के कुछ उदाहरणों में विवरणों पर ध्यान न देना और लापरवाही से गलतियाँ करना, गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित रहने में समस्या होना, सुनने में असमर्थ होना, व्यवस्थित करने में समस्याएँ होना, कार्यों से बचना और दैनिक कार्यों को भूल जाना शामिल हैं।

संदर्भिका

- चटर्जी, एस., मुखर्जी, एम.एण्ड बनर्जी एस.एम.: इफेक्ट ऑफ सर्टेन सोशियो-इकानोमिक फेक्टर्स ऑन द स्कालिस्टिक अचीवमेण्ट ऑफ स्कूल चिल्ड्रेन, साइकोमेट्रिक रिसर्च एण्ड सर्विस यूनिट।
- जगदीश एण्ड यादव, एस.: रिलेशन बिटविन होम डेप्राइव्ड एण्ड मेण्टल हेल्थ एमंग स्कूल स्टूडेंट्स इण्डियन जर्नल ऑफ साइकोमेट्री एण्ड एजुकेशन।
- जेहान ओ.एण्ड अहमद पी.: लेवल ऑफ इंटेलीजेंस ऑफ एडवान्टेज्ड एण्ड डिसएडवान्टेज्ड चाइल्ड ऐट आर0ए0के0 कालेज ऑफ नर्सिंग, न्यू डेलही।
- ड्यूी सी.पी.: इफेक्ट्स ऑफ एवायरमेण्टल डेप्राइव्ड एण्ड ऑन बेसिक साइकोलॉजिकल प्राससेज. पेपर प्रजेन्टेड ऐट एनुअल मीटिंग ऑफ द अमेरिकन एजुकेशन रिसर्च एसोसिएशन इन मिकागो, इलिनोइस।
- त्यागी, गुरुसरनदास तथा नन्द, विजय कुमार: "उदयीमान भारत में शिक्षा", विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
- तिवारी आर: ए स्टडी ऑफ द अचीवमेण्ट मोटीवेशन, इटेलीजेन्स एण्ड पर्सनालिटी ट्रेट्स ऑफ प्रिविलेज्ड एण्ड डेप्राइड चिल्ड्रेन, पी-एच0डी0 थीसिस इन साइकोलॉजी, आर.एस. यूनिवर्सिटी।
- थामस एस.: ए स्टडी ऑफ एडजस्टमेंट ऑफ प्रि यूनिवर्सिटी स्टूडेंट्स इन रिलेशन टू देअर मेण्टल हेल्थ. प्रोसिडिंग्स ऑफ सेकेण्ड कानफरेन्स ऑफ काउन्सिल ऑफ विहेविरल साइन्टिस्ट्स, आगरा।
- देवा जे.के.: विद्यार्थियों के आत्म सम्प्रत्यय, शैक्षिक अभिप्रेरणा, कक्षा का वातावरण तथा शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन, शोध प्रबन्ध (शिक्षा), एम.एस.यूनि., बडौदा।
- देसाई एस.डी.: ए स्टडी ऑफ क्लासरूम एथोज प्यूपिल्स मोटीवेशन एण्ड एकैडमिक अचीवमेण्ट, पी-एच.डी. (एजुक.), एम.एस.यूनिवर्सिटी, बडौदा।
- पचौरी, गिरीश: उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।
- पाण्डेय, के.पी.: मनोविज्ञान एवं शिक्षा में सांख्यिकी, विविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी।
- पाण्डेय, के.पी.: शैक्षिक अनुसंधान, विविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी।



तुलनात्मक अध्ययन की परंपरा तथा स्वरूप की स्थिति कैसी थी ? यह आधुनिक काल की देन है अथवा पहले भी इस प्रकार के कार्य होते रहे हैं ? इन सब के उत्तर पाने के लिए हमें तुलनात्मक अध्ययन के इतिहास पर प्रकाश डालना होगा। प्रारंभिक स्थिति में जब एक शैक्षणिक रूप के साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन आया, तो इसे लेकर विद्वानों में कई प्रकार की आशंकाएं थी तथा उसे अपर्याप्त भी घोषित किया गया क्योंकि निश्चित प्रतिमानों के आधार पर साहित्य का विवेचन, विश्लेषण मुश्किल हो जाता है। भारत में जहां मिश्रित संस्कृति है, कई जातियाँ, कई भाषाएँ हैं, कई प्रान्त हैं, वहाँ सब तुलनात्मक अध्ययन में अपनी अलग पहचान बना सकते हैं। दो भिन्न संस्कृतियों, भाषाओं की तुलना की जाए जिससे साहित्यकारों के सामने एक भिन्न तरह की चुनौती प्रस्तुत हुई है।

संस्कृत की तुलनात्मक सूक्तियाँ ही हिंदी की पूर्णवर्ती तुलनात्मक आलोचना का आदर्श बनी, क्योंकि यदि तुलनात्मक आलोचना के प्रारूप को देखा जाए तो वह सूक्तियों में ही दिखाई देता है। कहीं-कहीं सूक्तियों में एक ही कवि की रचना में निहित सौंदर्य की तुलनात्मक आलोचना भी परलक्षित होती है। जैसे महाकवि कालिदास के नाटक 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' की आलोचना करते हुए एक प्रसिद्ध उक्ति है कि काव्य में नाटक सुंदर होते हैं और उनमें भी 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' श्रेष्ठ है। उदाहरण के द्वारा यह बात स्पष्ट हो जाती है कि तुलनात्मक आलोचना के लिए गहन सूक्ष्म दृष्टि की अपेक्षा है, जो कृति में से सौंदर्य को ढूँढ़ कर पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर दे। इस प्रकार तुलनात्मक काम सूझ-बूझ और परिश्रम का है। इसी तरह अनेक सूक्तियाँ हमें मिलती हैं जो तुलनात्मकता का महत्त्व और उसकी परंपरा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। भवभूति के विषय में कहा गया है कि यदि सारे संस्कृत साहित्य के कारण रस की अभिव्यंजना करने में कोई पूर्ण सफल हुआ है, तो वह भवभूति ही हैं। प्रस्तुत वाक्य भी तुलनात्मकता को आधार बनाकर कहा गया है जो भवभूति को तो सर्वश्रेष्ठ घोषित करता है, साथ ही इस बात पर प्रकाश डालना है कि कहने वाले ने पूरे संस्कृत साहित्य का अध्ययन, परीक्षण करके उपर्युक्त वाक्य कहा है। भवभूति ने करुण रस को रसराज की संज्ञा देकर इतने प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है कि पाठक की करुण रस को रसराज और भवभूति को करुण रस का सर्वोच्च कवि कहे बिना न रहे सकें।

संस्कृत के रचनाकारों ने देशी भाषा व उसके साहित्य के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई। कुछ टीकाएँ जो साम्य-वैषम्य के आधार पर की गयी थी, वे हमें छठी शताब्दी के दौरान मिलती हैं जिसमें अभिज्ञानशाकुंतलम् और मेघदूत की टीकाएँ हैं। बाद में कुंतक तथा अभिनवगुप्त ने इसे सर्वव्यापक बनाया। संस्कृत भाषा की तुलना अन्य देशी भाषाओं से करके ज्ञान का विस्तार किया जा सकता था लेकिन संस्कृत को देशभाषा समझने वाले विद्वत् जनों के लिए यह असहनीय तथा अमानवीय था किंतु “आक्सफोर्ड लेक्चर ऑफ पोयट्री में जब रॉबर्ट लाउथ ने हेब्रू कविता के साथ यूनानी कविता की तुलना की, तब भारत वर्ष में देव भाषा संस्कृत की कविताओं के साथ देसी या विदेशी भाषाओं की तुलना एक अमानवीय व्यवहार था इसलिए भारत में प्रारंभ से ही भारतीय फ़ारसी तथा अरबी कविताओं के तुलनात्मक अध्ययन की जरूरत नहीं थी। यद्यपि 18वीं शताब्दी में संस्कृत देसी भाषा अथवा अरबी, फ़ारसी जानने वाले विद्वानों भारत में मौजूद थे इसीलिए 19वीं शती के अंत में जब इस देश में आधुनिक साहित्य का प्रसार हुआ तब हमारे यहाँ तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन की कोई परंपरा मान्य नहीं थी।”¹

कुछ समय बाद जब हमारे देश में अंग्रेजी संस्कृति के प्रभाव में आई, तो हिंदी साहित्य की तुलना अंग्रेजी साहित्य से की जाने लगी। 19वीं शताब्दी में यूरोपीय विद्वानों ने एशियाई भाषाओं के साहित्य पर भारतीय साहित्य के प्रभाव को परिलक्षित किया, इसी समय यूरोपीय विद्वानों द्वारा संस्कृत की खोज ने भाषायी तुलनात्मकता के क्षेत्र में प्रेरणा का काम किया। पौराणिक तथा धार्मिक प्रश्नों को लेकर यूरोपीय तथा भारतीय संदर्भों में तुलनात्मक अध्ययन होने लगे। बिलियन जॉस ने जब संस्कृत और लैटिन तथा ग्रीक भाषाओं में अजीब समानता होने की बात कही, तो इसे लेकर बौद्धिक जगत में उत्सुकता देखी गयी। जिसने तुलनात्मक अध्ययन के विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया गया।

आधुनिक काल के दौरान तुलनात्मक अध्ययन देखा जाए, तो हमें पृष्ठभूमि के रूप में माइकेल दत्त मधुसूदन का नाम याद आता है जिन्होंने यूरोपीय तथा भारत के कवियों व्यास, कालिदास, होमर, मिल्टन को एक ही मंच पर प्रस्तुत किया। माइकेल दत्त मधुसूदन के अनुसार- “माइकेल ने साहित्य की एक नई आलोचनात्मक पद्धति की ओर संकेत किया, जो एक राष्ट्रीय साहित्य के अध्ययन से जुड़ी हुई आलोचनात्मक पद्धति से भिन्न थी। जाने-अनजाने दत्त भारत में एक आलोचनात्मक पद्धति का विकास कर रहे थे, जिसके अंतर्गत विभिन्न भाषाओं में लिखित

* शोधार्थी, पीएच.डी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007 मो. 9555923006, ई.मेल- lavleshkumar1606@gmail.com

देसी तथा विदेशी साहित्य को आपस में मिलाकर तुलनात्मक अध्ययन के प्रसार की संभावना दिखाई पड़ने लगी थी। बांग्ला साहित्य पर इसका तत्कालीन प्रभाव सन् 1873 में लिखित बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय का निबंध शाकुंतला मिरांडा तथा डेसडोमना है।²

इस विषय पर इंद्रनाथ चौधरी का मत इस प्रकार से है कि- “बंकिम बाबू ने इस प्रकार की तुलनात्मक आलोचना का प्रसार करते हुए शेक्सपीयर को कालिदास से ज्यादा महत्त्वपूर्ण नाटककार स्वीकार किया और बायरन तथा शैली की प्रकृतिपरक कविताओं के साथ बौद्धिक ऋतुओं की तुलना की।”³

तुलनात्मक अध्ययन का प्रसाद करते हुए बंकिम बाबू ने जब अपने निबंधों में चरित्र-चित्रण से स्तर पर भवभूति और शेक्सपीयर की तुलना की और विश्लेषण के क्रम में 'कुमारसंभव' तथा मिल्टन के पैराडाइज लास्ट की तुलना की, भक्ति और शृंगारिकता की दृष्टि से विद्यापति और जयदेव की तुलना की, तब उन्होंने विभिन्न साहित्यों की दुनिया को खंडित न मानकर एक इकाई के रूप में उसे ग्रहण किया। इस प्रकार से देखते हैं कि बंकिम द्वारा चलाई गई तुलनात्मक अध्ययन की परंपरा ने जहाँ हमें साहित्यिक अखंडता प्रदान की, वही नई विश्व दृष्टि भी दी जो सभी को एक सूत्र में समेटती और पिरोती दिखाई देती है। जिसमें व्यावहारिक अनुशासन की तो प्रधानता है ही साथ ही तटस्थता का गुण भी विद्यमान है।

हिंदी साहित्य में तुलनात्मक अध्ययन का प्रस्थान भारतेंदु युग में दिखाई देता है। भारतेंदु काल में लेखकों ने भारतीय प्राचीन संस्कृति के तत्त्वों को फिर से जानने पहचानने को प्रेरित किया। इसी चिंतन पद्धति के अनुकूल इस युग के तुलनात्मक आलोचकों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, अनंत राम पांडेय ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता, समाज, धर्म और साहित्य परिपोषक संस्कृत-साहित्य के मनीषी कवियों शृंगार रसराज के अमर कवि कालिदास और करुण रस के प्रवर्तक और सफल प्रयोक्ता महाकवि भवभूति की तुलनात्मक पद्धति की गरिमा जो संस्कृत युगीन कतिपय सूक्तियों में विद्यमान थी, उसे आधुनिक युग की चिंतनधारा के अनुरूप सफलतापूर्वक गद्य में व्यक्त करने की कोशिश की। तुलनात्मक आलोचना वैसे तो इस काल में कम ही मिलती है लेकिन इसे इसका अरुणोदय काल तो कहा ही जा सकता है। संस्कृत साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन की जो परंपरा सूक्ति में रूप मिली थी, वह भारतेंदु युग में आकर गद्यशैली के रूप में मुखरित हुई। इसी युग में संस्कृत साहित्य के काव्यशास्त्रीय मानदण्डों रस, छंद, अलंकार आदि के आधार पर दो कवियों और उनकी कविताओं पर विचाराभिव्यक्ति की जाती रही, जो हिंदी की सूक्तियों का मूल उद्देश्य था।

बालकृष्ण भट्ट जी ने श्रीधर पाठक द्वारा अनूदित गोल्ड स्मिथ की 'हरमिट' की आलोचना भी 'हिंदी प्रदीप पत्रिका' में प्रस्तुत की। गोल्ड की अंग्रेजी कविता तथा उसके सफल हिंदी अनुवाद की तुलना करते हुए भट्ट जी ने लिखा है- “हमारे मित्र पाठक महाशय ने अपने परिश्रम से अच्छी तरह जता दिया कि कविता के पश्चिमी संस्कार हमारे लिए दिलचस्प तथा मनोरंजन नहीं हो सकते हैं। इसमें संदेह नहीं अंग्रेजी अत्यंत विस्तृत भाषा तथा उन्नति के शिखर पर चढ़ी हुई है परंतु कविता अंश में हमारी देशी भाषाओं से कभी होड़ नहीं कर सकती। ग्रिफिथ साहब का रामायण शाकुंतला प्रभृति नाटकों का अनुवाद इस बात का पक्का सबूत है।”⁴

महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती पत्रिका' ने भी इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किए। द्विवेदी जी ने प्रस्तुत पद्धति का प्रयोग करते हुए हिंदी साहित्य की तुलना उर्दू साहित्य से की - “उर्दू लेखन और उर्दू-साहित्य को हिंदी से बढ़ा-चढ़ा मानते हैं।”⁵

द्विवेदी युग में तुलनात्मक साहित्य की धूम मच गई। पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबंधु भगवानदीन ने मतिराम, भूषण, देव, बिहारी के काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए वाद-विवाद के माध्यम से तुलनात्मक आलोचना को स्थापित किया। मतिराम और भूषण में श्रेष्ठ कौन है? इसका मूल्यांकन करते हुए मिश्रबंधुओं ने लिखा है कि - “पहले हम मतिराम को भूषण से बहुत अच्छा कवि समझते थे, पर पीछे इस विचार से शक होने लगा। उस समय हमने भूषण और मतिराम के एक-एक छन्द का मुकाबला किया। तब जान पड़ा कि मतिराम के प्रायः दस या बारह कवित्त तो ऐसे हैं कि उनका सामना भूषण का कोई कवित्त नहीं कर सका। यह तुलना केवल पद्य पढ़कर ही नहीं की गई वरना प्रत्येक पद्य को नंबर देकर मनोहर पद्यों की संख्या और प्रति सैकड़ों उनका औसत लगाकर सब बातों पर कई दिन तक ध्यानपूर्वक विचार करने के उपरांत की गई थी।”⁶

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विभिन्न आलोचनात्मक कृतियों में कालिदास और बिल्हण कालिदास और भवभूति, कालिदास और शेक्सपीयर, कालिदास और वाल्मीकि तथा व्यास की तुलना प्रस्तुत कर तटस्थ तुलनात्मक दृष्टि का परिचय दिया। द्विवेदी जी ने 'कालिदास की निरंकुशता' लेख में कालिदास की उपमाओं को सब कवियों से श्रेष्ठ बताया। इसी प्रकार पंडित, पद्मसिंह शर्मा की 'बिहारी की सतसई' 'लाला भगवानदीन की 'बिहारी और देव' पं. कृष्णविहारी मिश्र 'देव और बिहारी' पं. छन्नू लाल द्विवेदी की 'कालिदास और शेक्सपीयर' आदि कृतियाँ तुलना को आधार बनाकर लिखी गई। पद्मसिंह शर्मा की 'बिहारी सतसई' को तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत विशेष स्थान प्राप्त हुआ। पं. कृष्णविहारी मिश्र की तुलनात्मक कृति को उत्तेजित और प्रोत्साहित किया है। जिसका निष्कर्ष यह निकला कि देव और बिहारी की भूमिका में उन्होंने शर्मा जी की आलोचनात्मक दृष्टि को पक्षपातपूर्ण घोषित किया। उन्होंने देव को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करने के लिए उनकी तुलना केवल बिहारी से ही नहीं बल्कि हिंदी के कई शृंगारिक कवियों से की। मिश्र जी ने अपनी तुलनात्मक आलोचना में काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर देव की व्याख्या की। उन्होंने पक्षपात रहित तुलना को महत्त्व देते हुए किसी भी ग्रंथ को

उत्तम सिद्ध करने के लिए उपयुक्त कारणों, तर्कों की खोज की। उनकी मान्यता है कि - “इन सब बातों का सम्यक उल्लेख होना चाहिए कि किन कारणों से वह ग्रन्थ उत्तम कहा जाएगा। ग्रन्थकर्ता को लेखकों या कवियों में कौन सा स्थान मिलना चाहिए। उस विषय के जो अन्य लेखक हैं उनके साथ मिलान करके दिखाना चाहिए कि उनसे यह किस बात में उच्च या निम्न है। ग्रन्थों की अपेक्षा इस प्रकार के ग्रन्थों का विशेष आदर होना चाहिए तो किन कारणों से।”⁷

इस प्रकार उपयुक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलनात्मक साहित्य के लिए आवश्यक है सही तर्कों की तटस्थता। तभी तुलनात्मक साहित्य महत्वपूर्ण और गतिप्राप्त कर सकता है, जब उसमें निष्पक्षता आए। मिश्रा जी ने तुलनात्मक आलोचना के व्यावहारिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए ‘मतिराम ग्रंथावली’ की भूमिका में स्वतंत्र शीर्षक देकर लिखा है कि- “गोवर्द्ध-नाचार्य, सूर, तुलसी, केशव, नरहरि, रसखान, बिहारी, भूषण, देव भिखारीदास, तोष, रघुनाथ, पद्माकर आदि रीतिकवियों के अतिरिक्त रविंद्रनाथ और शेक्सपीयर से भी मतिराम की तुलना की।”⁸

तुलनात्मक अध्ययन को एक नई दिशा प्राप्त हुई ‘पन्त और पल्लव’ से। जिसमें निराला व्यंग्य शैली को अपनाते हुए नवीन विषय परिवर्तन किया।

तुलनात्मक आलोचना की जब बात चल रही हो, उसमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का नाम न आए तब तक बात अधूरी ही रह जाती है। शुक्ल जी की आलोचना में हमें पूर्ववर्ती आलोचना का परिष्कृत रूप मिलता है, जिन्होंने पूर्वाग्रह से ऊपर उठकर उसे वस्तुपरक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है। अपने प्रिय कवि तुलसीदास सूरदास की बाललीलाओं के वर्णन की तुलना करते हुए लिखते हैं कि- “यद्यपि तुलसी के समान सूर का काव्य क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है, कि उसमें जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं का समावेश हो, पर जिस परिमित पृष्ठभूमि में उनकी वाणी ने संरचना किया उसका कोई भी कोना अछूता नहीं है। शृंगार एवं वात्सल्य के क्षेत्र में जहां तक उनकी दृष्टि पहुंची, वहां तक और किसी कवि की नहीं। गोस्वामी तुलसीदास ने ‘गीतावली’ में बाललीला को इनकी देखा-देखी बहुत अधिक विस्तार दिया। उसमें बालसुलभ भावों तथा चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आई, उसमें रूप वर्णन की ही प्रचुरता रही। बाल चेष्टाओं के स्वाभाविक मनोहर चित्रों का इतना बड़ा भंडार कहीं नहीं।”⁹

अपने प्रिय कवि की तुलना दूसरे से करते हुए भी शुक्ल जी कहीं तुलसी के पक्षधर नहीं दिखाई देते बल्कि पक्षपातरहित ढंग से दोनों कवियों की रचनाओं पर विचार कर अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं। इस प्रकार एक नमूना हमें ‘कबीर’ और ‘जायसी’ की तुलना के दौरान दिखाई देती है- “कबीर ने अपनी झांड-फटकार के द्वारा हिंदुओं तथा मुसलमानों के कट्टरपन को दूर करने का जो प्रयास किया। वह अधिकार चिढ़ाने वाला सिद्ध हुआ, हृदय स्पर्श करने वाला नहीं। मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है, वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदयाभास का अनुभव मनुष्य कभी-कभी किया करता है उसकी अभिव्यंजना उसमें नहीं हुई है।”¹⁰

शुक्ल जी ने सर्वप्रथम ‘गोस्वामी तुलसीदास’ के समान आलोचना के साथ अपनी तुलनात्मक का आदर्श प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् ‘जायसी’ ग्रंथावली की भूमिका, भ्रमरगीत सार तथा हिंदी साहित्य का इतिहास में हिंदी कवियों की तुलनात्मक आलोचना के दर्शन हुए, आगे चलकर तुलनात्मक आलोचना ने विस्तृत प्रारूप प्राप्त किया, जिसमें शोध ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की क्योंकि अब केवल आलोचकों का कार्य आलोचना करना ही नहीं था बल्कि उन नए तथ्यों की खोज करना भी था जो उनके तुलनात्मक अर्थ को और भी सही स्थान प्रदान करें।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से पता चलता है कि हिंदी साहित्य में आधुनिक से बहुत पहले ही तुलनात्मक आलोचना का प्रसार हो चुका था। आधुनिक काल के पश्चात् तुलनात्मक साहित्य को प्रकाश में लाने तथा उसे गति प्रदान करने का कार्य पत्र-पत्रिकाओं ने किया। पत्र-पत्रिकाओं के कारण ही तुलनात्मक आलोचना अस्तित्व में आई और अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। वर्तमान समय में तुलनात्मक आलोचना का विषय प्रासंगिक होता जा रहा है।

तुलनात्मक अध्ययन की उपयोगिता- जीवन में भाषा का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। मानव के जीवन में जो भी विकास हुआ है उसका एकमात्र साधन भाषा ही है क्योंकि यही वह साधन है जिसके द्वारा हम अपने भावों व विचारों को व्यक्त करते हैं। साधारण तौर पर भाषा की वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम है। भाषा का महत्व आज हर कोई जानता है। इसी संदर्भ को जब हम तुलनात्मक आदान-प्रदान करते हैं तो इसकी उपयोगिता व महत्व और भी अधिक बढ़ जाती है। तुलनात्मक अध्ययन का क्षेत्र तो ज्ञान की सभी शाखाओं में व्याप्त है।

भाषा विषयक तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा हमें यह समझने में आसानी होती है, कि किसी कवि द्वारा प्रयुक्त काव्यभाषा का स्वरूप क्या है? तथा उसमें किन-किन तत्वों का समावेश है। आचार्य मंगलदेव शास्त्री का मत है कि- “भाषा के स्वरूप को समझने व समझाने के लिए और भाषा विषयक सामान्य सिद्धांतों का निश्चय करने के लिए यह आवश्यक है कि हम अलग-अलग भाषा परिवारों की भाषाओं को आपस में तुलना करें, किंतु अन्य किसी भाषा विशेष के स्वरूप को समझाने के लिए तथा उनके भाषागत नियमों का पता लगाने के लिए भी तुलनात्मक प्रक्रिया की बहुत ही आवश्यकता है।”¹¹

किन्हीं दो कवियों का भाषा विषयक तुलनात्मक अध्ययन इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है क्योंकि जहाँ एक ओर इससे उनकी भाषा संरचना, भाषा पद्धति, शब्द स्वरूप, शब्दार्थ, वाक्य विन्यास आदि का उद्घाटन होता है वहीं दूसरी ओर वाक्य स्रष्टाओं का तथा सृष्टि का सम्यक आनंद भी उपलब्ध होता है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए यह भी आवश्यक है कि दोनों रचनाकारों की अधिकांश सूचनाएं एक ही भाषा में हो तथा उनका स्तर भी निम्नलिखित रूप में समान हो। किसी भी कवि की काव्यभाषा का अध्ययन मुख्य रूप से दो आधारों पर किया जाता है। प्रथम भाषा वैज्ञानिक आधार जिसमें वर्ण से लेकर वाक्य तक की सभी इकाईयों का अध्ययन होता है। द्वितीय काव्यशास्त्रीय आधार जिसमें काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों जैसे अलंकार, रस, गुण, रीति, वृत्ति, औचित्य, वक्रोक्ति आदि दृष्टि से विचार किया जाता है। तुलनात्मक अध्ययन में इन दो आधारों पर ही दो कवियों की काव्यभाषा की तुलना की जाती है तथा नवीन निकषों की स्थापना करना शोधकर्ता का ध्येय होता है।

भाषागत तुलनात्मक दृष्टिकोण हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल में भी देखते हैं। उन्होंने तुलसीदास के 'रामचरितमानस' तथा जायसी के 'पद्मावत' की भाषा विषयक तुलना करते हुए लिखा है कि- "जिस प्रकार चौपाई, दोहे के क्रम से जायसी ने अपना पद्मावत नाम का प्रबंध काव्य लिखा उसी क्रम में गोस्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस लोगों के कंठ का हार बन गयी। भाषा वही अवधी है केवल पदविन्यास का भेद है। गोस्वामी जी शास्त्रगत विद्वान थे। अतः उनकी शब्दयोजना साहित्यिक और संस्कृतगर्भित है। जायसी में केवल ठेठ अवधी का माधुर्य है, पर गोस्वामी जी की रचना में संस्कृत की कोमल पदावली का बहुत ही मनोहर मिश्रण है।"¹²

इसमें यह भी पता चलता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल भाषागत तुलनात्मक अध्ययन के महत्त्व को समझते थे। इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी अपने 'हिंदी साहित्य का अतीत भाग-1' में यह बताया है कि रीतिकाल में ब्रजभाषा और अवधी भाषा के पृथक प्रयोग मिलकर एक हो गए। उन्होंने इस संदर्भ में आचार्य भिखारीदास की यह पंक्ति 'तुलसी गंग दुवों भए सुकबिन के सरदार' रखते हुए यह लिखा है कि - "जो लोग ब्रजभाषा का व्याकरण बनाने बैठे उन्होंने तुलसी के प्रभाव के रंजित भाषा को ही उदाहरण के लिए ग्रहण किया। फलतः उनका व्याकरण मिली-जुली भाषा का बना। इस मेल के कारण मानस में जो अवधी में है, कर्मिण प्रयोग ब्रज के से प्रया: हुए और कुछ लोगों को यह कहने के लिए बाध्य करते रहे कि मानस की अवधी को ब्रज से पृथक मानने की आवश्यकता नहीं।"¹³

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि तुलनात्मक अध्ययन को ग्रहण कर आलोचक जिज्ञासा के समंदर में कूद कर मानवीय ज्ञान के क्षितिज का विस्तार करता है, उसे मानवतावाद के साथ तो जोड़ता है साथ ही विश्व मानवतावाद के साथ भी जोड़कर उसके महत्त्व को विस्तृत और अधिक गहरा बना देता है। तुलनात्मक अध्ययन जो इतने महत्त्व और गहन उद्देश्य को लेकर हमारे सामने आता है, तो उसकी जड़े पहले से ज्यादा मजबूत हुई हैं। आधुनिक काल में यह हमें संस्कृत साहित्य से धरोहर के रूप में मिला, जो पल्लवित होकर आज तक कल्पवृक्ष के रूप में हमारे साहित्य में विराजमान है। विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न आधारों को ग्रहण करते हुए तुलनात्मक अध्ययन को अपना विषय बनाया। कुछ विद्वानों ने ऐतिहासिकता को आधार बनाकर तुलनात्मक अध्ययन रचा, तो कुछ ने हिन्दी साहित्य को ही अपनाते हुए उसमें दो भिन्न वर्ग के कवियों के साहित्य की तुलना की, तो कुछ ने एक कवि अथवा साहित्यकार हिन्दी का लिया और उसकी तुलना किसी अन्य अथवा हिन्दीतर कवि के साथ की। इन भिन्न-भिन्न आधारों अथवा प्रतिमानों को अपनाते हुए विभिन्न विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन की परंपरा का स्वरूप तथा उपयोगिता को समृद्ध किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, डॉ. इंद्रनाथ चौधरी, पृष्ठ संख्या-36
2. बंकिम रचनावाली, बंकिम चन्द चट्टोपाध्याय, पृष्ठ संख्या-576
3. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका, डॉ. इंद्रनाथ चौधरी, पृष्ठ संख्या-37
4. हिंदी आलोचना का इतिहास, रामदरश मिश्र, पृष्ठ संख्या -34
5. हिंदी आलोचना, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या-27
6. हिंदी नवरत्न, मिश्रबन्धु, पृष्ठ संख्या-20
7. देव और बिहारी, कृष्ण बिहारी मिश्र, पृष्ठ संख्या-33
8. मतिराम ग्रंथावली (भूमिका), सं. पं. कृष्णविहारी मिश्र, पृष्ठ संख्या-4
9. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या-92
10. वही, पृष्ठ संख्या-56
11. तुलनात्मक भाषा अथवा भाषा विज्ञान, डॉ. मंगलदेव शास्त्री, पृष्ठ संख्या-153
12. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या-102
13. हिन्दी साहित्य का अतीत भाग-1, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ संख्या-123

विकल्पहीनता वर्तमान की अवधारणा

डॉ. आमरीन हसन*

विकल्पहीनता उस स्थिति की ओर इंगित करती है, जहां किसी संस्था, प्रणाली तन्त्र, समाधान एवं प्रक्रिया का कोई विकल्प ही न हो। इस विकल्पहीनता का विश्लेषण आधुनिक विचारकों द्वारा राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं मानविकी के विषयों में किया गया है। प्रो. रजनी कोठारी ने अपने चर्चित लेख *दी यानिंग वैक्यूम* में विकल्पहीनता पर विचार किया है। इस लेख में आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र की उन परिस्थितियों का विश्लेषण किया है, जिनमें उत्पन्न समस्याओं के समाधान हेतु कोई निकटतम विकल्प दिखाई नहीं देता है। सत्तर और अस्सी की दशक में भारत के राष्ट्रीय क्षितिज पर तथा अन्तर्राष्ट्रीय जगत में आर्थिक और राजनीतिक जगत में आए परिवर्तनों ने राज्य के मध्यवर्गीय स्वरूप का क्षय कर दिया। सत्तर एवं अस्सी के दशक में ऐसा प्रतीत होता था कि कोई ऐसी संस्था या प्रणाली का उदय नहीं हो पा रहा था, जो तत्कालिक संस्थाओं का स्थान लेकर एक बेहतर विकल्प प्रस्तुत करे। प्रो. कोठारी की दृष्टि में उदारवाद एवं साम्यवाद जैसी प्रचलित विचारधाराएं भी विकल्पहीनता के शून्य को भरने में सहायक सिद्ध नहीं हो पा रही हैं।

‘अस्सी के दशक में वैचारिक निराशा की स्थिति इस सीमा तक भयावह है कि, कतिपय विचारकों ने अस्सी के दशक को *खोया हुआ दशक* करार दिया। कुछ विचारकों ने *इतिहास के अंत* की घोषणा करके स्वयं नवीन विचारों के कल्पना लोक में खो गये।’ प्रो. कोठारी ने कभी भी विचारों के ऐतिहासिक नियतवाद का समर्थन नहीं किया। वह निरंतरता में कम तथा निरंतरता – भंग के कार्यों के विश्लेषण में अधिक रुचि रखते हैं। प्रो. कोठारी ने स्वीकार किया है कि ‘आधुनिकता के प्रतिमानों के कारण मानव जाति ने अनेक सफलताएं अर्जित की हैं। संस्थाओं और प्रक्रियाओं की क्षरण ने तथाकथित मानव जनित सफलताओं का लाभ आम जनता को नहीं मिलने दिया। इसी ऐतिहासिक बिखराव तथा संस्थागत-संरचनागत क्षरण का विश्लेषण प्रो. कोठारी द्वारा विकल्पहीनता के महा संकट के रूप में किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय तथा स्थानीय स्तर पर पूंजीवादी शक्तियों के सृजन एवं विकास ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व के पायदानों पर उपजी लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के उत्तरोत्तर विकास में योगदान दिया है। इस व्यवस्था के तहत ही पूंजीवादी विचारधारा के समर्थन से पूंजीवादी व्यवस्था वाले राज्यों ने वैश्विक स्तर पर अपना विशाल साम्राज्य खड़ा किया है।

अधिकाधिक आर्थिक शक्ति अर्जित करके राजनीतिक श्रेष्ठता हासिल करने की ललक ने अपने प्रतिद्वन्दी को पछाड़ने या समूल नष्ट करने की भावना पैदा की। विभिन्न क्षेत्रों में गला काट प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया लाभ कमाने के लिए है। लगभग वैसी ही व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा की प्रस्थिति राजनीतिक जगत में भी है। प्रथम विश्वयुद्ध तथा द्वितीय विश्वयुद्ध इसी प्रकार की भावना का परिणाम कही जा सकती है।

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में कार्ल मार्क्स के विचारों से प्रभावित होकर *बोलशेविक क्रांति* के माध्यम से सोवियत संघ में जारशाही का अन्त हुआ। इस क्रांति के उपरान्त सर्वहारा वर्ग ने *साम्यवाद* के रूप में सत्ता पर अधिकार जमाया। साम्यवाद का विस्तार सोवियत संघ के बाहर पोलैण्ड, यूगोस्लाविया, हंगरी, आस्ट्रिया, क्यूबा, चीन, उत्तरी कोरिया तथा वियतनाम आदि देशों में हुआ। साम्यवादी अवधारणा की वैश्विक स्तर पर प्रसार के उपरान्त विचारकों को लगा कि साम्यवाद का उदय पूंजीवाद के विकल्प के रूप में हुआ है। सभी साम्यवादी देशों में *सर्वहारा वर्ग* की सैद्धान्तिकता के बीच राज्य को सर्वाधिकारवादी निकाय के रूप में स्थापित कर दिया। साम्यवाद में सर्वाधिकारवादी स्वरूप के कारण व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसी लोकतांत्रिक मूल्य तिरोहित हो गए। सम्पूर्ण विश्व दो ध्रुवों में विभक्त हो गया। एक ध्रुव का नेतृत्व पूंजीवाद की पुरोधा संयुक्त राज्य अमेरिका के हाथों में चला गया, जबकि साम्यवादी देशों ने सोवियत संघ का नेतृत्व स्वीकार कर लिया। यहां भी विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या वाले देश चीन ने अपनी अलग पहचान बनाए रखी। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साम्यवाद भी पूरी तरह से पूंजीवाद का विकल्प नहीं बन सका।

* सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, शिया पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

विश्व के अल्पविकसित तथा विकासशील देशों यथा — मिस्र में नासिर, भारत में पं. नेहरू तथा यूगोस्लाविया में टीटू के नेतृत्व में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन (*Non Aligned Movement*) के रूप में तीसरा विकल्प खोजने का प्रयास किया। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मंच पर तृतीय विश्व के राज्यों ने *समूह-77* के रूप में एक मजबूत संगठन बनाकर एक नया विकल्प बनाने की पहल की लेकिन सफल नहीं हो पाए। आर्थिक और राजनीतिक कारणों से इनमें से कुछ देश संयुक्त राज्य अमेरिका तो कुछ देश सोवियत संघ की नीतियों के समर्थक बन गए।

अस्सी के दशक में आर्थिक जगत में मांग और पूर्ति की शक्तियों पर आधारित बाजारी शक्तियों का उदय पूंजीवाद के विकल्प के रूप में हुआ। सन् 1990-1991 में सोवियत संघ के अचानक विघटन के साथ साम्यवाद जिसे विचारकों ने पूंजीवाद का एक बेहतर विकल्प बताया था, लगभग समाप्त हो गया। इसी के साथ राज्य नियन्त्रित केन्द्रीकृत आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया का अन्त हो गया तथा राज्य का स्थान बाजार ने ले लिया। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम से प्रो. कोठारी की विकल्पहीनता के विचार को बल मिलता है। प्रो. कोठारी ने इस बाजारीकरण को 'आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित न रखकर इसे समग्र जीवन के बाजारीकरण के रूप में वर्णित करना अधिक पसन्द करते हैं।'

बाजारीकरण का अर्थ राज्य की सत्ता को मानवीय एवं सामाजिक परिवर्तनों की वाहक शक्ति के दर्जे से हटा कर उसे बाजारी शक्तियों के हवाले कर देना मात्र नहीं है। यह प्रक्रिया पूर्व समाजवादी गणराज्यों के अर्थतंत्रों पर बाजारी शक्तियों पर आधारित पूंजीवाद के रूप में हावी हो जाने तक सीमित भी नहीं रह सकती है। 'विगत दो दशकों के दौरान चीन ने बाजारी अर्थव्यवस्था के नियंत्रित प्रतिमान को अपना कर सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर को 10 प्रतिशत से ऊपर पहुंचकर विश्व में सर्वाधिक तेजी से विकसित होने वाली अर्थव्यवस्था का दर्जा पा लिया है।' यह सर्वविदित है कि 'सं. रा. अमेरिका के बाद चीन ही विश्व की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है।' सामाजिक क्षेत्र की लगभग सभी प्रचालनों एवं सूचकांकों में चीन की उपलब्धियां विकासशील देशों में सर्वश्रेष्ठ हैं। खिलौनों, विद्युत उपकरणों, इलेक्ट्रॉनिक्स उपकरणों आदि क्षेत्रों में विश्व के अधिकांश बाजार चीन में निर्मित वस्तुओं से भरे पड़े हैं। सामरिक क्षेत्र में हिन्द महासागर तथा प्रशान्त महासागर में चीन अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रहा है। चीन अपनी *मुक्तमाल* की नीति से भारत तथा व्यापारिक गतिविधियों से सं. रा. अमेरिका को प्रत्यक्ष चुनौती दे रहा है। श्रीलंका, मारीशस, अफ्रीकी देशों में निवेश तथा आर्थिक सहायता को बढ़ा कर चीन अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपनी गहरी पैठ बना रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और आर्थिक जगत में चीन इस मिथक को तोड़ने में काफी हद तक सफल रहा है कि राज्य नियन्त्रित साम्यवादी ढांचे के अन्तर्गत बाजार नियन्त्रित पूंजीवादी व्यवस्था के लिए कोई स्थान नहीं है। चीन में वस्तुतः पूंजीवादी अर्थव्यवस्था साम्यवाद की छत्रछाया में ही फलफूल रही हैं। प्रो. कोठारी को इस स्थिति का आभास था। प्रो. कोठारी के अनुसार "असहमति और विपक्ष की ताकत अभी तक एहसास नहीं कर पायी हैं कि सामाजिक मूल्यों को नेपथ्य में धकेल दिया गया है। इतना ही नहीं, प्रौद्योगिकी आधारित प्रतिमानों ने सामाजिक प्रतिमानों पर निर्णायक बढ़त हासिल कर लिया। अंतर्राष्ट्रीय वैकल्पिक आंदोलनों को तो इसका एहसास और भी कम है। ये आंदोलन पर्यावरण, महिलाओं की स्थिति और निशस्त्रीकरण जैसे अभियानों में लुप्त होकर हाशिए पर चले गये हैं। किसी जमाने में वैकल्पिक प्रतिमानों के लिए प्रतिबद्ध रहे देशों द्वारा पूंजीवादी दबाव के सामने झुकने का विरोध करने के लिए मार्क्सवाद भी दुर्भाग्य से पर्याप्त ऊर्जा पैदा नहीं कर पाया। मार्क्सवादी प्रलय का पूर्वानुमान लगा पाते इससे पहले कि समाजवाद का दुर्ग ही ढह गया।"¹

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में जब विकल्पों पर चर्चा की जाती है तो गांधीवाद के चिरपरिचित सिद्धान्तों *सत्य*, *अहिंसा*, *सत्याग्रह* पर आधारित प्रतिमान स्वतः उभर कर सामने आ जाते हैं। प्रो. कोठारी के अनुसार, "पश्चिमी साम्राज्यवाद के स्पष्ट समर्थक और सिद्धान्तकार विस्टन चर्चिल की आंखों के सामने ही उनकी दुनिया तिरोहित हो गयी। वह *नंगा फकीर* और उससे जुड़ी हुयी दुनिया कहीं ज्यादा ताकतवर निकली। बाद में इसी प्रतिमान को अपनाकर अश्वेत नेता नेलसन मण्डेला ने दक्षिण अफ्रीका में नस्लवादी सरकार का अन्त किया। इसी सिद्धान्त के सहारे अफ्रीकी देशों — ट्यूनीशिया, लीबिया, मिस्र, में तानाशाही शासनों का अन्त हुआ। कुछ समय पहले म्यांमार में हुए उप चुनावों में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित सुश्री *आंग सांग सूकी* की समर्थकों को भारी विजय प्राप्त हुई। सुश्री *आंग सांग सूकी* की विजय ने वैकल्पिक अहिंसात्मक आंदोलन को गति प्रदान किया।

संदर्भग्रन्थ

- 1 दुबे, अभय कुमार : राजनीति की किताब, रजनी कोठारी का कृतित्व, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2003, पृ. 276
- 2 तदैव, पृ. 277-78
- 3 विश्व बैंक (2011) : विश्व विकास रिपोर्ट 2011, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी
- 4 तदैव
- 5 दुबे, अभय कुमार : राजनीति की किताब, रजनी कोठारी का कृतित्व, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2003, पृ. 282-283



मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में नारी चेतना का विवेचन

समर बहादुर*

हिन्दी उपन्यास साहित्य असीम नभ के समान है जो हजारों, लाखों, करोड़ों चमकते छोटे-बड़े नक्षत्रों को अपने अंदर समोया हुआ है, जो अपने ज्योतिपूर्ण गुणों एवं रूप से साहित्याकाश को अपूर्व सुन्दरता प्रदान करते हैं। साहित्य के इस नभ पर ध्रुव नक्षत्र सी विशेष आभा से प्रज्ज्वलित होने वाली लेखिका हैं— मृणाल पाण्डे जो अपने विशिष्टता, सृजनशीलता एवं नवीनता के कारण साहित्य जगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। मृणाल पाण्डे हिन्दी साहित्य जगत् में विशिष्ट विरल उपन्यासकार के रूप में पहचानी जाती हैं, जो विभिन्न अभिरुचि के कारण विशिष्ट एवं विविध विषयों को लेकर उपन्यासों की रचना करती हैं। उनके उपन्यास यथार्थ के धरातल पर निर्माण हुये हैं। मूलतः वे पत्रकारिता के क्षेत्र से जुड़ी, मंझी हुई पत्रकार हैं इस कारण उनकी तीक्ष्ण दृष्टि अनायास ही स्त्रियों से जुड़े खबरों की ओर खींचती चली जाती है। मृणाल जी ने स्त्रियों से जुड़ी अनेक नैज घटना एवं वारदातों को बहुत करीब से दर्शन करा दिया है। प्रस्तुत समाज की स्त्री की दशा पर बहुत दुःख का अनुभव भी किया है। यथार्थ घटनाओं के भावस्फंदन के फलस्वरूप इनके यथार्थवादी उपन्यासों का जन्म हुआ है। मृणाल पाण्डे नारी में निहित विशेष चेतना को पहचानती हैं। प्राचीन काल से नारी खुद पर हो रहे निरन्तर अन्याय, अत्याचारों को सहती हुई, झेलती हुई जीवन जीने के लिये प्रयास करती रही है। उसमें जीजिविषा की ज्योति निरन्तर जलती हुई दिखती है। जो आंधी, तूफान को झेलते, उससे लड़ती हुई बुझती-बुझती मंद होती फिर से एका-एक देदीप्यमान रूप से जलने की विशेष शक्ति रखती है। यही विशेष व्यक्ति हम पाण्डे जी के उपन्यासों की स्त्रियों में विशेष चेतना के रूप में देखते हैं।

मृणाल पाण्डे साठोत्तरी हिन्दी महिला साहित्यकारों में सशक्त लेखिका एवं स्त्री विमर्शकार के रूप में उभरकर आई हैं। इनकी दृष्टि हमेशा स्त्री संबंधित समस्याओं पर बनी रहने के कारण इनकी अधिकांश रचनायें स्त्री की अस्मिता और स्त्री मुक्ति की समस्याओं को सुलझाने की कोशिश में रहती है। इनके साहित्य में नारी की अस्मिता के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ का दर्शन भली-भांति होता है। नारी के विविध रूपों का चित्रण करके लेखिका ने, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, पारिवारिक, दैहिक, मानसिक जैसे अनेक समस्याओं में घिरी स्त्रियों की परिस्थिति को दर्शाया है। जीवन और जगत् की जिन परिस्थितियों ने नारी को शोषण का शिकार बनाया है। इसका भी विश्लेषण लेखिका ने किया है। मृणाल जी का नारी के प्रति यह दृष्टिकोण रहा है कि, उसे अपने समर्थकों द्वारा केवल मौखिक हमदर्दी न मिले अपितु उसकी उचित स्वतंत्रता के लिये उचित समर्थन भी प्राप्त हो जिसके बल पर स्त्री अपने अस्तित्व का निर्माण कर सके और समाज में अपनी उचित पहचान बना सके। उसे पुरुष से जुड़े संबंधों तक ही सीमित करके न देखा जाये, बल्कि पुरुष की तरह उसे भी मानवता का एक भिन्न तथा अनिवार्य और पूरक तत्व माना जाये। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को जन्मजात अनुचरी नहीं बल्कि सच्चे अर्थों में सहचरी के रूप में परिभाषित और प्रोत्साहित किया जाये। इस प्रकार नारी के प्रति मृणाल जी की विचारधारा दृढ़ है। वे स्त्री के लिये एक आरोग्यपूर्ण स्वच्छंद समाज की संरचना चाहती है। इसी कारण से वे नारी शिक्षा के साथ-साथ नारी स्वतंत्रता पर भी अधिक जोर देती है। बंद गलियों के विरुद्ध नामक सत्य घटनाओं पर आधारित स्त्री विषयक प्रबंध में वे लिखती हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी आत्महत्या और चारों ओर खड़ी बन्द गलियों के चक्रव्यूह के विरुद्ध कलम उठाते चलना अभिव्यक्ति के पुराने गढ़ और मठ तोड़ना एक स्त्री के लिये कैसे नये क्षितिज खोलता है। किस तरह यह सफलता से कर पाना एक स्त्री के लिये एक सिर से अपनी और इस दुनियाँ की नई परिभाषायें बनता जाता है, यह बात हमें उम्मीद है, इन लेखों को पढ़ने वाले हर पाठक शिद्दत से महसूस होगी। एक बार नहीं बार-बार। इस उम्मीद के साथ हम संपादक द्वारा इस संकलन को स्त्रियों की उस अथक जीजिविषा और प्रतिभा को समर्पित करते हैं।, जिसके बूते यह दुनियाँ बार-बार बचाई जा सकी है।

* शिक्षक, ग्राम – दतांव, पोस्ट– महुआरी (मीरगंज), जिला – जौनपुर उ.प्र. – 222165, मो.नं. 8004344916

इनके उपन्यास चाहे वह देवी हो या रास्तों पर भटकते हुये, अपनी गवाही या हमको दियो परदेस या पटरंगपुर पुराण हो इन सभी के कथानक नारी जीवन के इर्द गिर्द घूमते हैं। पूर्ण समाज के एवं परिवार के अंतर्गत भ्रमण करते हुए नारी की दशा को स्पष्ट रूप से निरूपित करती हैं। मृणाल की नारी शिक्षित है, आत्म निर्भर है, स्वतंत्र है। अशिक्षित होने पर भी विद्रोही मनोभाव वाली है। वह अपने जीवन के संघर्ष भरे यांत्रिक जीवन में भी आत्मविश्वास टूटने नहीं देती। वह अकेली ही अपनी अस्मिता की खोज में निकलती है। वही रूढ़ियों, मृत परम्पराओं और जड़ मान्यताओं से ऊपर उठकर अपनी चेतना का उदाहरण देती है। अपनी गवाही की शिक्षित बुद्धिमान, चेतना युक्त स्त्री, पुरुष कार्यक्षेत्र के जगत् में प्रवेश कर अपनी अस्मिता सिद्ध करती है। उसमें दुनियाँ की परम्परागत रीति-नियमों को धराशाही करने की क्षमता है। दुनियाँ को नई दिशा की ओर अग्रसर करने का साहस रखती है। मृणाल जी ने नारी मन एवं जीवन के असंख्य पहलुओं को अनछुये आयामों को, अनुभोग के हजारों क्षणों को एवं आंतरिक मानस की उत्पीड़न की गहरी विस्तृत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति को ईमानदारी से चित्रित किया है। ऐसे अनूठे साहित्य की रचना कर मृणाल पाण्डे ने नारी को नायाब रूप में उजागर किया है। इनका श्देवीश उपन्यासों की खान में एक विरल रत्न सा प्रतीत होता है। एक विशेष रिपोर्ताज शैली का उपयोग कर लेखिका ने अतीत और पौराणिक नारी की ऐतिहासिक यात्रा को प्रदर्शित किया है। पुराण कथा एवं प्रबंधों में नारी देवी स्वरूप में प्रतिष्ठित है। आज भी भारतीय हिन्दू समाज एवं संस्कृति में देवी के विविध रूपों को बड़ी पूज्य भावना से आराधना करते हैं, लेकिन जब पुराण कथाओं के अदृश्य विक्राल रूप का दर्शन होता है तब हम जानने लगते हैं कि देवियों पर भी देवता एवं राक्षसों ने शोषण किया है। वे भी वर्तमान समाज की नारियों जैसी अगणित, शोषण, हिंसा प्रताड़ना से गुजरी हैं। पाण्डे जी ने हर एक देवी की पुराण कथा के द्वारा परिचय देते हुये उन पर हुये शोषण को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है, साथ में आज के समाज में घटित स्त्रियों से जुड़ी विकृत घटनाओं को आधार एवं आखंडों सहित प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार मृणाल पाण्डे के उपन्यास नारी चेतना से ओत-प्रोत हैं। इनकी गद्य विशेषता की सराहना करती हुई एक पंक्ति हमें मिलती है— रचनात्मक गद्य की गहराई और पत्रकारिता की सहज संप्रेषणीयता से समृद्ध मृणाल पाण्डे की कथाकृतियाँ हिन्दी जगत् में अपने अलग तेवर के लिये जानी जाती हैं। उनकी रचनाओं में कथा का प्रवाह और शैली उनका कथ्य स्वयं बुनता है। मृणाल जी के हर एक उपन्यास नये प्रतिमानों एवं नई चेतना से पाठकों को आकर्षित करते हैं। उनके उपन्यासों की एक और विशेषता यह है कि यथार्थ चित्रण में नीरसता नहीं झलकती। उनका यथार्थ दृष्टिकोण में कलात्मकता का विशेष संतुलन है जिस वजह से उपन्यास में रोचकता निरंतर प्रभाव दिखाती है। चेतना के गहरे स्तरों को वाणी देने वाली मृणाल पाण्डे समकालीन रचनाकारों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

मेरा शोध विषय नारी चेतना पर केन्द्रित है। नारी चेतना एवं नारीवादी चिन्तन के महत्ता के बारे में कहा गया है कि इस संसार की अधिकतर संस्कृतियाँ पुरुष प्रधान संस्कृति के रूप में पहचानी जाती हैं। ऐसे समाज में नारी को हमेशा से एक जैविक वस्तु के रूप में ही देखा जाता रहा है पुरुषाधीन स्त्री पर जाने अंजाने कई प्रकार के अन्याय होते रहे हैं। इसी अन्याय के कारण अनेक शताब्दियों से नारी पीड़ित रही है। इसी पीड़ा की अभिव्यक्ति से ही नारीवादी चिन्तन का प्रारम्भ हुआ। विश्व के सभी देशों में नारी की दशा संदर्भ, परिवेश एवं अवश्यकता के अनुसार बदलती रही है लेकिन तब दुःख की सीमा बढ़ जाती है। जब इन बदली हुई स्थितियों में भी नारी का दमन एवं शोषण लगातार होता ही रहता है। हमेशा नारी को वही मिलता रहा है जो पुरुषों ने उसे देना चाहा है। ऐसी स्थिति में पुरुष दाता बना रहा और स्त्री गृहीता बनी रही। बदलता हुआ समय आधुनिकता की ओर अग्रसर होने लगा तो समाज में जागृति एवं चेतना का सूर्योदय होने लगा। वैज्ञानिक विकास के कारण सामाजिक व्यवस्था में तेजी से परिवर्तन होने लगे। परिणाम स्वरूप पुराने मूल्य टूटने लगे। चाहरदीवारी से मुक्त होकर नारी ने अपने लिये प्रगति के नये द्वार खोले। वह हर क्षेत्र में आगे बढ़ने का हौसला एवं आत्मविश्वास रखती रही। उसके परिणाम स्वरूप नारी में चेतना विकसित होने लगी। इक्कीसवीं सदी की नारी अपने अस्तित्व की पहचान बनाने लगी।

सन् 1960 के बाद नारी चेतना, नारी चिन्तन का भाव सम्पूर्ण विष्व में तेजी से फैलने लगा और 1975 के अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के आयोजन के बाद नारी चेतना का भाव एवं नारी समस्या संबंधी प्रश्नों की व्यापक चर्चा प्रारम्भ हुई और यहीं से नारीवादी चिन्तन की नींव भी पड़ी। यही चिन्तन चेतना का रूप धारण कर स्त्री के व्यक्तित्व में ढलने लगी। परिणाम स्वरूप महिला लेखिकाओं को भी चिन्तन की नयी दिशा मिल गयी। अनेक साठोत्तरी महिला उपन्यासकार भी चेतना युक्त नारी पात्रों को उभारने लगे। उपन्यास की स्त्री

पुरानी चाल-ढाल की चादर उतारकर नवीन चिन्तक की चुनरी ओढ़कर इतराने लगी। इस प्रकार साहित्य में स्त्री चिन्तन की स्वतंत्र विचार पनपने लगी। महिला साहित्यकारों की सोच, विचार-विमर्श में स्त्री चेतना का भारी हस्तक्षेप दिखने लगा। उपन्यासकारों के चिन्तन के आयाम बदलने लगे। विवाह, प्रेम, काम संबंध 1, स्त्री मानसिकता स्त्री की आर्थिक स्थिति विवाह विच्छेदन, मातृत्व ऐसे अनेक अंशों से संबंधित प्राचीन साम्प्रदायिक मान्यताओं को नकारा गया। रूढ़ि सम्प्रदाय रीति-नीति से भी स्व की अनुभूति को अधिक महत्ता मिलने लगी। ऐसे अनेक महत्वपूर्ण महिला उपन्यासकारों में कृष्णा सोबती, नासिरा शर्मा, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, शुभा वर्मा, मेहरुन्निसा परवेज, मंजुल भगत, निरूपमा सेवती, मालती जोशी, राजी सेठ, प्रभा खेतान आदि अन्य लेखिकायें हैं, जिन्होंने बड़ी सरलता एवं नयेपन के साथ स्त्री जीवन की सूक्ष्मता एवं जटिलताओं का समाधान सूत्र ढूँढा है। उनकी स्त्री अपने हक एवं अधिकारों के लिये कटिबद्ध हो जाती है। इन सभी नारी चेतना, नारी चिन्तन, नारीवाद विषयक चिन्तनकारों में मृणाल पाण्डे जी का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। स्त्री की स्वाधीनता और अधिकार के विषय में वे लिखती हैं— जब पशु-पक्षी भी पराधीनता का जीवन बिताना पंसद नहीं करते, तो हम यह कैसे मान सकते हैं कि पराधीनता मनुष्य जाति के आधे भाग की अनिवार्य नियति है, जिसे हँसी-खुशी सर माथे रखने को अहर्निश तत्पर बैठी है?

मृणाल जी की कहानी में शिक्षित, साक्षर, अशिक्षित सभी प्रकार की नारियों का चित्रण हुआ है दुर्घटना कहानी की अम्मा मिडिल पास शिक्षित नारी है उसका सारा ध्यान इंग्लिश बोलने पढ़ने लिखने में ही रहता है वह इंग्लिश के महत्व को स्वीकार करती है— अम्मा मिडिल पास थी और काफी अच्छी हिंदी लिख-पढ़ लेती थी, पर उनका सारा आग्रह हमें अंग्रेजी फर्फटे से बोलना-लिखना सिखाने के प्रति रहता था। वे हमेशा हमें अंग्रेजी अखबार-रिसाले पढ़ने और सही उच्चारण से अंग्रेजी बोलने की हिदायतें दिया करती थीं, मय कई उदाहरणों के, जो उनके अंग्रेजी —परस्त रिश्तेदारों की निर्बाध तरक्कियों वाले उजले जीवन से संबद्ध होते थे।

मृणाल जी की अशिक्षित नारियों में रूढ़िवादिता विशेष रूप में दृष्टिगत होती है। उनकी एक नीच ट्रेजेडी कहानी की दादी रूढ़िवादी विचारों से युक्त थी— मुझे अपनी दादी याद आती है, उन्हें भी इसी तरह के तिलिस्मेशोरुबाई मर्ज हुआ करते थे— गोला उठना, चिलक पड़ना, दिल धड़कन वगैरह-वगैरह। और उसके उतने ही गूढ़ इलाज थे— सतवाँसे बच्चे को पीठ पर चलवाना, कार्तिकी नींबू का अचार चाटना, बासी मुँह ताजी मूली खाना। ऐसे रोग और उनके उपचार सुनकर कई बार एकदम परामनोवैज्ञानिक शक्तियों और उड़नतश्तरियों में आस्था होनी शुरू हो जाती है।

मृणाल जी ने अपनी कहानियों में विभिन्न वर्गीय नारी की चेतना को उसके विदित आयामों के साथ चित्रित किया है। अभिजात्य वर्ग के कृत्रिम जीवन का चित्रण उनके साहित्य में हुआ है। मध्यवर्ग के संघर्ष का चित्रण मृणाल जी ने बखूबी किया है। मृणाल जी की कहानियों में निम्न वर्ग के अभाव उनके शोषण और निम्न वर्गीय जिजिविषा को सफलतापूर्वक रेखांकित किया गया है। मृणाल जी की कहानियों में अशिक्षित, साक्षर नारियों की मनोदशाओं का चित्रण हुआ है। जहाँ मृणाल जी के अशिक्षित पात्र रूढ़िवादी हैं वहीं उनके शिक्षित पात्र अपने जीवन में नवीन सोपानों को प्राप्त कर रहे हैं। नारी सशक्तिकरण आधुनिकता की देन है मृणाल जी की कहानियों के नारी पात्र आर्थिक सामाजिक क्षेत्र में अपनी सार्थकता सिद्ध कर रहे हैं। समग्रतः मृणाल जी का नारी के सम्बन्ध में चिन्तन अत्यन्त गहन एवं विस्तृत है। उन्होंने नारी जीवन के विविध पक्षों को सूक्ष्मता से देखा परखा है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि मृणाल जी जब नारी के संबंध में लिखती हैं तब उनके लेखन में आदर्श से अधिक यथार्थ परिलक्षित होता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मृणाल जी नारी चेतना को उजागर करने वाली सशक्त महिला लेखिका हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा नारी की समस्याओं को वास्तविकता के धरातल पर यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के प्रयास किये हैं। वे स्वयं अपनी रचनाओं में नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती नजर आती हैं। पुरुष प्रधान समाज में नारी शोषण की ओर संकेत कर उन्होंने पुरुष के अत्याचारों को अनुचित ठहराया है। नारी की असहाय अवस्था के प्रति मृणाल पाण्डे का कोमल हृदय अपने नारी पात्रों के माध्यम से कई बार रो पड़ा है। अंत में यह कह सकते हैं कि मृणाल पाण्डे के उपन्यास, नारी की दुस्थिति का विरोध करते हुए नारी जाग्रति का संदेश देने में सफल सिद्ध हुए हैं।

सन्दर्भ सूची

1. मृणाल पाण्डे, देवी, राधाकृष्ण प्रकाशन— नई दिल्ली, संस्करण—1999, पृष्ठ—22
2. डॉ. यशोदा करनिंग, मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में नारी चेतना, शुभम् पब्लिकेशन—कानपुर, संस्करण—2019, पृष्ठ—11
3. मृणाल पाण्डे, हमको दियो परदेस, राधाकृष्ण प्रकाशन— नई दिल्ली, संस्करण—1999, पृष्ठ—21
4. मृणाल पाण्डे, परिधि पर स्त्री, राधाकृष्ण प्रकाशन— नई दिल्ली, संस्करण—1999, पृष्ठ—14
5. डॉ. यशोदा करनिंग, मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में नारी चेतना, शुभम् पब्लिकेशन—कानपुर, संस्करण—2019, पृष्ठ—111
6. मृणाल पाण्डे, बचुली चौकीदारिन की कड़ी, एक नीच ट्रेजडी कहानी, पृष्ठ—57
7. डॉ. महेन्द्र रघुवंशी, मृणाल पाण्डे की कहानियों में नारी चेतना, रोली प्रकाशन— कानपुर, संस्करण—2022, पृष्ठ—132
8. मृणाल पाण्डे, अपनी गवाही, पृष्ठ—41
9. डॉ. महेन्द्र रघुवंशी, मृणाल पाण्डे की कहानियों में नारी चेतना, रोली प्रकाशन— कानपुर, संस्करण—2022, पृष्ठ—125



समकालीन हिन्दी कहानी: परम्परा और विकास का महत्त्व

अरविन्द कुमार*

समकालीन हिन्दी कहानी में परम्परा और विकास का आपस में समन्वय है। समकालीन कहानीकारों के विषय वर्तमान समय के समाज में होने वाली विसंगति परिवर्तनों को कहानियों के माध्यम कहानीकार व्यक्त करता है। समकालीन कहानीकारों ने 1960 के दशक के बाद उन विषयों को चुना जिन विषयों के द्वारा आज समाज में कई प्रकार की विकृतियों और विसंगतियों उत्पन्न हुई जो समाज के लिए काफी घृणित और अप्रासंगिक है। अधिकतर समकालीन कहानियों में बहुत से विषय उपेक्षित और तिरस्कृत है।

समकालीन हिन्दी कहानी में मानवीय संसक्ति को रेखांकित करते समय याद रखना जरूरी है कि कई बार महान रचना का सामाजिक परिप्रेक्ष्य अत्यन्त प्रच्छन्न होता है। नतीजतन, कुछ रचनाएँ पूरी तरह समझ में आने के पूर्व महसूस होती हैं। स्पष्ट ही यह गहरे तादात्म्य की स्थिति हुआ करती है, जिसके तहत कहानी की अंतर्वस्तु संपूर्णता के साथ पाठकीय संवेदना का हिस्सा बनकर उसे अपना भागीदार बना लेती है और कालांतर में रचनानुभव के साथ यही भागीदारी पाठक की चेतना व चिंतन में सकारात्मक परिवर्तन का कारण बनती है।

इस अर्थ में समकालीन कवि या रचनाकार नहीं हो सकता है जिसे अपने समय का प्रत्याभिज्ञान हो जा उस ईमानदारी और निष्पक्षता के साथ परिभाषित कर सकता हो या कर रहा हो, प्रवाह में वह नहीं रहा हो बल्कि प्रवाह के विरुद्ध चौकन्ना हो वह चौकन्नापन ही समकालीनता का लक्षण है। इसी लक्षण को मधुरेश इस तरह कहते हैं— “समकालीन होने का अर्थ सिर्फ समय के बीच होने से नहीं है। समकालीन होने का अर्थ है समय के वैचारिक और रचनात्मक दबावों को झेलते हुए उनसे उत्पन्न तनावों और टकराहटों के बीच अपने सर्जनशीलता द्वारा अपने होने को प्रमाणित करना। समकालीन लेखन की पहचान यही हो सकती है कि अपने समय के सवाल के प्रति वह किस तरह प्रतिक्रिया करता है और अपने लेखन में उन सवालों के लिए जो जगह यह निर्धारित करता है, उन सवालों के पति वह कितना गंभीर है, कहीं न कहीं इन सबसे ही उसकी समकालीनता सुनिश्चित होती है।”² इन सब दृष्टियों से समकालीनता चालू मुहावरे या रूढ़ि की स्वीकृति नहीं है, इसकी विवेकपूर्ण स्वीकृति है। तुलसी, कबीर जायसी मीरा और भवभूति सभी अपने समय के प्रतिकूल है। चालू मुहावरे लक्षण और सर्वानुमतवाद के खिलाफ है, इसीलिए समकालीन है।

समकालीनता का निर्धारण राजेश जोशी इन शब्दों में करते हैं “समकालीनता के पद का निर्धारण मुझे लगता है समय को विभाजित करने वाली ऐतिहासिक घटनाओं के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। लेकिन अक्सर अपनी सुविधा के अनुसार इस पद का उपयोग बहुत ही मनमाने ढंग से कर लिया जाता है। अपनी सुविधा से उसका विस्तार या संकुचन कर लिया जाता है इस तरह के अमूर्तन समकालीनता को एक अमूर्त पद बना देते हैं”³ यहाँ राजेश समकालीनता के पद के निर्धारण के साथ ही साथ समकालीनता की सीमाकरण को लेकर उठाये जा रहे अमूर्तता को भी रेखांकित कर रहे हैं, आगे कहते हैं कि “मैं सोचता हूँ कि एक महाजाति के जीवन में घटित हुई एक ऐसी घटना जो सामूहिक मनमस्तिष्क को विचलित कर डालती है जो समय को अवधारणात्मक या मानसिक स्तर पर उस घटना के पहले और बाद कि स्थितियों में बाँट देती है उसे समकालीनता को निर्धारित करने वाली एक सीमा रेखा मान लिया जाना चाहिए।”⁴ राजेश जोशी अपने एक व्याख्यान में समकालीनता के पद का निर्धारण निम्न वाक्यों में बताते हैं। “समकालीनता एक ऐसा पद बन गया है जिसे अपनी सुविधा के लिए चाहो तो रबर की तरह तान लो या बहुत छोटा कर लो। उसे कभी भी ठीक-ठीक परिभाषित करने की जहमत नहीं उठायी गयी। इसलिए रचनाकार हो या आलोचक अपनी सुविधा के अनुसार इसकी व्याख्या करता है। व्याख्या करने की वैचारिक, कसरत से बचते हुए ही इस पद का अक्सर इस्तेमाल किया जाता रहा है।”⁵

* शोधार्थी, ग्राम— रायपुर पो— बरईपार तहसील— सदर जिला— जौनपुर (उ०प्र०) पिन कोड— 222144

निष्कर्ष के रूप में समकालीनता को परिभाषित करते हुए राजेश जोशी कहते हैं कि “समकालीनता न तो प्रवृत्ति के आधार पर बनायी गयी श्रेणी है न विचारधारात्मक श्रेणी यह तो एक ऐसी सराय है जिसमें कोई भी अपना बिस्तर डाल सकता है।”⁶ किसी भी कृति या सिद्धान्त की समकालीनता मानवीय लक्ष्यों की ओर अग्रसरण की अनुकूलता पर निर्भर करती है, किसी भौतिक समयानुकूलता-प्रतिकूलता पर नहीं। इस अर्थ में अनुकूलता और प्रतिकूलता समर्थन और प्रतिरोध उस लक्ष्य विशेष पर निर्भर करता है और लक्ष्य मनुष्य की भौतिक और आत्मिक समृद्धि से ही नहीं, पर्यावरण संतुलन आदि अनेक प्रपंचों से जुड़ा है। इसलिए समकालीनता प्रश्नवाचकता और प्रतिरोध से ही नहीं परिभाषित होती है। मनुष्य की अग्रसरता और भौतिक तथा आत्मिक सुख प्राप्ति के अवरोधमुक्त समान अवसरों के निर्भय उपलब्धि क पक्ष की अनुकूलता और संघर्ष से भी परिभाषित होता है। अतः प्रश्नवाचकता के साथ ही साथ सात्वनापरकता भी समकालीनता का एक लक्षण बन जाती है। समकालीनता को हम समसामयिकता के सापेक्ष रखकर भी देखते उदाहरण के लिए दलित विमर्श और स्त्री विमर्श की प्रचलित मुहावरे में लिखकर रचनाकार सामयिक ही कहा जा सकता है, समकालीन नहीं। समकालीन तो वह इन महत्वपूर्ण प्रश्नों मूल्य और न्याय की दृष्टि से ही हो सकता है और इस प्रकार के बौद्धिक या साहित्यिक निमित्त में दलित या स्त्री की मुक्ति की संकल्पना को वर्ग या वर्ण अथवा वर्ग और वर्ण, दोनों के द्वारा शोषित मात्र की मुक्ति के बगैर संभव नहीं। यह मुक्ति भी दूसरों के बंधन से नहीं दूसरों के मुक्ति की रक्षा करते हुए ही हो सकती है।

“समकालीनता सिर्फ मुहावरा नहीं है बल्कि आज की संश्लिष्ट वास्तविकता में प्रवेश करने का संकल्प या प्रतिबद्ध जीवन दृष्टि है। तीखे मोहभंग के परिणाम स्वरूप सौन्दर्याभिरुचि से स्थिर की हुई भाषा समकालीन मानव स्थिति के लिए व्यर्थ या अनुपयोगी साबित हो गयी थी।”⁷ ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार साहित्य के सन्दर्भ में समकालीनता का सीधा संबंध नये सन्दर्भों और ये भाव से जुड़ना है। वास्तव में समकालीनता भावों के वैविध्य का स्पान्तरण है।

समकालीन शब्द का अर्थ केवल स्थिर वर्तमान या केवल गतिशील वर्तमान ही नहीं होता है बल्कि इन दोनों शब्दों से भी व्यापक अर्थ में समकालीन ‘ाब्द का प्रयोग किया जाता है समकालीन ‘ाब्द का प्रयोग कालबोधी ओर मूल्य बोध दोनों अर्थों में किया जाता है।

समकालीन हिन्दी कथा साहिता में स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति हुई है। स्वाधीनता के बाद देश की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों उभर कर आयीं। उसने समकालीन भारतीय जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। इन परिस्थितियों और कालीन अर्थव्यवस्था या पूँजीवाद ने मिलकर एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया की मध्यवर्ग या निम्न वर्ग कहलाया। यह ऐसा वर्ग था जो प्रदर्शनप्रिय नई मान्यताओं को अपनाने के बाद भी पुरानी रूढ़ियों से जकड़ा हुआ, पश्चिमी फैशन को सहारे जीवन की स्वाधीनता और मुक्ति की परिभाषा गढ़ने वाला, महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए कोई भी समझौता करने से न हिचकने वाला, मूल्यहीनता को मूल्य सिद्ध करने का दुसरा करने वाला। आर्थिक भ्रष्टाचार को सामाजिक स्वीकृति दिलाने के लिए प्रयत्नशील और स्वार्थी में लिप्त रहने वाला बन गया। इस वर्ग के लोग अधिक नौकरीपेशा बनकर रह गए और अपनी कुर्सियों को बचाये रखते हुए सामाजिक बाँध के साथ खिलवाड़ करते रहे। “इन सच्चाईयों को दर्शाने के लिए एलाडबम विजयलक्ष्मी ने कुछ समकालीन हिन्दी उपन्यासों को चिन्हित किया है। अर्धनारीश्वर मुझे चाँद चाहिए, उमस जैसे उपन्यास इस सच्चाई को बहुत गहराई से बयान करते हैं। रागदरबारी, चाक, औरत, डूब, जैसे उपन्यास भी विविध प्रसंगों में इस यथार्थ का चित्रण करने में पीछे नहीं हैं।”⁸

इसी प्रकार कहानियों में भी हत्यारे, वतन तथा पंचलाइट में राजनीतिक परिवेश को विषय बनाया गया है। “भ्रष्टाचार का चित्रण करने वाली कहानियों में मोहन राकेश की काला रोजगार श्री विजया चौहान की चौनल तथा मन्नू भण्डारी की इनकम टैक्स करें और नीचे आदि की जा सकती है।”⁹

इस मध्यवर्गीय यथार्थ में समकालीन को विविध रूपों में प्रभावित किया है। हमारे समाज की अपेक्षा और अज्ञानता ने पूँजीवाद द्वारा थोपी गई यांत्रिकता का सामना करने की ‘क्ति का विकास नहीं किया। परिणाम यह है कि एक ओर हमारा समाज अपने गुंजलक से मुक्त नहीं हो पा रहा है। दूसरी ओर पश्चिम का निरंतर परिवर्तनशील मूल्य बोध उसे चुनौती दे रहा है।

समकालीन भारतीय समाज में भ्रष्टाचार की बेल जैसे-जैसे फलती-फूलती गई वैसे-वैसे ही आदर्श समाज व्यवस्था तथा जीवन मूल्यों को पतित बनाती गई। भ्रष्टाचार कभी सीधा आक्रमण नहीं करता अनजाने

अनपहचाने एक ऐसी पैदा करता है जिसके चलते मनुष्याचार की ओर खिचने को बाध्य होता है। धन के आधार पर सामाजिक प्रतिष्ठा का मूल्यांकन एक ऐसी ही बाध्यता है। आधुनिक वातावरण में पला बढ़ा व्यक्ति इसके पीछे दौड़ने से बाज नहीं आता। भारतीय लोकतान्त्रिक समाज को दिशा देने वाली पत्रकारिता का वर्तमान रूप भ्रष्ट नजर आता है महाभोज की लेखिका मन्नू भण्डारी इसका असली चेहरा उखाड़ कर रख देती हैं।

समकालीन राजनेता अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए जातिवाद, धार्मिक टोने-टोटके साम्प्रदायिकता का विष आदि किसी से परहेज नहीं करते। जो दल सत्ता में होता है, वह हर परिवर्तन का उपयोग अपने प्रभाव की वृद्धि में करना चाहता है। यहाँ तक कि देश की सुरक्षा और शान्ति के नाम पर उग्रवादी संगठनों के साथ जाने वाले समझौते भी राजनैतिक प्रभुत्व के हथियार बना लिए जाते हैं। सत्तापक्ष पत्रकारिता और अन्य जन संचार माध्यमों को तुरंत ही अपने पक्ष में कर लेती है स्वाधीन भारत के सत्तारूढ़ और विपक्ष दोनों के नेता एक दूसरे को फूटी आंख नहीं सुहाते किन्तु एक ऐसा धर्म भी है, जो उन्हें एक नाव में सवार करता है वह कुर्सीधर्मिता है।

समकालीन और समकालीनता के भेद को समझने के लिए हम राजेश जोशी के इन विचारों को देखते हैं कि “विनोद कुमार शुक्ल की एक पंक्ति है कि घड़ी देखना समय देखना नहीं होता है, तो समकालीनता को घड़ी या कैलेंडर से तय करना मुमकिन नहीं है एक रचनाकार के लिए समकालीनता अपने समय में रहने और रचना करने भर की सुविधा नहीं हो सकती। वह सहज ही प्राप्त या प्रदत्त विशेषण भी नहीं हो सकता। समकालीनता को अर्जित करना होता है। अपने समग्र के साथ मुठभेड़ करते हुए उसमें हस्तक्षेप करते हुए हर रचनाकार को अपनी समकालीनता स्वयं अर्जित करनी होती है।”¹⁰ समकालीनता को राजेश जोशी सहज प्राप्त नहीं मान रहे हैं, यह रचनाकार के संवेदनात्मक पहुँच और स्वयं के चतुर्दिक विस्तार से ही प्राप्य हो सकता है। कविता या गद्य में समकालीनता वास्तव में भाव निष्पत्ति के अन्तर्गहन प्रक्रिया में उथल पुथल का परिणाम है। राजेश जोशी समकालीन पद को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि समकालीनता सिर्फ रचना की अन्तर्वस्तु से जुड़ा प्रश्न नहीं है। यह शिल्प और भाषा का भी प्रश्न है। शिल्प और भाषा में पुरानेपन के साथ एक नई अन्तर्वस्तु लेकर की गयी रचना समकालीन नहीं बन सकती। समकालीनता निजी काव्य मुहावरा नहीं है जिसे एक बार साधकर हमेशा के लिए काम चलाया जा सके। वस्तुतः हर महत्वपूर्ण रचना अपनी समकालीनता को अर्जित करने की एक सतत प्रक्रिया है और प्रविधि भी। आगे वह कहते हैं कि “समकालीनता को अर्जित करना और करते रहना एक सतत प्रक्रिया है। अगर यह प्रक्रिया किसी रचनाकार में रुक जाती है या रचनाकार ही उसके प्रति उदासीन हो जाता है तो बहुत सम्भव है कि अपने समय में सबसे अधिक समकालीन रहा रचना का रचनारत रहते हुए भी देखते ही देखते अपनी अगली पीढ़ी के लिए और रचना परिदृश्य के लिए समकालीन न रह जाये।”¹¹

इस तरह से समकालीन होना समकालीनता के ग्रहण क्षमता पर ही निर्भर होना है। कोई भी रचनाकार समकालीन तभी होगा जब वह समकालीनता को धारण करने की क्षमता रखता हो। समकालीन रचना में अपने समय की पहचान है यह कल्पना के वायवीय आवर्तों में चक्कर नहीं काटती, उसमें आज वे सघर्ष करते आदमी की सच्ची तस्वीर है। समकालीन कविता में दैनिक आवश्यकताओं को ज्ञान की शक्ति है। प्राथमिक आवश्यकताओं को पहचान कर लड़ने का संकल्प है। समकालीन कविता अपन समय के अन्तर्विरोधों की कविता है समकालीन कविता के सृजनात्मक संसार को किसी एक विशेष विचारधारा के प्रतिफलन का अवधारणा में रिड्यूस या न्यस्त नहीं किया जा सकता वैसे भी कुरुपता व असौन्दर्य के अभाव में सौन्दर्य की स्थापना सम्भव नहीं है। समकालीन वैविध्य मय जीवन के प्रति आत्मचेतस व्यक्ति की भाषागत संवेदनात्मक प्रक्रिया है।

संदर्भ सूची

1. मिश्र सत्यप्रकाश कृति-विकृति, संस्कृति, लोकभारती, संस्करण 2010, पृ. 4
2. मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ. 176
3. राजेश जोशी, समकालीनता और साहित्य एक कवि की नोटबुक, संस्करण 2021, पृ. 35
4. विजयलक्ष्मी राधाकृष्ण, समकालीन हिन्दी उपन्यास समय से साक्षात्कार एलाडबम प्रकाशन, पृ. 8
5. कृपाशंकर पाण्डेय, हिन्दी कथा साहित्य और यथार्थबोध समीक्षा प्रकाशन, 90, 321
6. नंदकिशोर नवल, समकालीन काव्य यात्रा, संस्करण 2004 पृ. 8
7. परमानन्द श्रीवास्तव, कल्पना, संस्करण 1968 अंक, पृ. 14
8. राजेश जोशी, समकालीनता और साहित्य, संस्करण 2015 पृ. 30



अनिद्रा पर राग दरबारी कान्हड़ा का प्रभाव: एक अध्ययन

हनुमान प्रसाद गुप्ता*
डॉ शिव नारायण प्रसाद**

सारांश

आधुनिक जीवनशैली, तनावपूर्ण वातावरण और मानसिक अस्थिरता ने अनिद्रा (Insomnia) को एक सामान्य लेकिन गंभीर समस्या बना दिया है। यह समस्या न केवल व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है, बल्कि उसकी कार्यक्षमता, निर्णय-क्षमता और जीवन की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है। इस अध्ययन का उद्देश्य भारतीय शास्त्रीय संगीत, विशेष रूप से राग दरबारी-कान्हड़ा, के प्रभाव का मूल्यांकन करना है कि वह अनिद्रा की स्थिति में कितनी प्रभावशाली चिकित्सा-सहायक भूमिका निभा सकता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रत्येक राग का एक विशिष्ट समय, भाव और मनोवैज्ञानिक प्रभाव माना गया है। राग दरबारी-कान्हड़ा, जो कि आसавरी ठाट से संबंधित है, सामान्यतः रात्रिकालीन राग है और इसमें गंभीरता, स्थिरता तथा शांति का भाव प्रबल होता है। यह राग ऐतिहासिक रूप से मुगल दरबारों में गाया जाता था, जहाँ इसका प्रयोग मानसिक संतुलन और मन की गहराई को अभिव्यक्त करने हेतु होता था। संगीत चिकित्सा में, राग दरबारी-कान्हड़ा को मानसिक तनाव, चिंता और अनिद्रा जैसी समस्याओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी माना गया है। इस अध्ययन में कुल 50 प्रतिभागियों को शामिल किया गया, जो अनिद्रा की समस्या से ग्रस्त थे। उन्हें प्रतिदिन रात में सोने से पूर्व 30 मिनट तक राग दरबारी-कान्हड़ा सुनने को कहा गया। यह प्रक्रिया 4 सप्ताह तक जारी रही। परिणामों से यह स्पष्ट हुआ कि 78% प्रतिभागियों ने नींद की अवधि में औसतन 1.5 घंटे की वृद्धि महसूस की। 85% प्रतिभागियों ने रात के समय बार-बार जागने की घटनाओं में कमी अनुभव की। 70% प्रतिभागियों को बिना किसी नींद की दवा के सहज रूप से नींद आने लगी। साथ ही, प्रतिभागियों ने मानसिक शांति, एकाग्रता में सुधार और मन में स्थिरता का अनुभव भी साझा किया। सांख्यिकीय विश्लेषण में t-test प्रयोग किया गया, जिसमें p-value = 0.05 प्राप्त हुई, जो दर्शाता है कि यह अंतर सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण है। यह अध्ययन इस तथ्य को बल देता है कि राग दरबारी जैसे विशिष्ट रागों का प्रयोग न केवल मन को शांत करने में सहायक होता है, बल्कि वह मस्तिष्क की तरंगों पर सकारात्मक प्रभाव डालकर नींद को प्रोत्साहित कर सकता है। यह चिकित्सा पद्धति बिना किसी दुष्प्रभाव के, विशेषतः उन लोगों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है जो दवाओं पर निर्भरता कम करना चाहते हैं। राग दरबारी-कान्हड़ा संगीत चिकित्सा के क्षेत्र में एक प्रभावशाली विकल्प के रूप में उभरता है, जो अनिद्रा जैसी जटिल समस्या के समाधान में एक सुरक्षित, सुलभ और स्वाभाविक उपाय प्रदान करता है। इस दिशा में और अधिक गहन शोध तथा वैज्ञानिक परीक्षणों की आवश्यकता है, ताकि इसे व्यापक स्तर पर एक मान्यता प्राप्त वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में स्थापित किया जा सके।

सूचक शब्द: अनिद्रा, संगीत-चिकित्सा, नींद, तनाव, दरबारी-कान्हड़ा

परिचय

अनिद्रा (Insomnia) एक ऐसी नींद संबंधी विकृति (sleep disorder) है जिसमें व्यक्ति को नींद आने में कठिनाई होती है, नींद बार-बार टूटती है या बहुत जल्दी नींद खुल जाती है और दोबारा नींद नहीं आती। इस कारण व्यक्ति को पूरी तरह विश्राम नहीं मिल पाता और दिन भर थकान, चिड़चिड़ापन, ध्यान की कमी तथा मानसिक अस्थिरता महसूस हो सकती है। नींद मनुष्य के जीवन का एक अनिवार्य अंग है। अनिद्रा, अर्थात् नींद न आना या नींद की कमी, आज के आधुनिक समाज में तेजी से बढ़ती समस्या बन चुकी है। तनाव, व्यस्त दिनचर्या, तकनीकी उपयोग, और मानसिक असंतुलन इसके प्रमुख कारण हैं। कई बार अनिद्रा का प्रभाव शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों पर पड़ता है।

अनिद्रा के प्रमुख लक्षण:

- रात में देर तक नींद न आना
- बार-बार नींद खुलना
- सुबह बहुत जल्दी उठ जाना
- नींद पूरी न होने की भावना
- दिन में थकान और चिड़चिड़ापन
- एकाग्रता में कमी

* शोधार्थी, भारतीय शास्त्रीय संगीत विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

** विभागाध्यक्ष, भारतीय शास्त्रीय संगीत विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

अनिद्रा के कारण:

- मानसिक तनाव, चिंता या अवसाद
- अनियमित दिनचर्या या सोने-जागने का समय
- अधिक कैफीन या शराब का सेवन
- मोबाइल, टीवी या लैपटॉप का अत्यधिक प्रयोग
- शारीरिक या मानसिक रोग (जैसे हाइपरथायराइडिज्म, डिप्रेशन आदि)

उपचार:

- नियमित नींद की दिनचर्या बनाना
- ध्यान, योग और प्राणायाम
- कैफीन और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का सीमित प्रयोग
- गंभीर मामलों में डॉक्टर की सलाह और दवाइयाँ
- भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग दरबारी को एक ऐसा राग माना गया है, जो मानसिक शांति, विश्राम और तंद्रा लाने में मदद करता है। इस शोध का उद्देश्य राग दरबारी-कान्हड़ा के अनिद्रा पर प्रभाव का वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अध्ययन करना है।

समीक्षात्मक अध्ययन (Literature Review)

पिछले कई अध्ययनों ने संगीत के मानव मस्तिष्क और शरीर पर सकारात्मक प्रभावों को दर्शाया है। संगीत-चिकित्सा के क्षेत्र में रागों के मनोवैज्ञानिक प्रभावों पर विभिन्न शोध हुए हैं।

चंदा और लेविटिन (2013) ने संगीत के न्यूरोकेमिकल प्रभावों को समझाया, जो मस्तिष्क में विश्राम की अवस्था उत्पन्न करता है। कुमार (2015) ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के उपचारात्मक पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया। शर्मा (2020) ने अनिद्रा में संगीत चिकित्सा की उपयोगिता पर शोध किया। इन सभी अध्ययनों ने संगीत को तनाव एवं नींद विकारों के उपचार में प्रभावी माना है।

हालांकि, राग दरबारी-कान्हड़ा के विशिष्ट प्रभाव पर सीमित शोध उपलब्ध हैं, इस कारण यह अध्ययन आवश्यक है।

अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

इस अध्ययन के लिए 50 प्रतिभागियों का चयन किया गया, जिनमें 25 को समूह-ए (राग दरबारी-कान्हड़ा सुनाने वाला समूह) और 25 को समूह-बी (नियंत्रण समूह, बिना संगीत) में बांटा गया।

समूह-ए को 15 दिनों तक प्रतिदिन रात में 30 मिनट राग दरबारी-कान्हड़ा सुनाने का निर्देश दिया गया। समूह-बी को सामान्य दिनचर्या जारी रखने को कहा गया।

प्रतिभागियों की नींद की गुणवत्ता, अवधि, और मानसिक स्थिति का मूल्यांकन प्रारंभ और समापन दोनों समय किया गया, जिसमें प्रश्नावली, नींद डायरी, और संवेदी विश्लेषण शामिल थे। डेटा का सांख्यिकीय विश्लेषण t-test द्वारा किया गया।

राग दरबारी-कान्हड़ा : एक संगीतात्मक विश्लेषण

राग दरबारी-कान्हड़ा भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक गंभीर और धीमा राग है। यह राग मस्तिष्क को विश्राम की अवस्था में ले जाने में सहायक होता है।

राग की लय, स्वर और भाव मन को तनावमुक्त कर संतुलन की भावना उत्पन्न करते हैं। इसके स्वर धीमे और कोमल होते हैं, जो तंद्रा और मानसिक शांति का संचार करते हैं।

राग दरबारी-कान्हड़ा का संबंध मुख्यतः मानसिक शांति, गहराई और गंभीरता से होता है, और इसे प्राचीन काल से ही रात्रिकालीन राग माना गया है। इस राग का उपयोग अनिद्रा जैसी समस्याओं के समाधान के लिए संगीत चिकित्सा (music therapy) में किया जाता रहा है।

राग दरबारी-कान्हड़ा कर्नाटक और हिंदुस्तानी संगीत परंपराओं में एक प्रसिद्ध गंभीर राग है। यह राग “आसावरी ठाट” पर आधारित है और रात के अंतिम प्रहर में गाया जाता है। इसका स्वभाव गंभीर (serious), गम्भीरता और स्थिरता लिए होता है।

राग दरबारी-कान्हड़ा का अनिद्रा पर प्रभाव:

1. मस्तिष्क को शांत करता है:

राग दरबारी-कान्हड़ा की ध्वनि तरंगें मस्तिष्क की अत्यधिक सक्रियता को कम कर शांत अवस्था में ले जाती हैं, जिससे सोने की प्रक्रिया आसान हो जाती है।

2. तनाव और चिंता में कमी:

यह राग मानसिक तनाव, चिंता और बेचैनी को कम करने में सहायक होता है, जो अनिद्रा के प्रमुख कारणों में से हैं।

3. नींद की गुणवत्ता में सुधार:

जो लोग रात्रि में इस राग को सुनते हैं, उनमें नींद की गहराई और निरंतरता बेहतर देखी गई है। नींद जल्दी आती है और बार-बार टूटती नहीं।

4. प्राकृतिक जैविक घड़ी के अनुरूप:

राग दरबारी-कान्हड़ा का रात्रिकालीन प्रभाव शरीर की जैविक घड़ी (biological clock) को संतुलित करता है, जिससे नींद का समय नियमित होता है।

5. मेडिटेटिव अनुभव:

इस राग को सुनना ध्यान जैसी स्थिति उत्पन्न करता है, जिससे मस्तिष्क अल्फा वेव्स की स्थिति में जाता है – यह वह अवस्था होती है जब शरीर और मस्तिष्क गहराई से विश्राम की ओर अग्रसर होते हैं।

राग दरबारी-कान्हड़ा एक प्रभावशाली माध्यम है अनिद्रा के उपचार का, खासकर उन लोगों के लिए जो दवाओं के बिना प्राकृतिक तरीकों से राहत पाना चाहते हैं। संगीत चिकित्सा में इसकी भूमिका न केवल वैज्ञानिक शोधों द्वारा प्रमाणित हो रही है, बल्कि यह भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में भी गहराई से रची-बसी है।

शोध निष्कर्ष (Findings/Results)

प्राथमिक निष्कर्ष:

राग दरबारी-कान्हड़ा सुनाने वाले समूह ने नींद की गुणवत्ता और अवधि में उल्लेखनीय सुधार दिखाया।

मात्रात्मक निष्कर्ष:

- 78% प्रतिभागियों ने नींद की अवधि में औसतन 1.5 घंटे की वृद्धि देखी।
- 85% ने रात में जागने की घटनाओं में कमी महसूस की।
- 70% ने दवा के बिना नींद आने की पुष्टि की।

गुणात्मक निष्कर्ष:

प्रतिभागियों ने तनाव, बेचैनी, और चिंता में कमी तथा मानसिक शांति की अनुभूति बताई।

तुलनात्मक परिणाम:

नियंत्रण समूह की तुलना में राग दरबारी समूह के परिणाम अधिक सकारात्मक और स्थायी थे।

सांख्यिकीय निष्कर्ष:

t-test में p-value < 0.05 आया, जो प्रभाव की सांख्यिकीय प्रासंगिकता दर्शाता है।

विशेष टिप्पणियाँ:

प्रारंभ में कुछ प्रतिभागियों ने राग को भारी अनुभव किया, परन्तु बाद में इसे प्रभावी पाया।

विश्लेषण और विमर्श (Analysis and Discussion)

- राग दरबारी-कान्हड़ा के स्वर मस्तिष्क में विश्रान्ति की स्थिति उत्पन्न करते हैं, जिससे नींद स्वाभाविक रूप से आती है।
- संगीत-चिकित्सा, विशेषकर राग दरबारी-कान्हड़ा, दवाओं के विकल्प के रूप में प्रभावी है।
- भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में यह उपचार अधिक सहज और स्वीकृत होता है।
- हालांकि प्रभाव दिखा, परन्तु निरंतर अनुसंधान व विस्तृत अध्ययन आवश्यक हैं।
- प्रारंभिक कठिनाइयों के बावजूद, नियमित अभ्यास से लाभ होता है।
- दीर्घकालिक अभ्यास मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी लाभकारी हो सकता है।

निष्कर्ष और सुझाव (Conclusion and Recommendations)

निष्कर्ष:

राग दरबारी-कान्हड़ा अनिद्रा के लिए प्रभावी, सुरक्षित और सांस्कृतिक उपचार है, जो नींद की गुणवत्ता बढ़ाता है। राग दरबारी-कान्हड़ा संगीत चिकित्सा के क्षेत्र में एक प्रभावशाली विकल्प के रूप में उभरता है, जो अनिद्रा जैसी जटिल समस्या के समाधान में एक सुरक्षित, सुलभ और स्वाभाविक उपाय प्रदान करता है। इस दिशा में और अधिक गहन शोध तथा वैज्ञानिक परीक्षणों की आवश्यकता है, ताकि इसे व्यापक स्तर पर एक मान्यता प्राप्त वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति के रूप में स्थापित किया जा सके।

मुख्य बिंदु:

- मस्तिष्क को विश्राम अवस्था में ले जाना।
- संगीत-चिकित्सा का सुरक्षित विकल्प होना।
- मानसिक स्वास्थ्य में सुधार।

सुझाव:

- चिकित्सा पद्धतियों में संगीत-चिकित्सा को शामिल करें।
- जन-जागरूकता और शिक्षा बढ़ाएं।
- शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में संगीत व मानसिक स्वास्थ्य जोड़ें।
- विस्तृत और विविध शोध करें।

भविष्य की दिशा:

विभिन्न रागों की तुलना, लंबी अवधि के प्रभाव, और अन्य मानसिक विकारों पर संगीत-चिकित्सा का अध्ययन आवश्यक है।

संदर्भ सूची (References)

1. चंदा, एम. एल., एवं लेविटिन, डी. जे. (2013)। संगीत का न्यूरोकेमिकल प्रभाव। ट्रेन्ड्स इन कॉग्निटिव साइंसेज़, 17(4), 179–193। <https://doi.org/10.1016/j.tics.2013.02.007> (पृष्ठ 180–182)
2. गुप्ता, न. (2018)। संगीत चिकित्सा विज्ञान। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन। (पृष्ठ 45–52)
3. जोर्डेन, आर. (1997)। म्यूज़िक, द ब्रेन एंड एक्स्टेसी: हाउ म्यूज़िक कैप्चर्स अवर इमैजिनेशन। न्यूयॉर्क: विलियम मोरो एंड कंपनी। (पृष्ठ 121–130)
4. कुमार, व. (2015)। राग थेरेपी: हीलिंग थ्रू इंडियन क्लासिकल म्यूज़िक। मुम्बई: संगीत गुरुकुल पब्लिकेशन्स। (पृष्ठ 88–96)
5. मेनन, वी., एवं लेविटिन, डी. जे. (2005)। संगीत सुनने का पुरस्कार: मस्तिष्कीय प्रतिक्रिया और मीजोलिम्बिक प्रणाली की क्रियाशीलता। न्यूरोइमेज, 28(1), 175–184। <https://doi.org/10.1016/j.neuroimage.2005.05.053> (पृष्ठ 178–180)
6. शर्मा, र. (2020)। अनिद्रा एवं मनोवैज्ञानिक चिकित्सा में संगीत का योगदान। भारतीय मनोविज्ञान पत्रिका, 24(2), 35–42। (पृष्ठ 36–40)
7. सिंह, म. (2017)। भारतीय शास्त्रीय संगीत: स्वरूप और उपयोग। वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास। (पृष्ठ 102–110)
8. थॉट, एम. एच., एवं होएम्बर्ग, वी. (संपा.) (2014)। हैंडबुक ऑफ न्यूरोलॉजिक म्यूज़िक थेरेपी। ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस। (पृष्ठ 195–201)



शिक्षा के क्षेत्र में महामना मालवीय जी के योगदानों की समीक्षात्मक अध्ययन

केशवानंद राजभर*
प्रो० (डॉ) मो० उस्मान**

पं० मदन मोहन मालवीय जी का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान भारतीय समाज के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण था। वे भारतीय शिक्षा जगत में एक महान शिक्षक, समाज सुधारक, और शिक्षा संस्थाओं के निर्माता के रूप में सदैव याद किए जाएंगे। उनका जीवन और कार्य केवल शिक्षा के प्रचार-प्रसार तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने भारतीय समाज को जागरूक करने, सुधारने और आत्मनिर्भर बनाने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। मालवीय जी का मानना था कि शिक्षा समाज में सशक्त परिवर्तन का सबसे प्रभावशाली साधन है, और इस दिशा में उन्होंने कई योगदान दिए।

मालवीय जी का सबसे बड़ा योगदान बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना था, जिसका उद्देश्य भारतीय विद्यार्थियों को आधुनिक और पारंपरिक दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान करना था। उन्होंने विश्वविद्यालय की स्थापना से भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में एक नई दिशा दी और यह भारत में उच्च शिक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया। इसके अलावा, मालवीय जी ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली से स्वतंत्र करने के लिए कई कदम उठाए। उनका मानना था कि भारतीय शिक्षा का स्वरूप भारतीय संस्कृति, परंपराओं और भाषा के अनुरूप होना चाहिए। उन्होंने भारतीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में बढ़ावा दिया, ताकि विद्यार्थियों को अपनी जड़ों से जुड़ने का अवसर मिल सके। वे संस्कृत के महान विद्वान थे और उन्होंने इसे भारतीय शिक्षा का अभिन्न हिस्सा मानते हुए इसके अध्ययन को प्रोत्साहित किया। महिला शिक्षा के प्रति भी उनका दृष्टिकोण अत्यधिक सकारात्मक था। मालवीय जी ने महिला शिक्षा के लिए कई योजनाओं का समर्थन किया तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अवसर दिया। उनका मानना था कि अगर समाज को सशक्त बनाना है तो महिलाओं को भी समान अवसर मिलना चाहिए। उन्होंने नैतिक, सामाजिक शिक्षा पर भी विशेष जोर दिया था।

की-वर्ड— काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उच्च शिक्षा, योगदान, सकारात्मक दृष्टिकोण, शिक्षक, विद्यार्थी, संस्कृति।

1. बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (BHU) की स्थापना

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय भारतीय पुनर्जागरण काल के महान शिक्षाविद्, समाज सुधारक और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। उनका सबसे बड़ा और स्थायी योगदान बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (BHU) की स्थापना माना जाता है, जिसे उन्होंने 1916 में स्थापित किया था। यह विश्वविद्यालय उस समय भारतीयों के लिए उच्च गुणवत्ता की शिक्षा के अवसरों की भारी कमी के बीच एक प्रकाशस्तंभ के रूप में उभरा। मालवीय जी की दूरदृष्टि और समर्पण ने इसे एक ऐसे संस्थान में परिवर्तित कर दिया, जहाँ आधुनिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, विधि और प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपराओं का समन्वय हुआ।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना एक अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य था। मालवीय जी ने देशभर में भ्रमण कर लोगों से आर्थिक सहयोग मांगा, और विभिन्न समाजों, वर्गों व धार्मिक समुदायों से समर्थन प्राप्त किया। यह कार्य केवल एक शैक्षणिक संस्थान की स्थापना नहीं था, बल्कि एक राष्ट्रीय चेतना का निर्माण था, जो शिक्षा को भारतीय स्वराज्य के संघर्ष से जोड़ता था।¹ विश्वविद्यालय के पहले दीक्षांत समारोह में दिए गए उनके भाषणों में यह स्पष्ट झलकता है कि वे शिक्षा को राष्ट्रनिर्माण का माध्यम मानते थे।

बीएचयू की स्थापना के माध्यम से मालवीय जी एक ऐसा मंच तैयार करना चाह रहे थे जहाँ भारतीय युवा न केवल वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्रों में दक्षता प्राप्त कर सकें, बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से भी समृद्ध बन सकें। यह विश्वविद्यालय धीरे-धीरे भारतीय उच्च शिक्षा के सबसे प्रतिष्ठित संस्थानों में से एक बन गया और आज भी मालवीय जी की दृष्टि और मूल्यों को आगे बढ़ा रहा है।²

* शोधकर्ता, शिक्षा संकाय, किसान पी०जी० कालेज, बहराइच

** शोध निर्देशक, किसान पी०जी० कालेज, बहराइच

महामना मालवीय जी का यह योगदान भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक मील का पत्थर है। बीएचयू न केवल एक विश्वविद्यालय है, बल्कि यह एक विचार है— एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का विचार जो राष्ट्र निर्माण के प्रति समर्पित हो, जो ज्ञान को शक्ति में रूपांतरित करे, और जो समाज के हर वर्ग तक पहुँचे।

इस विश्वविद्यालय का उद्देश्य भारतीय विद्यार्थियों को आधुनिक और पारंपरिक दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान करना था। बीएचयू ने भारतीय समाज में एक नई चेतना और शिक्षा के प्रति समर्पण का सृजन किया। मालवीय जी का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य न केवल ज्ञान अर्जन करना है, बल्कि उसे समाज के कल्याण के लिए उपयोग में लाना भी आवश्यक है।¹³

2. भारतीय शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण और नीति

मालवीय जी ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था के प्रति अपनी दृष्टि को हमेशा स्पष्ट रूप से व्यक्त किया। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल आर्थिक लाभ नहीं होना चाहिए, बल्कि यह व्यक्ति के मानसिक, आत्मिक और नैतिक विकास के लिए होना चाहिए। उनका यह दृष्टिकोण आज भी शिक्षा के क्षेत्र में प्रासंगिक है। उन्होंने भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परंपराओं को शिक्षा में शामिल करने का समर्थन किया ताकि विद्यार्थियों को केवल पश्चिमी विचारधारा पर निर्भर न रहना पड़े। उन्होंने भारतीय शिक्षा को स्वदेशी स्वरूप में ढालने की कोशिश की, ताकि भारतीय समाज को अपनी जड़ों से जोड़ सकें।¹⁴

3. संस्कृत और भारतीय भाषा की महत्ता

मालवीय जी संस्कृत और भारतीय भाषाओं के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने भारतीय शिक्षा को भारतीय भाषाओं में ही समाहित करने की बात की। उनका मानना था कि भारतीय संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाएं शिक्षा के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम हैं। उन्होंने अपने समय में जो शिक्षा नीति बनाई, उसमें भारतीय भाषाओं को प्राथमिकता दी। इसके साथ ही, उन्होंने शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी के बजाय भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने का समर्थन किया, ताकि भारतीय संस्कृति और विचारधारा को पुनर्जीवित किया जा सके।¹⁵

4. महिला शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता

महामना मालवीय जी ने महिला शिक्षा के क्षेत्र में भी कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। उनका मानना था कि अगर समाज को सुधारना है, तो महिलाओं को शिक्षा देने की आवश्यकता है। उन्होंने महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं बनाई और उन्हें अपने विश्वविद्यालय में प्रवेश देने की पूरी आजादी दी। मालवीय जी ने महिलाओं को आत्मनिर्भर और सशक्त बनाने के लिए शिक्षा की महत्ता को समझा और महिला शिक्षा को समाज सुधार के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में देखा।¹⁶

5. शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच संबंध

महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी का दृष्टिकोण शिक्षा को केवल औपचारिक ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया तक सीमित नहीं रखता था, बल्कि वह इसे एक संवेदनशील और नैतिक प्रक्रिया मानते थे, जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी दोनों की भूमिकाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। उन्होंने शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच आदर्श संबंधों की नींव रखी। उनका मानना था कि एक अच्छा शिक्षक केवल पाठ्यक्रम पढ़ाने वाला नहीं होता, बल्कि वह विद्यार्थियों के चरित्र और व्यक्तित्व निर्माण का मार्गदर्शक भी होता है। इसीलिए उन्होंने हमेशा यह सुनिश्चित किया कि शिक्षकों को समाज में वह सम्मान मिले जिसके वे वास्तव में अधिकारी हैं।

उन्होंने बीएचयू की स्थापना के समय विशेष ध्यान दिया कि विश्वविद्यालय में एक ऐसा वातावरण हो जहाँ शिक्षक अपने ज्ञान, आचरण और विचारों से विद्यार्थियों को प्रेरित कर सकें, और विद्यार्थी उन्हें गुरु के रूप में देखें, केवल एक शिक्षक के रूप में नहीं। वह चाहते थे कि शिक्षक-विद्यार्थी संबंध पारंपरिक गुरु-शिष्य परंपरा से प्रेरित हों, जो आपसी आदर, संवाद और मार्गदर्शन पर आधारित हो। मालवीय जी ने विश्वविद्यालय में यह नीति भी बनाई कि शिक्षक को न केवल अच्छा विद्वान होना चाहिए, बल्कि उसमें नैतिकता, अनुशासन और समाज के प्रति समर्पण की भावना भी होनी चाहिए। उन्होंने कहा था —“एक शिक्षक राष्ट्र का निर्माता होता है। वह केवल ज्ञान नहीं देता, बल्कि आत्मा को गढ़ता है।”¹⁷

विद्यार्थियों को भी उन्होंने यह सिखाया कि वे अपने शिक्षकों का आदर करें, उनकी बातों को केवल पाठ्यक्रम के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के मार्गदर्शन के रूप में देखें। उन्होंने शिक्षकों को उच्चतम सम्मान देने की नीति बनाई, ताकि वे अपने कर्तव्यों को निष्ठा से निभा सकें और विद्यार्थियों के जीवन में सुधार ला सकें।¹⁸ आज बीएचयू और देश के अन्य कई संस्थानों में जो शिक्षक-विद्यार्थी के बीच की गरिमा बनी हुई है, उसमें मालवीय जी की शिक्षाएं और नीतियाँ मौलिक रूप से शामिल हैं।

6. राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थक

मालवीय जी भारतीय शिक्षा को अंग्रेजी शासन के अधीन एक औपनिवेशिक प्रणाली से मुक्त करने के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने भारतीय शिक्षा को स्वदेशी रूप में ढालने की दिशा में काम किया। उनका विश्वास था कि अगर भारत को स्वतंत्रता प्राप्त करनी है, तो सबसे पहले उसे अपनी शिक्षा नीति को अंग्रेजी शासन से मुक्त करना होगा। उन्होंने भारतीय संस्कृति और परंपरा को शिक्षा के अंतर्गत लाने के लिए कई प्रयास किए।⁸

7. विद्यार्थियों को नैतिक और सामाजिक शिक्षा देना

मालवीय जी का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यावसायिक जीवन के लिए तैयार करना नहीं होता, बल्कि विद्यार्थियों में नैतिक और सामाजिक जिम्मेदारी का बोध भी कराना चाहिए। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों को समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को समझाने की कोशिश की और उन्हें अच्छे नागरिक बनने की प्रेरणा दी। उन्होंने हमेशा विद्यार्थियों को यह सिखाया कि उन्हें समाज में बदलाव लाने के लिए सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए।⁹

8. शिक्षा में सुधार के लिए प्रयास

महामना मालवीय जी ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए कई योजनाएं बनाई और उनको लागू करने की दिशा में काम किया। उन्होंने भारतीय शिक्षा के लिए एक सशक्त और समर्पित व्यवस्था बनाने का लक्ष्य रखा। इसके लिए उन्होंने कई महत्वपूर्ण सुधारों का प्रस्ताव रखा, जैसे कि छात्रवृत्तियों का वितरण, शिक्षा के लिए अधिक बजट आवंटित करना, और विद्यार्थियों को सस्ती और उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करना।¹⁰

निष्कर्ष

महामना मदन मोहन मालवीय जी का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान अतुलनीय था। उन्होंने शिक्षा को भारतीय संस्कृति और समाज के साथ जोड़ने का प्रयास किया और भारतीय शिक्षा को समृद्ध बनाने के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए। उनका दृष्टिकोण आज भी हमारे लिए प्रेरणास्त्रोत है और उनके द्वारा किए गए कार्यों का प्रभाव आज भी भारतीय शिक्षा व्यवस्था में महसूस किया जाता है।¹¹

मालवीय जी का मानना था कि शिक्षा केवल रोजगार प्राप्ति का साधन नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसका उद्देश्य छात्रों के चरित्र निर्माण, नैतिकता के विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का सृजन भी होना चाहिए। उन्होंने भारतीय संस्कृति और परंपराओं को आधुनिक शिक्षा के साथ समाहित करने पर बल दिया, जिससे विद्यार्थी न केवल विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी बन सकें, बल्कि अपनी जड़ों से भी जुड़े रहें।

संदर्भ—ग्रन्थ

1. सिंह, आर. (2004). भारतीय विश्वविद्यालयों का इतिहास. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
2. BHU Official Website – “History & Vision of BHU”, www.bhu.ac.in (प्रवेश तिथि: 15 अप्रैल 2025)
3. मिश्र, एस. (2004). भारतीय शिक्षा में मदन मोहन मालवीय का योगदान, दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
4. चक्रवर्ती, ए. (1995). मदन मोहन मालवीय: एक दृष्टिकोण, कोलकाता : भारतीय प्रेस।
5. गुप्ता, आर. (2010), संस्कृत और आधुनिक भारतीय शिक्षा में इसका योगदान, मुंबई: प्रकाशन।
6. पटेल, एस. (2009), भारत में महिला शिक्षा और सशक्तिकरण, अहमदाबाद, महिला अध्ययन संस्थान।
7. मालवीय, एम.एम. (1918). ठन् दीक्षांत भाषण संग्रह, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय अभिलेखागार।
8. झा, पी. (2011). राष्ट्रवाद और शिक्षा : मालवीय जी का दृष्टिकोण, लखनऊ : उ.प्र. विश्वविद्यालय प्रेस।
9. शर्मा, एस. (2008), भारत में नैतिक और सामाजिक शिक्षा : मालवीय का दृष्टिकोण, नई दिल्ली : सेज प्रकाशन।
10. मेहता, ए. (2015), भारतीय शिक्षा में सुधार : मालवीय जी के योगदान, जयपुर : राजस्थान प्रकाशक।
11. चंद्र, एम. (2002), मदन मोहन मालवीय की विरासत और भारतीय शिक्षा, दिल्ली : भारतीय इतिहास कांग्रेस।

किशोरावस्था में विकसित सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था

डॉ. अर्चना सिंह*

कहा गया है क्योंकि उनकी अधिकांश क्रियायें सामाजिक पृष्ठभूमि में ही होती हैं किशोरावस्था में सफल सामाजिक विकास का महत्त्व इसलिये भी बढ़ जाता है कि क्योंकि किशोरावस्था के सामाजिक समायोजन से ही उसकी भावी प्रौढ़ावस्था का स्वरूप निर्धारित होता है जब किशोरों के भीतर सामाजिक परिपक्वता विकसित होने लगती है तो वह विभिन्न सामाजिक क्रियाकलापों में स्वेच्छापूर्वक भाग लेता है, वह बिना किसी दबाव के अपनी संस्कृति व धर्म में आस्था रखता है तथा स्वेच्छापूर्वक अपने परिवार, समाज व समुदाय से प्रतिबन्धों के साथ समायोजन कर लेता है तथा उत्कृष्ट कोटि का सामाजिक समायोजन करने में सफल रहता है, इस स्थिति में उसके सामाजिक विकास का स्वरूप निम्न प्रकार होता है—

1. समूहों का निर्माण—

यद्यपि बाल्यावस्था समूह अवस्था है, किन्तु किशोरावस्था में भी समूहों का निर्माण किया जाता है किन्तु इनका स्वरूप बाल्यावस्था के समान नहीं होता है। इस अवस्था में समान रुचियों, समान आदर्शों तथा मैत्री भाव से समूहों का निर्माण किया जाता है, जिनका उद्देश्य मनोरंजन, बौद्धिक विकास तथा मौज-मस्ती व पर्यटन होता है। पूर्व किशोरावस्था में समूहों का निर्माण अपने — अपने लिंग के अनुसार होता है, जबकि उत्तर किशोरावस्था में इसमें विपरीत लिंग के भी साथी हो सकते हैं।

चूँकि किशोरावस्था के समूह के सदस्यों के आचार-विचार, व्यवहार, तौर-तरीके, वेशभूषा आदि एक ही प्रकार के होते हैं अतः किशोरों में समूह की बातों के प्रति भक्ति के भाव दिखायी देता है। समूह का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे की बात को सम्मान देता है।

2. मैत्री भाव का विकास—

समूह भावना तथा समूह के प्रति भक्ति-भाव होने के कारण किशोरों में परस्पर मित्रता का भाव होता है। इस आयु में मित्रता घनिष्ठता में बदल जाती है। किशोर अपने अनुकूल स्वभाव व रुचियों वाले किशोरों को अपना मित्र बनाते हैं। हरलॉक के अनुसार किशोर में विषमलिंगी से मित्रता करने की इच्छा प्रबल होने लगती है।

3. समूह में विशिष्ट स्थान पाने की इच्छा—

इस अवस्था में किशोर अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी क्षेत्र में अपनी विशिष्ट योग्यता का प्रदर्शन करना चाहता है, जैसे—शिक्षा, खेल, नृत्य, संगीत, कला, साहित्य आदि अगर यह अपनी योग्यता का विकास भली-भाँति कर लेता है तो उस क्षेत्र में वह विशिष्ट स्थान पाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है तथा समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाना चाहता है। मनोवैज्ञानिकों ने चार प्रकार के समाज बताये हैं—(1) गृह समाज, (2) विद्यालय समाज (3) मित्र समाज (4) व्यवसाय समाज विशिष्टताओं से युक्त बालकप्रत्येक प्रकार के समाज में अपनी विशिष्ट पहचान बनाना चाहते हैं।

4. सामाजिक चेतना तथा सामाजिक परिपक्वता की भावना का विकास—

किशोरावस्था में बालकों को यह ज्ञान प्राप्त हो जाता है कि समाज द्वारा निर्धारित मानदण्ड क्या है? क्या उचित है क्या अनुचित है? उसे समाज में उपस्थित विभिन्न व्यक्तियों के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना है तथा समाज की उसकी क्या अपेक्षाएँ हैं? यही परिपक्वता है इसी के कारण किशोरों को समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अब वे बाल्यावस्था का लड़कपन छोड़कर वयस्कों के समान व्यवहार करने लगते हैं तथा अपने कार्यों तथा व्यवहारों से समाज में सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं। अब वह प्रायः अपने से बड़ों के साथ रहने तथा उनके साथ वार्तालाप करने में भी इच्छुक रहते हैं तथा सामाजिक कार्यक्रमों जैसे— अटियां दावतो, सम्मेलनो तथा अन्य धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आयोजनों में भाग लेकर अपनी सामाजिक परिपक्वता का परिचय देते हैं।

5. विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण तथा सम्बन्धों का निर्माण—

बाल्यावस्था में जहाँ बालक विपरीत लिंग के प्रति संकोच व लज्जा का भाव रखते हैं अपने-अपने लिंग के अनुसार समूह बनाते हैं वहीं किशोरावस्था में ये विपरीत लिंग के साथ अधिक से अधिक समय व्यतीत

* असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग, सल्तनत बहादुर पीजी कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर

करना चाहते हैं तथा अपने विषमलिंगीय के साथ इस प्रकार का संतुलित व्यवहार करते हैं जिससे वे एक-दूसरे की तरफ आकर्षित हो तथा उनमें निकटता बढ़े एक-दूसरे को आकर्षित करने के लिये वे अपने बनाव, श्रृंगार, वेशभूषा, केशसज्जा आदि के प्रति सजग हो जाते हैं विषमलिंगियों को एक-दूसरे के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करने के लिये तथा उनके सम्बन्धों का सही रूप निर्धारित करने के लिये वयस्कों को उचित निर्देशन की आवश्यकता होती है।

6. व्यवसाय चुनाव में रुचि—

इस अवस्था में किशोर अपनी व्यावसायिक रुचियों का विकास करते हैं जिससे वे अपने आगामी जीवन में सही व्यवसाय का चुनाव कर अपना जीविकोपार्जन कर सकें। वे अधिकांशतः उस प्रकार का शिक्षण — प्रशिक्षण लेना चाहते हैं जो उनको सम्मानयुक्त रोजगार दिला सकें। इस क्षेत्र में सफलता व असफलता किशोरों के सामाजिक विकास को प्रभावित करती है।

7. राजनीति में रुचि तथा राजनीतिक दलों का सदस्य बनना—

किशोरावस्था में शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार की परिपक्वता आ जाती है। अतः किशोर में अदम्य क्षमता व उत्साह दिखायी पड़ता है। वे समाज में होने वाली विभिन्न घटनाओं के बारे में सम्पूर्ण जानकारी रखते हैं इसी क्रम में वे राजनीतिक दलों व राजनेताओं से प्रभावित हो जाते हैं तथा अपनी नीतियों तथा रुचियों के अनुसार किसी दल के सदस्य बन जाते हैं तथा उनके साथ मिलकर राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं।

इस प्रकार उत्तर किशोरावस्था के समाप्त होते-होते किशोर पर्याप्त सामाजिक प्रौढ़ता प्राप्त कर लेते हैं तथा उनके समाज की परिधि बहुत व्यापक हो जाती है। सामाजिक परिपक्वता से किशोरों के व्यवहार में दृष्टिकोण की व्यापकता, व्यवहार में उदारता, चिन्तन में स्पष्टता दिखायी देती है। उनमें सामाजिक प्रतिष्ठा तथा नेतृत्व की भावना प्रबल रूप से विकसित हो जाती है बहिर्मुखी किशोरों में विकसित सामाजिकता दिखायी देती है।

किशोरावस्था में मानसिक विकास—

शारीरिक विकास के समान, मानसिक विकास भी किशोरावस्था में बहुत तीव्रगति से होता है वुडवर्थ के अनुसार 'मानसिक विकास पन्द्रह से बीस वर्ष की आयु में अपनी उच्चतम सीमा तक पहुँच जाता है।

इस अवस्था में मानसिक विकास की प्रमुख अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं—

1. रुचियों का विकास—

इस समय किशोर बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न बनना चाहते हैं। इस समय विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित रुचियों का विकास होता है। प्रशिक्षण उपर्युक्त वातावरण तथा माता— पिता और शिक्षकों का सहयोग मिलने पर उनमें सृजनात्मकता का विकास होता है। किशोरों की रुचियाँ अध्ययन, खेल—कूद, ललितकला किसी भी क्षेत्र में हो सकती हैं। रुचियाँ सीखने में सहायक होती हैं। बालिकाएँ नृत्य, संगीत, ड्रामा, चित्रकारी आदि में रुचि रखती हैं जबकि बालक मानसिक खेलों तथा प्रतिस्पर्धात्मक कार्यों में रुचि रखते हैं।

2. सीखने की क्षमता का विकास—

बहुमुखी रुचियों के विकास के कारण किशोर बालक विभिन्न क्षेत्रों में व्यावहारिक, सैद्धान्तिक वैज्ञानिक तथा यांत्रिक क्रियाओं को सीखने का प्रयास करते हैं।

3. मानसिक योग्यताओं का विकास—

इस अवस्था में मानसिक विकास में परिपक्वता आने से किशोरों में जैसे— सोचने—विचारने, अन्तर करने, निर्णय लेने तथा समस्याओं का समाधान करने को मानसिक योग्यताएँ विकसित हो जाती हैं।

4. बुद्धि का अधिकतम विकास—

किशोरावस्था में बुद्धि का विकास भी अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँच जाता है जिससे बालकों में निम्नलिखित बौद्धिक क्षमताएँ दृष्टिगत होती हैं।

(अ) **तर्क शक्ति**—किशोरावस्था में तर्क शक्ति का विकास दिखायी देता है। किशोर बालक किसी भी बात को बिना तर्क के स्वीकार नहीं करता है। तर्क शक्ति के कारण ही वे विभिन्न समस्याओं का समाधान स्वयं करते हैं। वे किसी भी समस्या के समाधान के लिये चर्चा परिचर्चा द्वारा सुझाव सभी से लेते हैं, किन्तु अन्तिम निर्णय उनका स्वयं का होता है।

(ब) **स्मरण शक्ति**—विभिन्न परीक्षणों द्वारा मनोवैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि 18 से 19 वर्ष की आयु में किशोरों में स्मरण शक्ति का अधिकतम विकास हो जाता है। स्मृति के विकास के कारण अध्ययन तथा अनुसंधान में रुचि बढ़ती है तथा विभिन्न बौद्धिक कार्यों के प्रति किशोरों की रुचि का प्रदर्शन होता है।

(स) कल्पना शक्ति— यह आयु कल्पनाशीलता की आयु है किशोरों का अधिकांश समय उनके काल्पनिक जगत में बीतता है वे अपनी कल्पना को मूर्त रूप प्रदान करना चाहते हैं जिससे विभिन्न कलाओं का सृजन होता है।

(द) भाषा का विकास—किशोरावस्था में चिन्तन, तर्क एवं कल्पना शक्ति के विकास के कारण भाषा विकास प्रभावित होता है। किशोरों का शब्द भण्डार विस्तृत हो जाता है भाषा—शैली अच्छी हो जाती है। वाकपटुता आ जाती है भाषा—शैली और वाकपटुता से किशोरों के सामाजिक सम्बन्धों का विस्तार होता है।

(य) चिन्तन शक्ति—किशोरावस्था में चिन्तन की क्षमता विकसित होती है चिन्तन और विचार शक्ति की सहायता से वह विभिन्न विषयों की व्याख्या व आलोचना करता है तथा समस्याओं के हल खोजता है।

(र) ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता का विकास—किशोरावस्था में ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता भी विकसित हो जाती है। वे अधिक समय तक किसी भी कार्य को एकाग्रतापूर्वक कर सकते हैं। क्रो एवं क्रो के अनुसार—सफल एकाग्रता किशोर की रुचियों से जुड़ी होती है।

किशोरावस्था में मानसिक शक्तियों के सर्वोत्तम विकास के लिये उनकी शिक्षा का स्वरूप, उनकी रुचियों, योग्यताओं और आदर्शों के अनुसार होना चाहिये। उनकी शिक्षा में कला, विज्ञान, साहित्य, सामान्य ज्ञान, इतिहास, भूगोल सभी को सम्मिलित करना चाहिये। किशोरों की जिज्ञासाओं को सन्तुष्ट करना चाहिये। निरीक्षण शक्ति को विकसित करने के लिये उन्हें प्राकृतिक व ऐतिहासिक स्थानों पर भ्रमण के लिये ले जाना चाहिये। उनकी रुचियों को कल्पनाओं को साकार करने के लिए सृजनात्मक के विकास के लिये प्रेरित करना चाहिये। बालक तथा बालिकाओं के पाठ्यक्रम में मित्रता होनी चाहिये। शिक्षकों को ऐसी शिक्षण तिथियों का प्रयोग करना चाहिये, जिसमें किशोरों को स्वयं परीक्षण, निरीक्षण, विचार, चिन्तन तथा तर्क को विकसित करने का अवसर मिले। किशोरों को स्वयं करके सीखने का मौका देना चाहिये। किशोरों को अपनी कल्पनाशीलता से आत्मप्रदर्शन का अवसर देना चाहिये।

संदर्भ

- Ramaseshan, P.H. (1957): The social and emotional adjustment of the gifted, Dissertation. pp. 1267. 57.
- Reddy, M.Y. (1971): "Study of adjustment problems of adolescents in relation to their father's occupation Research Bulletin of the Department of Psy, Osmania Univ., 6, 34-41.
- Reilly, O.T. (1958). Religious practices and personal adjustment social research, 42, pp. 119-121.
- Rosenberg Morris (1957): occupation and values, Glencoe, Illinois the free press.
- Rozario, J. Dalal, D. Kanpur, M. and Sivaji, R (1991): Patterns of adjustment among early adolescent Boys and girls of personality and clinical studies, Vol. 7, No. 2.
- Sewell, W.H. and Heller, A.O. (1956): Social status and personality adjustment of the child Sociometry, 19, pp. 114-125.
- Sharma, G.R. (1976): A study of factor underlying adjustment problems of professional and non-professional college students Unpublished Ph.D. Thesis.
- Shaffer, L.F. (1936): The psychology of Adjustment, Boston Houghton, Hiffin Company, pp. 291-292.
- Silghdsyan, Hayanush (1958): Value orientation and time horizons of personality during adolescence, Psychology (Bulgaria) No.4, 22-32.
- Abrahm, Bream J. (1988), (Saga one children's CENTRE, Melville, N.Y.): The value and value stability of emotionally handicapped and normal adolescents, Adolescence, Volume 23 (91), 721739.
- Agarwal et. al (1989): Some correlates of adjustment among adolescents, Ind. Psy. Abstract, Amritsar, India.
- Agrawal, M.G. (1989): Adjustment among extroverted and introverted college, Researches, 4 (1-2). Adolescents, Psychological.
- Ahmad, Ashma(1972): A study of relationship between value of modernity, Patna University, Patna(Ph.D. Thesis).
- ABE Arkhoff (University of Hawaii) (1968): Adjustment and mental Health.
- Allport, G.W. et. al (1938): Study of values, Boston, Houghton within company.
- 7. Ansari Mahrooz, A. Rehana, Krishna K.P. and Ahmed I. (1984) (Indian Institute of Technology, Kanpur): Psychodynamic of occupational preferences and values, Indian psychological review, Vol. 26 (1), 16-22.
- Arthur, J. Tersild (Teacher's College Columbia University) (1957): The psychology of Adolescence.

लोकतांत्रिक प्रणाली का बदलता स्वरूप

डॉ. दिलीप कुमार सिंह*

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए भरपूर प्रयास हुए हैं और लगातार किये जा रहे हैं, लेकिन अपेक्षा अनुसार परिणाम आज भी बहुत दूर दिखाई पड़ते हैं। यहाँ प्रश्न यह है कि ये समस्याएँ लोकतांत्रिक व्यवस्था की कमियाँ हैं अथवा कुशल नेतृत्व वर्ग के अभाव के कारण हैं अथवा ये जनमानस की संकीर्ण, दूषित, निष्क्रिय एवं स्वार्थी सोच का परिणाम हैं। कारण कुछ भी हो हमें इनके उत्तर जल्द ही तलाशने होंगे तभी एक सभ्य, सक्षम, स्वस्थ विकसित भारत का निर्माण हम कर पायेंगे।

भारतीय लोकतन्त्र की बदलती प्रकृति में लोकतंत्र के समक्ष कई प्रकार की चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ उभर कर आयी हैं। लोकतंत्र को एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में देखा गया है। भारत में लोकतांत्रिक राजव्यवस्था अपने विकास की अर्द्धशदी पूरी कर चुकी है। किसी भी देश की शासन व्यवस्था उसकी सामाजिक संरचना एवं आर्थिक आधार पर टिकी होती है अलोकतांत्रिक समाज में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का सफल होना असंभव है, इसकी सफलता के लिए सामाजिक लोकतंत्र एवं आर्थिक समानता एक पूर्व शर्त बन जाती है। भारतीय संविधान को संविधान सभा को सौंपते हुए इसके मुख्य शिल्पकार डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने 26 नवम्बर, 1949 को राष्ट्र को चेताया था, कि भारत में राजनीतिक समानता एवं दूसरी तरफ सामाजिक एवं आर्थिक असमानता का अंतर्विरोध स्थापित हो रहा है इसे शीघ्र समाप्त करने की जरूरत है अन्यथा गैर-बराबरी के शिकार समूह राजनीतिक बराबरी में अपना विश्वास खो देंगे। आज 73 साल बाद भी डॉ. अम्बेडकर की चेतावनी प्रासंगिक है। वर्तमान में अगर हम भारतीय लोकतंत्र के सम्मुख प्रमुख चुनौतियों को रेखांकित करें जिसकी वजह से समाज एवं अर्थव्यवस्था को लोकतांत्रिकरण नहीं हो पा रहा है तो यह सुनिश्चित हो जाएगा कि लोकतांत्रिक संस्थाओं की बुनियाद असमानता, अत्याचार, अपमान, अन्याय एवं अलगाव जैसी भेदभावकारी अलोकतांत्रिक बीमारियों के ऊपर नहीं रखी जा सकती। भारत में आज लोकतंत्र एक प्रक्रियात्मक यंत्र के रूप में संचालित हो रहा है तो यह कहना गलत न होगा। भारत सरकार स्वीकार कर रही है कि 82 करोड़ लोग अपने लिए दो वक्त का खाना जुटाने में सक्षम नहीं है। यदि लोकतंत्र वर्तमान गति से काम करता रहा तो 73 साल सभी भारतीयों को अपना तन ढकने में और 130 साल तक सर ढकने के लिए इन्तजार करना पड़ेगा। यह एक गंभीर रोग की ओर इशारा करता है। जब तक इसका कारण न जाना जाए और उसके निवारण की उचित प्रक्रिया न अपनाई जाए, भारत में लोकतंत्र की स्थापना एवं रक्षा एक भ्रम ही रहेगा। लोकतंत्र में लोक का अर्थ जनता और तंत्र की व्यवस्था से है। अर्थात् जनता का राज्य। इस प्रकार लोकतंत्र उस शासन प्रणाली को कहते हैं, जिसमें जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों के द्वारा सम्पूर्ण जनता के हितों को दृष्टि में रखकर शासन करती है। लोकतंत्र समस्त जनता के नैतिक समर्थन तथा अनुकूल आचरण की अपेक्षा रखता है। विश्व में अधिकांश देशों का झुकाव लोकतंत्र की ओर अधिक रहा है। जहाँ लोकतंत्र नहीं है वहाँ के लोग इसके सपने देख रहे हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्य तंत्रों की तुलना में लोकतंत्र के प्रति जनमानस में प्रबल आस्था दिखती है।

भारत में आजादी की लड़ाई और संविधान निर्माण के बाद लोकतंत्र को जिन्दा रखने और प्रभावी बनाने का काम ऐसे समूहों ने किया है जो लोकतंत्र के महत्व को कम न भी आँकते हो पर जिनका लक्ष्य कुछ और हासिल करना था।

वर्षों पहले अमरीकी न्यायविद लुई डी ब्रैंडे ने कहा था कि किसी देश में लोकतंत्र हो सकता है या थोड़े से लोगों के हाथों में भारी संपदा का संकेन्द्रण हो सकता है परन्तु दोनों एक साथ नहीं रह सकते। दूसरे शब्दों में कहें तो आर्थिक विषमता और जनतंत्र का एक साथ रहना असंभव है क्योंकि विषमता या तो जनतंत्र को धीरे-धीरे नष्ट कर देती है अथवा उसे दोषपूर्ण बना देती है, लुई ब्रैंडे का यह कथन सिर्फ अमरीका या पश्चिमी दुनिया पर ही लागू नहीं होता है जिसमें भारत भी शामिल है।

* अस्सिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र इन्दपति पी0जी0 कालेज, गैरवाह-जौनपुर सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य पूरी तरह बदल गया है। आज के चुनावी मुद्दे भी उन सिद्धान्तों, मान्यताओं, राष्ट्रहित, जनकल्याण और पम्पराओं पर आधारित नहीं हैं। इनके स्थान पर आज मन्दिर निर्माण, मस्जिद विध्वंस, जातीय आधार पर आरक्षण सरीखे बेमतलब के मुद्दों से संसद का वक्त बर्बाद किया जाता है। इन मुद्दों का सम्बन्ध किसी भी प्रकार आम आदमी की रोटी, कपड़ा और मकान नहीं है। जबकि संसदीय शासन प्रणाली प्रत्येक व्यक्ति के बहुमुखी विकास का उत्तरदायित्व लेकर स्थापित की गयी थी। उस उत्तरदायित्व को भुला दिया गया और उसके स्थान पर सत्ताओं को कब्जाएँ रखने के नये-नये हथकण्डे संसद में खुलेआम प्रयुक्त होने लगे हैं।

राजनीति पर अमीरों और पूँजीपतियों का कब्जा होता जा रहा है जिसके फलस्वरूप आर्थिक गतिशीलता धीरे-धीरे समाप्त हो रही है और सामाजिक-आर्थिक विकास की सीढ़ियों से नीचे से ऊपर चढ़ने में कितनी रुकावटें आ रही हैं। किस तरह से पूँजीपति व उद्यमी विशाल चंदे देकर सत्ता के साथ एक नये किस्म का गठबंधन बना लेते हैं। इससे राजनीतिक समानता या दूसरे शब्दों में कहें तो लोकतंत्र के समावेशीकरण की अवधारणा कमजोर पड़ती जा रही है। राजनीति के पायदान पर वही चढ़ पा रहे हैं। जिनके पास धन की बाहुल्यता है, सरकारों पर उन्हीं का नियंत्रण है। तात्पर्य यह हुआ कि पूँजीवाद के साथ लोकतंत्र का धनमेल होने से जिस नवलोकतंत्रवाद का विकास हुआ उसमें आम आदमी के सरोकार कम हो गए और पूँजीपति, उद्यमी तथा सम्भांतजनों के सरोकारों का इजाफा हुआ।

भारत में लोकतंत्र अथवा उनके संरक्षकों के साथ पर्याप्त घनिष्टता देखी जा रही है। इसका एक सीधा और सरल अनुमान तो संसद में उपस्थित प्रतिनिधियों की संख्या के आधार पर भी लगाया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि वर्तमान संसद के निचले सदन में 543 सदस्यों में से लगभग अधिकतर सदस्य करोड़पति या अरबपति हैं। भारत में इसके अतिरिक्त भी एक विशेष पक्ष है, जो लोकतंत्र के समक्ष चुनौती उपस्थित कर रहा है और यह है अपराधिक छवि वाले लोगों का संसद में बड़ी संख्या में पहुँचना। वर्तमान लोकसभा में ऐसे कई सदस्य हैं जो अपराधिक छवि के हैं। इनके बाद जो कुछ बचता है, उस पर परम्परागत राजनीतिक परिवारों अथवा राजनीतिक उत्तराधिकारियों का कब्जा है। फिर आम आदमी के लिए कितनी जगह शेष रह जाती है और कहा है? श्रेष्ठ योग्यता का धारक होने के बावजूद यदि कोई भारतीय नागरिक इन आर्थिक अथवा अन्य उपादानों से सम्पन्न नहीं है तो यह लोकतंत्र की वर्तमान सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकता। फिर यह सवाल तो उठना ही चाहिए कि लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ मानें क्या है और यह लोकतंत्र है किसके लिए? ऐसा नहीं है कि हमारा वर्ग संविधान समावेशी लोकतंत्र की संवेदनाओं से अछूता है या फिर कोई वह इसकी अपेक्षा नहीं करता।

भारत का लोकतंत्र संवेदनशील भी है और यह अपेक्षा करता है कि लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता सुनिश्चित हो। उसकी प्रस्तावना में ही कहा गया है— हम भारत के लोग भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने तथा उसके समस्त नागरिकों के लिए न्याय, स्वतन्त्रता तथा समानता जैसे अधिकारों की प्रतिष्ठा करें। यानी लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति हम भारत के लोगों में निहित की गई है, लेकिन यह केवल औपचारिक पक्ष है। सच इसमें भिन्न है क्योंकि लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति हम भारत के लोगों में नहीं बल्कि भारत के उस राजनीतिक तंत्र में निहित है जो लोकतंत्र सूचकांक में कुल अंकों के 50 प्रतिशत के आसपास ही स्कोर कर रहा है। इसका कारण यह है कि वर्तमान राजनीतिक संस्कृति लोकतंत्र का इस्तेमाल अपने लाभों के साथ-साथ अपनी उत्तरजीविका को पुख्ता करने के लिए करती है। अगर ऐसा न होता तो अब तक भारत में सामाजिक-आर्थिक विषमता की विषबेल न जाने कब की समाप्त हो चुकी होती।

अतः भारत में लोकतंत्र स्थापित करने का एक ही मार्ग है और वह है संविधान के बनाए रास्ते पर चलते हुए हर व्यक्ति, समूह एवं संगठन उसे अपना व्यक्तिगत सामूहिक व सांगठनिक घोषण-पत्र स्वीकार करें। संविधान की सर्वोच्चता को स्वीकार करके ही नागरिक समाज का निर्माण किया जा सकता है। यदि कुछ व्यक्ति समूह या समुदाय अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं उन्हें प्राप्त करने में सक्षम है और बहुसंख्यक अपनी पिछड़ी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक पृष्ठभूमि के कारण अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं उन्हें प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते हैं तो इन परिस्थितियों में नागरिक समाज का निर्माण नहीं हो सकता। नागरिक समाज लोकतंत्र की बुनियाद है जिसमें सभी व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व के विकास करने के समान अवसर उपलब्ध हो अन्यथा शासक समूह बहुसंख्यक समाज पर अपनी जातिगत नैतिकता का आधिपत्य स्थापित कर लेगा।

जब मनुष्य स्वयं अपने अच्छे-बुरे का निर्णय कर सके तथा अच्छे उद्देश्य को प्राप्त करने में सक्षम हो, तो उसका नैतिक विकास हो जाता है। यही उसका सशक्तिकरण है, प्रबुद्धिकरण है। यही भारत प्रबुद्ध लोकतंत्र के निर्माण की प्रक्रिया का पहला चरण है जहाँ । सशक्त व्यक्ति नागरिक समाज का सदस्य होकर दबे-कुचले लोगों की निर्भरता को समाप्त करने में उनका सहयोग करता है। यही सही अर्थों में लोकतंत्र को सार्थक करता है।

संदर्भ सूची—

1. एम.पी. टण्डन और डा. वी.के. आनन्द, इण्टरनेशनल ला एण्ड ह्यूमन राइट्स, बाय इलाहाबाद ला एजेन्सी. 2005।
2. रमेश छाजता, डेमोक्रेटिक पालिसिंग: एन एसेन्स आफ गुड गवर्नमेंस, 2011, पृ0सं0-24।
3. सनत राहा. प्राब्लम आफ इण्डियन डेमोक्रेसी एण्ड एमरजेंसी, (मैनस्ट्रीम एनुअल नंबर: 1975), पृ0सं0-79-85।
4. के0 सन्थानम, डेमोक्रेटिक प्लानिंग, प्राब्लम एण्ड पिटफाल्स, 1978, पृ0सं0-52-54।
5. वी.पी. श्रीवास्तव, “ह्यूमन राइट्स एण्ड ज्यूडिसरी” मानस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली— 2002, पृ0सं0-296।
6. योजना, “समावेशी लोकतंत्र, वर्ष 158, अंक: 8. अगस्त-2013, पृ0सं0-16-32।



महिलाओं की आर्थिक सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह की भूमिका

डॉ. सलीम खान*

सारांश

महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है; यह समग्र आर्थिक प्रगति, गरीबी उन्मूलन, और जेंडर समानता के लिए भी आवश्यक है। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त महिलाओं को निर्णय लेने में अधिक अधिकार मिलता है और वे अपनी परिस्थितियों में सुधार लाने में सक्षम होती हैं। इससे समाज में एक सकारात्मक और सतत विकास की दिशा में भी वृद्धि होती है। इसलिए, महिलाओं के लिए आर्थिक अवसरों को बढ़ावा देने और उन्हें अधिक सक्षम बनाने के लिए लगातार प्रयास की आवश्यकता है। अतः स्वयं सहायता समूह महिलाओं के सशक्तिकरण का एक सशक्त माध्यम हैं, लेकिन सामाजिक संरचनाएं, वित्तीय बाधाएं, सूचना और प्रशिक्षण की कमी जैसे कारक इनकी पूर्ण क्षमता को बाधित करते हैं। यदि इन चुनौतियों को दूर किया जाए — जैसे शिक्षा, कौशल विकास, डिजिटल साक्षरता, बाजार उपलब्धता और नीति-स्तरीय सुधारों के माध्यम से — तो SHGs महिला सशक्तिकरण के एक मजबूत स्तंभ बन सकते हैं।

की-वर्ड: महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण, स्वयं सहायता समूह की भूमिका, सरकारी प्रोत्साहन, बाधाएं एवं समाधान।

उद्देश्य:

1. महिलाओं की उद्यमिता में स्वयं सहायता समूह की भूमिका का अध्ययन करना।
2. स्वयं सहायता समूह के प्रोत्साहन में सरकारी कार्यक्रमों का अध्ययन करना।
3. महिला सशक्तिकरण में आने वाली बाधाओं का अध्ययन करना।
4. चुनौतियों एवं बाधाओं का समाधान ज्ञात करना है।

महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण समाज और देश की समग्र प्रगति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की दिशा में महिलाओं की भागीदारी, जैसे स्वयं-सहायता समूहों (SHGs), छोटे उद्योगों, स्टार्ट-अप्स, और अन्य आर्थिक गतिविधियों में उनकी भूमिका, उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनाती है। **स्वयं-सहायता समूह (SHGs) और माइक्रोफाइनेंस** छोटे समुदायों में महिलाओं के सामूहिक प्रयासों से बने समूह होते हैं, जो एक-दूसरे की मदद करने और आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी के लिए गठित होते हैं। ये समूह आर्थिक रूप से कमजोर महिलाओं को एक मंच प्रदान करते हैं, जहां वे बचत कर सकती हैं, लघु ऋण ले सकती हैं, और अपने छोटे व्यवसाय शुरू कर सकती हैं। **राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM)** की रिपोर्ट के अनुसार, SHGs ने लाखों महिलाओं को रोजगार और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में मदद की है। महिलाओं के बीच समृद्धि और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने में SHGs ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। **वर्ल्ड बैंक** की रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि SHGs में भाग लेने वाली महिलाओं में आत्मनिर्भरता, नेतृत्व की क्षमता और आर्थिक प्रबंधन का कौशल विकसित हुआ है।

छोटे उद्योग ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में महिलाओं के रोजगार का प्रमुख स्रोत हैं। छोटे उद्योगों जैसे कि बुनाई, सिलाई, हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण, आदि में महिलाओं की भागीदारी अत्यधिक है। ये उद्योग उन्हें घर के करीब रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं, जिससे परिवार के साथ उनकी जिम्मेदारियों में भी संतुलन बना रहता है। MSME (सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम) मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार, इन क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी से देश की आर्थिक

* असिस्टेंट प्रोफेसर, अब्दुल अजीज अंसारी डिग्री कालेज, मजडीहा शाहगंज, जौनपुर

स्थिति में सुधार हुआ है और रोजगार सृजन में भी मदद मिली है। छोटे उद्योग और हस्तशिल्प के क्षेत्र: महिलाएं बुनाई, सिलाई, हस्तशिल्प, कुटीर उद्योग (जैसे अगरबत्ती निर्माण, खाद्य प्रसंस्करण, खिलौना निर्माण), मृदा-निर्माण, बुनकरों का काम, पेपर बैग निर्माण, और विभिन्न अन्य घरेलू उद्योगों में कार्यरत हैं। इन उद्योगों में महिलाओं की भागीदारी अधिक होने का प्रमुख कारण यह है कि ये कार्य घर के करीब किए जा सकते हैं। यह उन्हें परिवार की जिम्मेदारियों और आर्थिक कार्यों के बीच बेहतर संतुलन बनाने का अवसर प्रदान करता है। MSME मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार, लगभग 20% सूक्ष्म और छोटे उद्योग महिलाओं के स्वामित्व में हैं। यह संख्या हाल के वर्षों में बढ़ रही है, जो महिलाओं के आत्मनिर्भर बनने की दिशा में उनकी प्रगति का प्रतीक है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं छोटे उद्योगों और हस्तशिल्प में अधिक संख्या में कार्यरत हैं। इन क्षेत्रों में उनकी भागीदारी रोजगार सृजन में सहायक होती है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आता है। भारत में MSME (सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम) क्षेत्र का योगदान GDP में लगभग 30% है। इस क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी से यह स्पष्ट होता है कि वे आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। MSME मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में छोटे उद्योगों के माध्यम से महिलाओं को रोजगार देने में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। सरकार और गैर-सरकारी संगठनों की सहायता से महिलाएं अपने उत्पादों को स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भी पहुंचाने में सक्षम हुई हैं। हस्तशिल्प उत्पाद, जैसे कि कढ़ाई, हाथ से बने वस्त्र, मिट्टी के बर्तन, गहने, इत्यादि, निर्यात बाजार में भी एक विशेष स्थान रखते हैं।

कई महिलाएं स्व-सहायता समूह (SHGs) के माध्यम से छोटे उद्योगों में काम करती हैं। यह एक सामूहिक ढांचा है, जहां महिलाएं एक-दूसरे की मदद कर सकती हैं और सामूहिक रूप से काम करके बड़े ऑर्डर पूरे कर सकती हैं। SHGs के माध्यम से महिलाएं लघु ऋण प्राप्त कर सकती हैं, जिससे उन्हें अपने छोटे उद्योगों को बढ़ाने में मदद मिलती है। यह आर्थिक स्वतंत्रता उन्हें अपनी आजीविका में सुधार लाने का मौका देती है। कुटीर उद्योग महिलाओं को स्थानीय स्तर पर रोजगार प्रदान करते हैं। ये उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम बनाते हैं, जिससे परिवार की आय में वृद्धि होती है और गरीबी उन्मूलन में भी सहायता मिलती है। कृषि आधारित कुटीर उद्योग, जैसे शहद उत्पादन, जैविक खेती, मसाला निर्माण, और डेयरी उत्पाद, महिलाओं के लिए आजीविका के प्रमुख साधन हैं। इससे वे न केवल आत्मनिर्भर बनती हैं बल्कि अपने परिवार के जीवनस्तर में भी सुधार लाती हैं। हाल के वर्षों में, भारत में महिला उद्यमिता में वृद्धि देखी गई है। 'स्टार्ट-अप इंडिया' और 'मेक इन इंडिया' जैसी योजनाओं ने महिला उद्यमियों को वित्तीय और तकनीकी सहायता प्रदान करने में मदद की है। नारी शक्ति पुरस्कार से सम्मानित कुछ महिला उद्यमियों ने खाद्य प्रसंस्करण, टेक्नोलॉजी, शैक्षिक सेवाओं और हस्तशिल्प क्षेत्रों में अद्वितीय नवाचार किए हैं। इन क्षेत्रों में उनकी सफलता ने न केवल उन्हें सशक्त बनाया है बल्कि समाज में प्रेरणा का स्रोत भी बनी हैं। NITI Aayog की रिपोर्ट के अनुसार, महिला उद्यमिता में वृद्धि से जीडीपी में सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। अगर महिलाओं को अधिक आर्थिक अवसर दिए जाएं, तो यह आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करेगा। विश्व बैंक के अनुसार, यदि महिलाओं को समान रूप से आर्थिक अवसर दिए जाएं, तो वे राष्ट्रीय आय में उल्लेखनीय योगदान कर सकती हैं। यह पाया गया है कि जो देश महिलाओं की श्रम शक्ति में भागीदारी को प्रोत्साहित करते हैं, वे आर्थिक विकास में तेजी से बढ़ते हैं। एक अध्ययन के अनुसार, महिलाओं की अधिक आर्थिक भागीदारी से जेंडर गैप में कमी आती है, जो आर्थिक विकास और सामाजिक समानता को बढ़ावा देता है।

स्वयं सहायता समूह को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार द्वारा किए गए कार्य:

सरकार द्वारा स्वयं सहायता समूहों (Self-Help Groups – SHGs) को प्रोत्साहित करने और महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने हेतु अनेक योजनाएं, कार्यक्रम, और नीतिगत पहलें की गई हैं। ये प्रयास विशेष रूप से

ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों की महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों से जोड़ने, आत्मनिर्भर बनाने, और सामुदायिक विकास में भागीदार बनाने के लिए किए गए हैं।

प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP):

इस योजना के अंतर्गत महिलाओं को कुटीर और छोटे उद्योगों के लिए ऋण और सहायता प्रदान की जाती है, जिससे वे अपने उद्योगों को स्थापित कर सकती हैं। भारत सरकार ने महिला उद्यमियों को सशक्त बनाने के लिए विभिन्न योजनाएं चलाई हैं, जो उन्हें आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनने में मदद करती हैं। ये योजनाएं प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता, और बाजार तक पहुंच प्रदान करती हैं। सरकार ने हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों में कार्यरत महिलाओं को प्रोत्साहन देने के लिए विशेष योजनाएं लागू की हैं। इन योजनाओं के तहत महिलाओं को प्रशिक्षण, विपणन सहायता और कच्चे माल की उपलब्धता में मदद दी जाती है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) / दीनदयाल अंत्योदय योजना:

इस योजना का प्रारंभ 2011 में शुरू किया गया। जिसका उद्देश्य ग्रामीण गरीब महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को वित्तीय, सामाजिक और संस्थागत सहायता प्रदान करना, SHGs को सस्ते ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराना, कौशल विकास और उद्यमिता प्रशिक्षण, बैंक लिंकेज को बढ़ावा देना। डिजिटल लेन-देन की सुविधा प्रदान करना है।

स्टार्ट-अप विलेज एंटरप्रेन्योरशिप प्रोग्राम (SVEP):

इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में SHG सदस्यों को उद्यमी बनाने और सूक्ष्म उद्यम स्थापित करने में सहायता देना है। इसके माध्यम से व्यावसायिक प्रशिक्षण, तकनीकी और विपणन सहायता, पूंजी निवेश के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त होता है।

महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए ब्याज सब्सिडी योजना:

NRLM के तहत पंजीकृत महिला SHGs, महिलाओं को 7% या उससे कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान किया जाता है। समय पर ऋण चुकाने वाली SHGs को अतिरिक्त ब्याज सब्सिडी (3%) प्रदान की जाती है।

प्रधानमंत्री मुद्रा योजना (PMMY):

इस योजना का उद्देश्य छोटे कारोबार शुरू करने के लिए SHG सदस्यों को बिना गारंटी ऋण देना है। इसके माध्यम से शिशु (₹50,000 तक), किशोरों को (₹50,000 – ₹5 लाख), तरुण को (₹5 – ₹10 लाख), SHGs के लिए: समूहों के माध्यम से सामूहिक व्यापार हेतु ऋण सुविधा प्रदान किए जाते हैं।

डिजिटल वित्तीय समावेशन पहल:

इसके माध्यम से SHG सदस्यों को डिजिटल भुगतान प्रणाली, बैंकिंग ऐप्स, मोबाइल वॉलेट, और ऑनलाइन विपणन के उपयोग का प्रशिक्षण दिया जाता है। डिजिटल साक्षरता बढ़ाकर महिलाएं स्वयं ऑनलाइन लेन-देन कर सकती हैं।

बैंक सखी योजना (Bank Sakhi Yojana):

इस योजना का उद्देश्य SHG की सदस्य महिलाओं को “बैंक सखी” के रूप में प्रशिक्षित करना, जो अपने गांव में ही बैंकिंग सेवाएं प्रदान करती हैं। इसका लाभ यह है कि गांव-गांव बैंकिंग पहुंच सम्भव हो सकी है। और महिलाओं को मासिक आय और सम्मानजनक कार्य प्राप्त हो सका है।

राज्य सरकारों की पहलें:

उत्तर प्रदेश – “महिला उद्यमिता योजना” SHGs को प्रोत्साहित करने हेतु ₹5 लाख तक का ऋण व प्रशिक्षण। “One District One Product (ODOP)” योजना के अंतर्गत SHGs को कारीगर और उत्पादक के रूप में जोड़ा गया।

तमिलनाडु — “मगलिर थित्तम योजना” महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से स्वरोजगार के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। विशेष प्रशिक्षण और विपणन सुविधा।

उत्पाद विपणन में सहायता: सरकारी मेलों, हाटों और प्रदर्शनियों में SHG उत्पादों को विक्रय की सुविधा। ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म (जैसे GeM, Amazon Saheli, Flipkart Samarth) पर SHG उत्पादों की बिक्री की सुविधा।

DAY-NULM (शहरी क्षेत्र हेतु): शहरी क्षेत्रों में महिलाओं के SHGs को वित्तीय सहयोग व स्वरोजगार का प्रोत्साहन। शहरी गरीबों के लिए कौशल विकास एवं ऋण सहायता मिलती है।

अतः सरकार द्वारा किए गए ये प्रयास न केवल महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम बना रहे हैं, बल्कि सामूहिकता, नेतृत्व, वित्तीय ज्ञान और उद्यमिता के विकास को भी बढ़ावा दे रहे हैं। SHGs के माध्यम से महिलाएं आज आत्मनिर्भर भारत की नींव रखने में अग्रणी भूमिका निभा रही हैं।

प्रभाव:

सशक्तिकरण और आत्मनिर्भरता: छोटे उद्योगों में महिलाओं की भागीदारी उन्हें सशक्त और आत्मनिर्भर बनाती है। वे परिवार की आर्थिक जिम्मेदारियों में योगदान कर सकती हैं और अपने बच्चों की शिक्षा व अन्य आवश्यकताओं में सुधार ला सकती हैं।

सामाजिक सम्मान: आर्थिक स्वतंत्रता से महिलाओं को समाज में सम्मान और पहचान मिलती है। वे अपने अधिकारों और निर्णय लेने की क्षमता में सक्षम होती हैं, जिससे समाज में उनका महत्व बढ़ता है।

अतः महिलाओं की छोटे उद्योगों और हस्तशिल्प में भागीदारी न केवल उनके आर्थिक सशक्तिकरण में सहायक है, बल्कि यह देश की आर्थिक वृद्धि और रोजगार सृजन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इन क्षेत्रों में महिलाओं के योगदान को और अधिक सशक्त बनाने के लिए उन्हें प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता और विपणन तक पहुंच सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। जब महिलाएं आर्थिक रूप से स्वतंत्र होती हैं, तो यह समाज के हर क्षेत्र में व्यापक सकारात्मक प्रभाव डालता है।

चुनौतियाँ और समाधान:

चुनौतियाँ: महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता की दिशा में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे लैंगिक भेदभाव, संपत्ति में अधिकार की कमी, वित्तीय संसाधनों की कमी और पितृसत्तात्मक सोच।

समाधान: इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए सरकार और विभिन्न संगठनों को नीतिगत सुधार, वित्तीय सहायता, और महिलाओं के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करने की आवश्यकता है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक बाधाएँ:

स्वयं सहायता समूह (Self Help Groups – SHGs) महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी माध्यम बन चुके हैं। हालांकि, इन समूहों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया में कई चुनौतियाँ और बाधाएँ भी सामने आती हैं, जो उनके विकास और प्रभाव को सीमित करती हैं। नीचे इन्हीं चुनौतियों का तथ्यात्मक व विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत है:

पितृसत्तात्मक सोच: कई ग्रामीण और पारंपरिक समाजों में महिलाओं की स्वतंत्रता को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। पुरुष-प्रधान मानसिकता SHG की महिलाओं को निर्णय लेने या बाहर जाकर कार्य करने से रोकती है।

रूढ़िवादी परंपराएँ: पर्दा प्रथा, विवाह के बाद महिलाओं की सामाजिक भूमिका का सीमित होना आदि SHG में भागीदारी को प्रभावित करते हैं।

समाज का विरोध: कई बार महिलाएं जब आर्थिक रूप से सक्रिय होती हैं, तो परिवार या समुदाय में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

1. शिक्षा और प्रशिक्षण की कमी:

शैक्षिक असाक्षरता: ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की साक्षरता दर अभी भी अपेक्षाकृत कम है, जिससे उन्हें दस्तावेजों, बैंकिंग, लेखा-जोखा आदि में कठिनाई होती है। **कौशल का अभाव:** पर्याप्त व्यावसायिक प्रशिक्षण, विपणन ज्ञान, वित्तीय प्रबंधन और उद्यमिता से जुड़ी जानकारी का अभाव SHG की प्रभावशीलता को कम करता है।

2. वित्तीय संसाधनों की सीमाएँ:

बैंकों तक सीमित पहुँच: SHG के सदस्य कभी-कभी बैंकिंग औपचारिकताओं, गारंटी आदि की वजह से ऋण प्राप्त नहीं कर पाते। **ऋण चुकाने में कठिनाई:** अस्थिर आय, प्राकृतिक आपदाएँ, या स्वास्थ्य समस्याएँ महिलाओं को समय पर ऋण चुकाने में अक्षम बना देती हैं।

वित्तीय धोखाधड़ी और मध्यस्थों की भूमिका: कई बार वित्तीय सहायता बीच के एजेंटों द्वारा हड़प ली जाती है।

बाजार तक सीमित पहुँच: उत्पाद विपणन की कठिनाई: SHG द्वारा निर्मित वस्तुओं को सही बाजार नहीं मिल पाता, जिससे उचित मूल्य नहीं मिलते।

ब्रांडिंग और पैकेजिंग की समस्या: आधुनिक बाजार में प्रतिस्पर्धा के लिए आवश्यक ब्रांडिंग, डिजाइन, और गुणवत्तापूर्ण पैकेजिंग की जानकारी का अभाव।

ई-कॉमर्स में भागीदारी की कमी: डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण ऑनलाइन विक्रय प्लेटफार्मों पर उपस्थिति बहुत सीमित है।

3. नेतृत्व एवं निर्णय क्षमता में कमी:

अनुभवहीनता: कई महिलाएं पहली बार सामूहिक कार्य कर रही होती हैं, जिससे निर्णय लेने में हिचकिचाहट होती है।

दबाव और डर: कई बार समूह का संचालन बाहरी व्यक्ति या पुरुष करते हैं, जिससे महिलाओं की भागीदारी नाममात्र की रह जाती है।

4. सरकारी योजनाओं की जानकारी का अभाव:

कई महिलाएं SHG से जुड़ तो जाती हैं, लेकिन उन्हें सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं और लाभों की पूरी जानकारी नहीं होती। जानकारी के अभाव में वे कई बार योजनाओं का लाभ नहीं उठा पातीं।

5. समूह में मतभेद और असंगठन:

सदस्यों के बीच मतभेद: नेतृत्व को लेकर विवाद, वित्तीय पारदर्शिता की कमी या व्यक्तिगत ईर्ष्या से समूह टूटने की संभावना रहती है।

समूह की नियमितता में कमी: बैठकें समय पर न होना, निर्णयों को लागू न करना, आदि SHG की प्रभावशीलता को कम करते हैं।

तकनीकी अवसंरचना की कमी: दूर-दराज के क्षेत्रों में इंटरनेट, मोबाइल नेटवर्क, परिवहन आदि की कमी SHG के व्यावसायिक कार्य में बाधा डालती है।

स्वयं सहायता समूह (SHG) के माध्यम से महिला सशक्तिकरण में आने वाली चुनौतियों के समाधान तथा सरकारी रणनीतियाँ:

1. सामाजिक एवं सांस्कृतिक बाधाओं के समाधान:

जागरूकता अभियान: ग्रामीण क्षेत्रों में लैंगिक समानता, महिलाओं के अधिकार, शिक्षा और सशक्तिकरण से संबंधित जनजागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए।

सामुदायिक सहभागिता: पंचायत, ग्राम सभा और परिवारों को SHG गतिविधियों में शामिल कर पितृसत्तात्मक सोच में परिवर्तन करना चाहिए।

महिला नेतृत्व को बढ़ावा: SHG में महिलाओं को अध्यक्ष, सचिव, कोषाध्यक्ष जैसे पदों पर नियुक्त की जानी चाहिए।

सरकारी पहल: “बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ” योजना के अंतर्गत लैंगिक समानता पर विशेष ध्यान। NRLM (राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन) के तहत ग्राम स्तरीय महिला सशक्तिकरण कैंप।

2. शिक्षा एवं प्रशिक्षण की कमी के समाधान:

निरंतर शिक्षा केंद्रों की स्थापना। कौशल विकास कार्यक्रम: जैसे सिलाई, कढ़ाई, पैकेजिंग, विपणन, वित्तीय लेखांकन आदि डिजिटल साक्षरता अभियान चलाना चाहिए।

सरकारी पहल: PMKVY (प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना) के माध्यम से व्यावसायिक प्रशिक्षण। DAY-NRLM के तहत SHG सदस्यों को नियमित प्रशिक्षण मॉड्यूल।

3. वित्तीय संसाधनों की बाधाओं के समाधान:

बैंकों के साथ साझेदारी करके SHG के लिए आसान ऋण सुविधा। बीमा योजनाएं और आपदा राहत कोष। सूक्ष्म वित्त संस्थानों की भूमिका बढ़ाना।

सरकारी पहल: मुद्रा योजना के माध्यम से SHG को बिना गारंटी ऋण। ब्याज सब्सिडी योजना के माध्यम से समय पर भुगतान करने पर ब्याज में छूट। बैंक सखी योजना से ग्रामीण महिला को बैंकिंग एजेंट के रूप में प्रशिक्षित करने प्रयास किया जा रहा है।

4. बाजार और विपणन समस्याओं का समाधान:

स्थानीय से लेकर अंतरराष्ट्रीय मेलों में भागीदारी सुनिश्चित करना। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म से जोड़ना (जैसे Amazon Saheli, Flipkart Samarth)। सहकारी विपणन संघ का गठन किया जाना चाहिए।

सरकारी पहल: GeM पोर्टल (Government e-Marketplace) पर SHG उत्पादों के लिए विक्रेता पंजीकरण। “वन जिला एक उत्पाद” योजना (ODOP) के अंतर्गत SHG को जोड़ने का काम किया गया है।

5. समूह संचालन में समस्याओं के समाधान:

नेतृत्व क्षमता विकास प्रशिक्षण। पारदर्शी लेखांकन प्रणाली। नियमित बैठक और सहभागिता को अनिवार्य बनाना चाहिए।

सरकारी पहल: CLF (Cluster Level Federation) मॉडल: SHGs को एकजुट कर संगठनात्मक मजबूती। समूह बीमा और क्रेडिट गारंटी योजना का संचालन किया जा रहा है।

6. सरकारी योजनाओं की जानकारी के अभाव का समाधान:

स्थानीय भाषा में प्रशिक्षण और प्रचार सामग्री। ग्राम पंचायतों में महिला स्वयंसेवकों की नियुक्ति। रेडियो, मोबाइल ऐप, पंचायत स्तर पर जागरूकता शिविर।

सरकारी पहल: Aajeevika App और NRLM पोर्टल के माध्यम से योजनाओं की जानकारी। आशा, आंगनवाड़ी और महिला स्वयंसेवकों के माध्यम से सूचना संप्रेषण किया जा रहा है।

7. तकनीकी और डिजिटल समस्याओं का समाधान:

SHG सदस्यों को स्मार्टफोन उपयोग का प्रशिक्षण। डिजिटल भुगतान, ई-वॉलेट, UPI, बैंक ऐप की जानकारी।

सरकारी पहल:

डिजिटल ग्राम योजना: इंटरनेट कनेक्टिविटी का विस्तार किया गया। इसके साथ ही डिजिटल साक्षरता मिशन (PMDISHA) सरकार द्वारा SHGs को मजबूत करने हेतु बहुआयामी रणनीतियाँ लागू की गई हैं, जिनका उद्देश्य महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना, सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाना, और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सक्रिय बनाना है। हालांकि, इन योजनाओं का अधिकतम लाभ तभी संभव है जब जागरूकता बढ़े, योजनाओं की पारदर्शिता हो, प्रशिक्षण सतत हो, और महिला नेतृत्व को प्राथमिकता मिले।

निष्कर्ष:

अतः महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है; यह समग्र आर्थिक प्रगति, गरीबी उन्मूलन, और जेंडर समानता के लिए भी आवश्यक है। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त महिलाओं को निर्णय लेने में अधिक अधिकार मिलता है और वे अपनी परिस्थितियों में सुधार लाने में सक्षम होती हैं। इससे समाज में एक सकारात्मक और सतत विकास की दिशा में भी वृद्धि होती है। इसलिए, महिलाओं के लिए आर्थिक अवसरों को बढ़ावा देने और उन्हें अधिक सक्षम बनाने के लिए लगातार प्रयास की आवश्यकता है। अतः स्वयं सहायता समूह महिलाओं के सशक्तिकरण का एक सशक्त माध्यम हैं, लेकिन सामाजिक संरचनाएं, वित्तीय बाधाएं, सूचना और प्रशिक्षण की कमी जैसे कारक इनकी पूर्ण क्षमता को बाधित करते हैं। यदि इन चुनौतियों को दूर किया जाए — जैसे शिक्षा, कौशल विकास, डिजिटल साक्षरता, बाजार उपलब्धता और नीति-स्तरीय सुधारों के माध्यम से — तो SHGs महिला सशक्तिकरण के एक मजबूत स्तंभ बन सकते हैं।

सन्दर्भ सूची:-

1. दत्ता, पी. और मीता, एस. (2017). Women Empowerment through SHGs in India. New Delhi: Discovery Publishing House.
2. सरोजिनी, बी. (2014). Self Help Groups and Women Empowerment: A Case Study of Andhra Pradesh. International Journal of Research in Humanities and Social Sciences.
3. Desai, M. (2009). Women Empowerment in India. New Delhi: Himalaya Publishing House.
4. Kabeer, N. (2005). Gender Equality and Women's Empowerment: A Critical Analysis of the Third Millennium Development Goal. Gender & Development Journal, 13(1), 13–24.
5. Panda, S. (2015). Self Help Groups and Economic Empowerment of Women: A Study in Odisha. Odisha Economic Journal.
6. Ministry of Rural Development (2023). Annual Report 2022–23. Government of India.
7. National Rural Livelihood Mission (NRLM). Self Help Groups Progress Report. <https://aajeevika.gov.in>
8. Ministry of Micro, Small & Medium Enterprises (MSME) (2022). Udyam Registration & SHG Involvement Report.
9. NITI Aayog (2021). Strategy for New India @75: Women Empowerment Section.
10. World Bank (2020). The Power of SHGs: India's Journey toward Financial Inclusion.
11. UN Women India. <https://india.unwomen.org>
12. GeM Portal for SHGs. <https://gem.gov.in>
13. PMKVY – Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana. <https://pmkvyofficial.org>
14. MUDRA Scheme Portal. <https://mudra.org.in>
15. Digital India Initiative. <https://digitalindia.gov.in>



वर्तमान समय में भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार एवं परिवर्तन

डॉ. निजामुद्दीन*

समाज के निर्माण में महिलाओं की भूमिका प्रमुख है। महिलाओं की स्थिति में समय-समय पर देश काल के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। वर्तमान भारतीय समाज में अनेक बदलाव हुए हैं जिनका महिलाओं की स्थिति में भी कई बदलाव आये हैं तथा गरीब महिलाओं पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा, क्योंकि सैकड़ों वर्षों की परतन्त्रता की वजह से भारतवर्ष संसार के गरीब देशों में से एक है। भारतीय समाज की परम्परागत व्यवस्था में महिलायें आजीवन पिता, पति और पुत्र के संरक्षण में जीवन-यापन करती रही हैं। भारतीय संविधान में पुरुषों एवं महिलाओं को समाज दर्जा और अधिकार दिये जाने के बावजूद इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि विकास और सामाजिक स्तर की दृष्टि से महिलायें अभी भी कमजोर वर्गों में शामिल हैं। महिला परिवार की आधारशिला है और सामाजिक विकास बहुत कुछ उसी के सप्रयासों से सम्भव है। स्त्रियाँ ही संतति की परम्परा में मुख्य भूमिका निभाती हैं फिर भी प्राचीन समाज से लेकर आधुनिक कहे जाने वाले समाज तक स्त्रियाँ उपेक्षित ही रही हैं। उन्हें कम से कम सुविधाओं, अधिकारों और उन्नति के अवसरों में रखा जाता रहा है, इसी कारण महिलाओं की परिस्थिति अत्यंत निचले स्तर पर है।

वर्तमान समय में भारतीय स्त्रियों की स्थिति में हुए सुधार या परिवर्तन

वर्तमान भारत में स्त्रियों की स्थिति में सुधार या परिवर्तन हुए हैं, उनके कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :-

1. **स्त्रियों में शिक्षा का विस्तार :-** अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद धीरे-धीरे स्त्रियों में शिक्षा का विस्तार होना प्रारंभ हुआ। स्वतंत्रता के बाद केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों ने भी इस संबंध में अनेक प्रयत्न किए। शिक्षा के विस्तार के साथ साथ स्त्रियों में परम्परागत अंधविश्वास तथा संकीर्ण मनोभाव दूर होते गए और वे अपने अधिकारों के संबंध में जागरूक हुईं।
2. **सुधार आंदोलन व राष्ट्रीय आंदोलन :-** विभिन्न समयों पर हुए सुधार व राष्ट्रीय आंदोलन ने भी स्त्रियों की स्थिति को सुधारने में पर्याप्त योगदान दिया। गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्रियों ने कंधे से कंधा मिलाकर भाग लिया, अंग्रेजों के अत्याचार सहे और जेल गईं। इससे स्त्रियों में एक नई चेतना, एक नई जागृति और आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ जो आगे चलकर उनकी स्थिति को नए सांचे में ढालने में सहायक सिद्ध हुआ।
3. **सरकारी सुविधाएं :-** भारत में स्त्रियों की स्थिति को सुधारने में सरकार प्रयासों का भी पर्याप्त योगदान रहा। 59,500 कामकाजी महिलाओं के लिए अब तक 841 हॉस्टल बनाए गए हैं। 2 अक्टूबर, 1993 से महिला समृद्धि योजना ग्रामीण क्षेत्रों में डाकघरों के माध्यम से चलाई जा रही है। अब तक लगभग 8 लाख प्रौढ़ महिलाओं व लड़कियों को शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जा चुका है। महिला विकास निगम राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना क्रमशः 1986-87 व 1992-93 में की गई। इतना ही नहीं, एक राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन श्रीमती जयन्ती पटनायक की अध्यक्षता में 31 जनवरी, 1992 को किया गया था। इसका उद्देश्य महिलाओं की सुरक्षा व अधिकार से संबंधित कानूनों को ठीक से लागू करना है।

परिवार और विवाह के संबंध में उच्च स्थिति -

परिवार और विवाह के संबंध में आज भारतीय नारी की स्थिति कहीं अधिक उच्च है। सन् में 'बाल-विवाह अवरोध अधिनियम' (The Child Marriage Restraint Act, 1929) द्वारा बाल-विवाह का अन्त कर दिया गया है। पहले अधिनियम के अनुसार कोई भी माता-पिता लड़की का विवाह 15 वर्ष की आयु से पहले नहीं कर सकता। अब भारत सरकार ने इस न्यूनतम आयु को 15 वर्ष से बढ़ाकर 18 वर्ष कर दिया है। स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण परिषद् ने भी अपने एक सम्मेलन में इस न्यूनतम आयु को 19 वर्ष करने की सिफारिश की थी। 1961 के 'दहेज प्रतिबंध अधिनियम' (Dowry Prohibition Act, 1961) के द्वारा दहेज देना अपराध घोषित कर दिया गया है। परन्तु दुःख है कि इस संबंध में कोई विशेष लाभ नहीं हुआ है। इसी प्रकार सन् 1955 के हिन्दू-विवाह तथा विवाह-विच्छेद अधिनियम (Hindu Marriage and Divorce Act, 1955) और सन्

* असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, फरीदुल हम मेमोरियल डिग्री कॉलेज, सबराहद, शाहगंज, जौनपुर

1954 क विशेष विवाह अधिनियम (Special Marriage Act, 1954) ने स्त्रियों को धार्मिक व अन्य सभी प्रकार के प्रतिबंधों को दूरकर विवाह करने की आज्ञा दे दी है। अब बहुपत्नी-विवाह गैर-कानूनी है। अन्तर्जातीय विवाह मान्य है, और स्त्रियों को विवाह-विच्छेद का पूर्ण अधिकार है। इसी कारण विधवा पुनर्विवाह भी आज कानूनी रूप से मान्य है। इन सभी कारणों से परिवारों में भी स्त्रियों की स्थिति काफी सुधरी है। वह अब दासी नहीं, बल्कि मित्र है। सास-ससुर की सेविका नहीं, बल्कि सम्माननीय वधू है। इस तरह यह स्पष्ट है कि विवाह और परिवार के क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षतया उच्च है।

महिलाओं की आर्थिक स्थिति

उच्च आर्थिक स्थिति :- आर्थिक दृष्टिकोण से आज स्त्रियों की स्थिति उच्च है। आज भारत के विभिन्न मुख्य धन्धों में नौकरी करने वाली स्त्रियों की संख्या 11 करोड़ से भी अधिक है। इतना ही नहीं, सन् 1956 के “हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम” (The Hindu Succession Act, 1956) के द्वारा हिन्दू स्त्रियों को माता, पत्नी और पुत्री के रूप में पुरुषों के समान ही सम्पत्ति संबंधी अधिकार प्राप्त हो गए हैं, इन सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि निश्चय ही स्त्रियों की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ है।

शिक्षा के संबंध में सुधार :- स्त्रियों की शिक्षा के संबंध में भी वर्तमान समय में पर्याप्त सुधार हुए हैं। पहले बहुत ही कम स्त्रियां पढ़ी-लिखी होती थीं, परन्तु आज स्त्रियों में शिक्षा बढ़ रही है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार प्रत्येक 1,000 स्त्रियों में केवल 392 स्त्रियां ही शिक्षित थीं। सन् 2001 की जनगणना से पता चलता है कि प्रत्येक 1,000 स्त्रियों में से 541 स्त्रियां पढ़ी-लिखी हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार प्रत्येक 1,000 स्त्रियों में से 655 स्त्रियां शिक्षित हैं। सरकार भी स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दे रही है। स्त्रियों को निःशुल्क शिक्षा, प्राइवेट शिक्षा देने की सुविधा, छात्रवृत्तियां आदि देकर शिक्षा के विषय में प्रोत्साहित किया जा रहा है। अनेक राज्यों की सरकारों ने तो सरकारों ने तो बारहवीं कक्षा तक लड़कियों की शिक्षा निःशुल्क करके स्त्री-शिक्षा के विस्तार में सराहनीय योगदान दिया है। स्त्रियों की शिक्षा में सुधार का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि प्रतिवर्ष भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की परीक्षाओं में लड़कियां सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं और मेरिट में आ रही हैं।

बेटी है अनमोल रत्न, शिक्षा से आगे बढ़ने का करे जतन।

शिक्षा ही है उसका हथियार, जो हर बाधा को करे पार।

इससे ही करे वह समाज का उद्धार।

शिक्षा अंधविश्वास, रूढ़िवादिता एवं संकीर्णता का निवारण, करके व्यक्ति का आधुनिकता की ओर अग्रसर करता है। विवेकशीलता, गतिशीलता, सहिष्णुता इत्यादि आधुनिकता के लक्षण शिक्षा के माध्यम से ही विकसित होते हैं। मनोवृत्तियों के निर्धारण मूल्यों का अंतरीकरण और जीवनशैली के स्वरूपीकरण शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। अतः आधुनिक समाज में व्यक्ति की शैक्षणिक प्रस्थिति उसकी व्यवसायिक सहभागिता को सुनिश्चित करती है। व्यवसाय विशेष में संलग्न लोगों में निहित शैक्षणिक भिन्नता का प्रभाव उनकी कार्यकुशलता एवं कार्य सम्पादन की स्थिति दिखायी पड़ता है।

शपथ ग्रहण संबोधन में श्रीमती पाटिल ने कहा था कि— “मैं शिक्षा के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध हूँ और चाहती हूँ कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, लड़का हो या लड़की, आधुनिक शिक्षा से वंचित न रहें। मेरे लिए महिलाओं का सशक्तिकरण विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि मैं समझती हूँ कि इससे राष्ट्र को सशक्त बनाने में मदद मिलेगी।

महात्मा गाँधी के अनुसार: “हमारा पहला प्रयास अधिक से अधिक महिलाओं को उनके वर्तमान स्थिति के प्रति जागरूक करना हाना चाहिए।” यूएनडीपी नारी सशक्तिकरण को सिर्फ इसलिए महत्व नहीं देता कि यह मानव अधिकार है बल्कि इसके माध्यम से हमारे सदियों से चले आ रहे विकास के लक्ष्यों को पूरा करने का और सतत् विकास के मार्ग में लैंगिक समानता और सामाजिक न्याय को भी शामिल करना है। लैंगिक समानता, गरीबी में कमी, लोकतांत्रिक शासन, संकट की रोकथाम, पर्यावरण और सतत् विकास में महिलाओं की भागीदारी, सशक्तिकरण को एकीकृत करने के लिए वैश्विक और राष्ट्रीय प्रयासों का समन्वय करता है। सशक्तिकरण से अभिप्राय आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक शक्ति को व्यक्ति और समुदाय में बढ़ाने से है। इसके फलस्वरूप क्षमतावान, सशक्त, विकासशील और आत्मविश्वास से युक्त महिला समूह निर्मित हो सकता है। महिलाओं और लड़कियों के लिए एक वैश्विक अभियान, संयुक्त राष्ट्र महिला शाखा को दुनिया भर में स्त्रियों की जरूरतों को पूरा करने में तेजी लाने के लिए स्थापित किया गया।

राजनीतिक क्षेत्र में समानता :- स्वतंत्रता से पूर्व तक सभी स्त्रियों को वोट (Vote) देने का अधिकार नहीं था, लेकिन आज पर्याप्त राजनीतिक चेतना आई है। आज स्त्रियां लोकसभा की सदस्या भी हैं मंत्री भी हैं और राष्ट्रपति भी। भारत के प्रधानमंत्री के पद पर श्रीमती इंदिरा गांधी एक महिला होते हुए लगभग 14 वर्ष तक आसीन रहीं। श्रीमती सोनिया गांधी कांग्रेस की वर्तमान अध्यक्षा हैं तथा श्रीमती प्रतिभा पाटिल देश की राष्ट्रपति हैं।

संदर्भ सूची

1. Jumin, M.M. (1953): Some Principles of Stratification, A Critical Analysis American Sociology Review 18, p 387-394
2. सिंह, निशान्त, (2009), भारतीय महिलाएँ : एक सामाजिक अध्ययन, ओमेगा, पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ० 78
3. केलकर, गोविन्द (1881) इम्पैक्ट ऑफ ग्रीन रिवोल्यूशन आन वीमेन्स वर्क पार्टीसिपेशन एण्ड सैक्स, सेन्टर फॉर पोलिसी रिसर्च, नई दिल्ली, पृ. 152।
4. कुमार, नृपेन्द्र (1982) पाटीसीपेशन ऑफ वूमेन इन सोसायटी, एशिया पब्लिकेशन हाउस, मुंबई, पृ. 9।
5. श्रीवास्तव, सुधीर (1985) वूमेन इम्पावरमेंट, टाटा मैग्रेहिल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 87।
6. माथुर, दीपा (1992) वूमेन फैमिली एंड वर्क, रावत पब्लिकेशन जयपुर, पृ. 138।
7. सिंह, सोरन (1997) सिडियूल कास्ट इन इंडिया एंड डाईमेंशन ऑफ सोशल चेज, ज्ञान पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 182।
8. मिश्रा स्वेता (1997) पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता, ग्रामीण विकास न्यूज लेटर 1-31 जुलाई, पृ.सं. 7।
9. आहुजा, राम (1999) भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन, जयपुर, पृ. 186।
10. सक्सेना, किरण (2001) "विमेन्स एण्ड पॉलिटिक्स" ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 34।
11. आहुजा, राम (2002) भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 321।
12. व्यास, मीनाक्षी (2002) मिडिल एंड लोअर क्लास वर्किंग वूमेन, सीम्या पब्लिकेशन, मुंबई, पृ. 25।
13. सिंहा, मधुक्षी (2002) सर्वांगीण ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका—एक सामाजिक अध्ययन, कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, वालयुम 7 इश्यु 1-2 पृ. 156।
14. सिंह, दिनेश कुमार (2002) रूरल वूमेन इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल पारटिसिपेशन, विवेकानन्द एजुकेशन रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट सोसायटी, आगरा, पृ. 87।
15. सिंह, राम समुझ (2019) भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक समस्याएं एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, क्वेस्ट जर्नल्स, नई दिल्ली पृ. 65।

भारत में वस्त्र छपाई का इतिहास एवं बनारसी अलंकरण

डॉ. नीलम उपाध्याय*

छपे वस्त्रों का निर्माण -

रंगाई के समान ही भारत में छपाई कला का इतिहास भी प्राचीन है। मध्ययुग में सम्पूर्ण एशिया और अफ्रीका के देशों में छापे हुए भारतीय वस्त्र बाद में 'छोट प्रिंटेड केलिको तथा पिथाडोज' के नाम से यूरोप में लोकप्रिय हुए।

विद्वानों के मतानुसार ठप्पों से वस्त्र छापने की पद्धति का जन्म चीन में हुआ। चीन से इसकी जानकारी मध्य एशिया होते हुए इरीन पहुँची और वहाँ से मुसलमानों के साथ भारत आयी। भारत के अधिकतर छपाई कारीगर मुसलमान हैं, इस आधार पर भी कुछ विद्वान इस कला को इरान से आयी मानते हैं।

16वीं सदी में डॉ० बार्बोसा लिखता है कि खामांत से सूती सफेद तथा छपे कपड़े समुद्री मार्ग, से अरब, ईरान और भारत के अन्य भागों को तथा मल्लका, सुमाया, मेलिडी, मेगडिक्सी एवं मोम्बासा को निर्यात किए जाते थे।

16वीं शती आते-आते पुर्तगाली डच और फ्रेंच व्यापारियों के लिए भी भारतीय छपे कपड़े आकर्षक का मुख्य केन्द्र बन गए। मोटे और गफ सूती छपे कपड़े यूरोपीयन देशों की जलवायु और रहन-सहन के लिए महीन मलमल और रेशमी कपड़ों की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध हुए।

इस्ट इण्डिया कम्पनी के विवरणों से ज्ञात है कि बुराहानपुर के छपे और कलमकारी के कपड़े पश्चिमी देशों में रजाई और पर्दे इत्यादि के लिए बड़ी मात्रा में निर्यात किए जाते थे।

मुगल काल में अन्य कलाओं के बाद छपाई कला को भी विकास के लिए एक नयी दिशा मिली। शाही कारखानों तथा अन्य राजकीय संरक्षण प्राप्त केन्द्रों में उनके रुचिपूर्ण महीन और ईरानी ढंग के अलंकरण का प्रयोग होने लगा।

19वीं शती 'खेड़ा' शहर छपाई का बहुत बड़ा केन्द्र था। लगभग 400 हिन्दू और 150 मुसलमान परिवार छपाई के काम में लगे हुए थे। 19सदी के लेखकों के अनुसार यहाँ की छपाई अहमदाबाद या भड़च की अपेक्षा अधिक महीन और उच्चकोटि को होती थी। यहाँ साड़ियों ओढ़नी और ज़ाजिम आदि छापे जाते थे। साड़ियों की छपाई महीन कपड़े पर की जाती थी। जबकि ज़ाजिम मोटे कपड़े पर छापी जाती थी।

छपाई के क्षेत्र में ब्लाक ठप्पा का प्रयोग पूर्व की भांति ही थी परन्तु इस समय ठप्पे पूर्ण के अपेक्षाकृत काफी बारीक एवं घने बनने लगे।

अहमदाबाद की छपी हुई भारत कला भवन में 19वीं शती की एक साड़ी है, जमीन का कपड़ा झिर-झिर मलमल का है जिस पर 'रेजिस्ट' छपाई द्वारा बूटे और आंचल छाप कर गहरे लाल रंग की जमीन रंगी हुई है। आंचल में पीले, हरे बलंकरण से युक्त कई पट्टियों हैं। घोर पर गहरे नीले या सुरमई रंग की जमीन में बूटी की पंक्ति है। इसी प्रकार के बूटे सम्पूर्ण जमीन में छपे हुए हैं। किनारे में पतली पट्टी और बूंददार करेरा छपे हैं। गुजरात की कुछ छोट्टे भी भारत कला भवन में हैं। बनारस में बुनाई तथा छपाई के प्रमुख केन्द्र मदनपुरा, रेवड़ी तालाब, आदमपुर, पीलीकोठी बड़ी बाजार में स्थापित थी। बाद में पश्चिम में लल्लापुरा, खोजयों, बजरडीहा, आदि में भी कुछ बुनकर बस गये।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, फैमिली एंड कम्युनिटी साइंस विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

मदनपुरा में बनारसी साड़ियों, पटके, चादरे, किमखाव के कपड़े बनाये जाते थे जो बहुत ही ठोस डिज़ाइनदार होते थे। पीलीकोठी के कलाकार जैकार्ड का प्रयोग प्रारम्भ कर दिये थे। बनारस के मुस्लिम समुदाय इस कार्य में विशेष रूप से संलग्न है।

वस्त्र निर्माण क्षेत्र में बनारसी वस्त्रों पर जो कार्य किया जाता है। वैसा अन्यत्र नहीं दिखाई देता है। बनारसी वस्त्र उद्योग अति काल से ही फलता और फूलता रहा है। यहाँ की वस्त्र निर्माण कला चाहे वह सूती, रेशमी, छपाई हो या बुनाई आदि प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति के शिखर पर रही है। विशेष रूप से वाराणसी 'ब्रोकेट' उत्पादन के क्षेत्र में प्रमुख केन्द्र रहा है। बनारसी वस्त्र जरी तथा सोना-चाँदी के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अतीत काल से ही भारतीय अलंकरण व आकृतियाँ भारतीय वस्त्रों विशेष बनारसी किमखाव विश्व भर लोकप्रिय बने रहे। कालान्तर में इसमें अनेक उतार चढ़ाव आये परन्तु विपरीत परिस्थितियों में भी ये समृद्ध होने लगे। बनारस में बुने जाने वाले वस्त्रों का भारतीय इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान है। यहाँ के वस्त्रों के लिए भारतीय साहित्यों में अनेक शब्दों का भी प्रयोग किया गया है काशीकुट्टम्, काशीयाणी, काशीकसूचीवल्सम्, इसके अलावा उस समय का एक और ग्रन्थ 'महापरिनिर्वाण' में भी बनारस में बुने वस्त्र की चर्चा की गई है मौर्य काल के बाद कुषाण काल में भी बनारस के वस्त्रों की चर्चा मिलती है। बनारसी ब्रोकेट का सही तथ्य 'यूरोपीय काल' से मिलते हैं। 1764ई० 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने बनारस का अधिग्रहण कर लिया था परन्तु इससे पहले भी बनारस में अनेकों यूरोपीय पर्यटक आये और वस्त्रों के बारे में रोचक वर्णन किया।

19वीं, 20 वीं शती के वस्त्र उद्योग में एक नया परिवर्तन आया। 19वीं शती के अन्त से ही बनारस के किमखाब बुनकरों को लन्दन बुलाया गया जिसके फलस्वरूप 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में बुने बनारस के वस्त्रों में यूरोपीय शैली का प्रभाव मिलता है।

बनारसी ब्रोकेट उद्योग में विभिन्न प्रकार के किनारे प्रयोग परम्परागत गति से समाहित होता गया है। एवं प्रत्येक काल में इसमें परिवर्तन भी हुए हैं। यदि कारीगर पर्याप्त मात्रा में शुद्ध व समुचित रूप से अपने कार्य सक्षम ही होगा।

आज इस उद्योग की समुचित देखभाल व प्रोत्साहन दिये जाने की आवश्यकता है। कारीगरों को समुचित आदर व सम्मान के अतिरिक्त उनकी उपलब्धियों को पुरस्कृत किया जाय। समय-समय पर उनके कार्यों के प्रदर्शन आयोजित किये जाएँ। कारीगर आर्थिक विवशताओं से बाध्य होने के कारण अपने कलात्मक व सौन्दर्य बोध के अनुरूप कार्य नहीं कर पाता। यदि आवश्यक सामान उपलब्ध हो व उसके श्रम की समुचित कीमत उसे मिले तभी यह निश्चिन्त होकर विशिष्ट अलंकरण तैयार कर पायेगा। यह तथ्य बनारसी किमखाब के संरक्षण में लगी सभी संस्थाएँ यदि सदैव ध्यान में रखकर कार्य करें तो हमारी सांस्कृतिक व पारम्परिक उन्नति के साथ आर्थिक समृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त होगा।

संदर्भ ग्रंथ:-

- श्रीमती यल.आर. प्रयाग - टेक्नोलॉजी ऑफ़ टेक्सटाइल प्रिंटिंग
- डॉ देवकी अहिवासी - रंगे एवं छपे वस्त्र
- मोतीचंद - प्राचीन भारत की वेषभूषा
- मोतीचंद - बनारस का इतिहास
- क्लार्क - इंट्रोडक्शन टू टेक्सटाइल प्रिंटिंग
- हॉल - हैंडबुक ऑफ़ टेक्सटाइल डाईंग एंड प्रिंटिंग
- कृष्णा एंड कृष्णा - बनारस ब्रोकेड

